Brown Colour Book

आज की राजनीति

आज की राजनीति

राहुल सांकृत्यायन

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक की ओर से

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की नूतनतम कृति 'आज की राजनीति' आपके हाथों में है। इसे पढ़ जाइये, मनन कीजिये। आप स्वतंत्र देश के वासी हैं, और स्वतंत्रता का अर्थ केवल राजनीतिक क्षेत्र की स्वतंत्रता से ही नहीं वरन् सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता से होना भी आवश्यक है। आज इस सर्वांगीण स्वतंत्रता की ओर बढ़ने में देश के पांव जो लड़खड़ा रहे हैं, उसका मूल कारण क्या है, 'आज की राजनीति' के पाठकों को पुस्तक पढ़ जाने के उपरान्त उस ओर संकेत मिल सकेगा। एक निश्चित योजनानुसार देश की प्रगतिशील दिशा की ओर उन्नति में कौन शक्तियां क्यों और कैसे बाधक बन रही हैं और हमारे सामने प्रस्तुत समस्याओं को सुलझाने के समुचित उपाय और राहें क्या हैं, इस महाग्रन्थ में राहुलजी ने इसका दिग्दर्शन कराया है।

राहुलजी का प्रस्तुत ग्रन्थ लगभग ७०० पृष्ठ का है। इसे एक ही जिल्द में प्रकाशित करने से इसके प्रकाशन में अभी काफी समय की देरी होती। इधर पाठक इसे पढ़ जाने को अत्यधिक अधीर हो रहे हैं; सो हमने परिशिष्ट भाग को दूसरे खण्ड में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। परिशिष्ट भाग मूल ग्रन्थ का महत्वपूर्ण अंश है। इसे अत्यधिक अनुशीलन एवं अध्यवसाय के अनन्तर लिखा गया है। हमें विश्वास है कि पाठक 'आज की राजनीति' के प्रस्तुत मूल भाग की तरह उसी उत्सुकता से 'परिशिष्ट' के प्रकाशन की भी प्रतीक्षा करेंगे।

सूची

स्वतन्त्र-भारत

काशी भारत की सात पुरियों में एक है, किन्तु आजकल दूसरी कोई पुरी उसका मुकाबला नहीं कर सकती। हाँ, इसमें संदेह है, कि ऐतिहासिक काल अथवा पिछली सात शताब्दियों में काशी ने कभी देश और जाति की तत्कालीन या भावी महत्वपूर्ण समस्याओं पर माथापच्ची की हो। काशी ने देश को हमेशा पीछे की तरफ खींचने की कोशिश की। एक-से-एक प्रतिगामी पंडित और परिव्राजकों को उसने प्रदान किया। लेकिन, जान पड़ता है, शंकर के त्रिशूल पर खड़ी काशी भी अब हिलने लगी है। इसके और भी कितने ही उदाहरण मिलते हैं, लेकिन हमें यहां उन पाँचों सयानों की मंडली की बात पाठकों के सामने रखनी है, जो "काजी जी दुबले शहर के अंदेशे" की कहावत के अनुसार केवल अपने नगर की ही चिन्ता में दुबले नहीं हो रहे हैं, बल्कि सारे देश की सभी तरह की समस्याएं उनकी चिन्ता का कारण बन रही हैं। उनके वार्तालाप को उतारने के लिए किसी गौरीसुत गणेश की आवश्यकता थी, किंतु द्रुतलेखन और डिक्टोफोन के जमाने में वार्तालाप का उतारना कठिन नहीं है।

आइये नीची बाग के एक कोने में कितने ही दिनों तक अपने वार्तालाप में सरगर्म पाँचों पंचों पर एक दृष्टि दौड़ाएं। उनमें आयु में कोई न पच्चीस से कम है, और न तीस से अधिक; औसत आयु निकालने पर वह सत्ताईस ही पड़ती है। पाँचों पंचों में पहले महिला से शुरू करें।

आपका नाम रामी है, किसी समय रमादेवी द्विवेदी थीं, लेकिन अब वह अपने को रामी कहती हैं। वह काशी के एक कन्या-महाविद्यालय की प्रधान-अध्यापिका हैं, साहित्य में डाक्टर हैं और कुछ कविता भी करती हैं, जिसे बुरी नहीं कहा जा सकता। स्त्रियों के अधिकार के लिए वह हमेशा लड़ने को तैयार रहती हैं। उनके पति डाक्टर खोजीराम एक कुशल सर्जन हैं। घर में पैसे की कमी नहीं है, किन्तु रामीजी तब भी महाविद्यालय की नौकरी छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका सिद्धान्त है—आर्थिक-स्वतंत्रता नारी के स्वतंत्र होने की पहली शर्त है। रामीजी की सामाजिक उदारता के बारे में इतना ही कहना है, कि हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था में सबसे ऊपर होने पर भी उन्होंने सबसे नीचे की सीढ़ी वाले को अपना हृदय दिया।

दूसरे पंच डा० खोजीराम शिक्षित और संस्कृत, अट्ठाईस साल के तरुण हैं। उन्होंने किसी सरकार या बड़ी जात के दाताओं की सहायता से शिक्षा नहीं प्राप्त की। मेधावी छात्र थे, आत्म-सम्मान का भाव मात्रा से अधिक था। छात्रवृत्ति के लिए गिड़गिड़ाने की जगह उन्होंने स्वयं ट्यूशन करके अपनी शिक्षा समाप्त की। मेडिकल कालेज से बाईस साल की आयु में निकले, लेकिन उससे पहले ही लोगों ने जान लिया था, कि वह जन्मजात चिकित्सक हैं। उन्होंने एक-डेढ़ साल के भीतर इतना पैसा जमा कर लिया, कि वीयना में जाकर विशेष शिक्षा और अनुभव प्राप्त कर आयें। डा० खोजीराम एक जाति में जन्म लेने के कारण उसके पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि अपनी जाति वालों जैसे जितने भी शोषित और दलित हैं, उन सबके उत्थान को उसी तरह अपना कर्त्तव्य मानते हैं, जैसे व्याधि-पीड़ितों की तन-मन-धन से सेवा को। उनका स्वभाव अत्यन्त शान्त, विनम्र है; यद्यपि अपने पक्ष का समर्थन करते समय उनका मुँह अधिक आरक्त हो जाता है।

मंडली में तीसरे पंच महीर सबसे तरुण हैं। यदि अपने कुल की परिपाटी चलाते, तो उनका नाम एक लाठी नहीं, तो कम-से-कम

हमारी मासिक पत्रिकाओं के पूरे पृष्ठ को एक पंक्ति में जरूर आता। वह समाजवाद के समर्थक हैं, उन्हें पंचों में सबसे गर्म स्वभाव का कहा जा सकता है। वह जिस समाजवाद को चाहते हैं, वह किसी एक पार्टी के भीतर सीमित नहीं है। उनका कहना है—जो भी ईमानदारी से समाजवाद की स्थापना के लिए क्रियात्मकरूपेण प्रयत्न कर रहे हैं, उनको एक होकर काम करना चाहिए। युनिवर्सिटी से निकले अभी एक ही साल हुआ है, इसलिए उन्हें दुधमुँहा बच्चा न समझ लें। उन्होंने सारा समय देश की समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने और समझने में लगाया है।

चौथे पंच श्री भगवानदास जी आयु में सारी मंडली में दूसरे नंबर पर हैं। सादगी के तो मानो अवतार हैं। मंडली में और लोग कुर्त्ता-पायजामा को भी सह्य कर लेते हैं, लेकिन भगवानदास जी पंचकच्छी धोती और वृन्दावनी चौबन्दी पहनते हैं। उनके सिर पर शिखा भी गाय के खुर से थोड़ी ही कम है। ललाट पर भस्म-त्रिपुंड और ऊपर से बल्लभशाही सूक्ष्म लाल उर्ध्व-पुण्ड्र भी लगा है। वह समन्वय की साक्षात मूर्ति हैं। उनका कहना है—काशी विश्वनाथपुरी में रहने के नाते "नदी में रह मगरमच्छ से वैर" करना अच्छा नहीं, सोच भस्म का त्रिपुण्ड धारण करना जरूरी है। लेकिन, सात पीढ़ी से खानदान वल्लभकुल का शिष्य रहा है। गोपाल-मन्दिर में लगाई उनके परदादा की देवोत्तर संपत्ति से आज भी वहाँ मनों मेवा-पक्वान्नों का भोग लगता है। इसीलिए वल्लभकुल का तिलक लगाना भी आवश्यक है। भक्ति और धर्म-प्रेम तो उनके वंश में चला आया है, और हम कह सकते हैं कि देशाचार में ग्राह्य को छोड़कर बेईमानी से वह बहुत दूर रहते हैं। पिता ने अपने पुत्र को पक्का धर्मात्मा बनाना चाहा, इसीलिए अंगरेजी या दूसरी शिक्षा न दिलवा घर पर ही पंडित रखके बेटे को संस्कृत पढ़ाना आरंभ कराया। भगवानदास अभी तरुण हैं, लेकिन उसी काशी के निवासी पितामह डा० भगवानदास को उन्होंने

विद्याव्यसन के सम्बन्ध में अपना आदर्श बना लिया है। व्याकरण और साहित्य का अध्ययन उन्होंने एक पंडित की तरह किया है। महाभारत पुराण, धर्मशास्त्र का परायण तो उनके जीवन का एक अंग हो गया है। वैसे होता तो बाकी के चारों की चौकड़ी में उनका होना आश्चर्य की बात होती, लेकिन भगवानदास जी दम्भी नहीं हैं। सेवाग्राम की यात्राओं और महात्माजी के संपर्क ने उनकी धार्मिक-भावना को उदार बना दिया है, यद्यपि आज भी वह ऋषियों की त्रिकालदर्शिता पर संदेह करने को तैयार नहीं हैं। करोड़पति सेठ के लड़के हैं, फिर दुनिया के कड़वे-मीठे का तजर्बा उन्हें कैसे होता? परन्तु सहृदयता और ईमानदारी उनमें पूरी मात्रा में है, यह उनके चारों साथी स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

पाँचवे पंच हैं, सबमें वयोवृद्ध किंतु अभी तीसवें साल में ही पैर रखते युधि-स्थिर या युधिष्ठिर। शिक्षा में वह किसी से पीछे नहीं हैं, साथ ही देशाटन ने उनके दृष्टिकोण को और विशाल बना दिया है। सिर्फ आयु के कारण ही दूसरे पंचों ने उन्हें अपना प्रधान या सरपंच नहीं बनाया, बल्कि उनमें सरपंच होने के गुण भी हैं। वह सबसे अधिक शांत हैं।

पहले दिन प्रधान हो जाने के बाद युधिष्ठिर ने कहा—आप लोगों के विश्वास के लिए मैं धन्यवाद देने क्यों जाऊँ, जब कि मैं अपने को आपका प्रधान नहीं मानता? हममें से हरेक को अपने ज्ञान से अज्ञान का भान अधिक है। हम अपने देश की वर्तमान समस्याओं पर अलग-अलग विचार करते रहे हैं। कभी-कभी एक या दूसरे से मिलकर भी चर्चा करते रहे। आज हम पाँचों जने मिलकर उन पर विचार करेंगे, इससे शायद समस्याएं और साफ मालूम हों—

भगवानदास जी ने बीच में ही बोल दिया—'वादे-वादे जायते तत्त्व-बोधः'।

युधिष्ठिर ने अपनी बात जारी रखते कहा—हम वाद तो नहीं

करने जा रहे हैं, यदि यहाँ कुछ है तो इसे संवाद कह सकते हैं। तत्त्व को खोज निकालना केवल पाँच मस्तिष्कों के लिए बड़े साहस की बात है, तो भी हम उन समस्याओं को मिलकर विचार करके उन्हें कुछ अधिक स्पष्ट अवश्य जान सकेंगे। लेकिन हमारा संवाद बिलकुल स्नेह और मित्रतापूर्ण होना चाहिए।

खोजीराम—यदि हम स्नेह और मित्रता के साथ संवाद न करेंगे, तो हमारे पास उसी तरह दर्शकों की भीड़ लग जायगी, जैसे झाँव-झाँव करनेवाले पंडितों के शास्त्रार्थ में।

महीप—नहीं डाक्टर साहब, मैं युधिष्ठिर भाई की बात का मूल्य समझता हूं। मुझे हृदय से विश्वास है, कि मेरे चारों साथी पूरी ईमानदारी के साथ समस्याओं पर सोचते हैं और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उतावले भी हैं; तो भी मुझे अपनी निर्बलता स्वीकार करने में उजुर नहीं है। मैं कभी-कभी जोश में आगे बढ़ जाता हूँ। यदि हमारे संवाद में वैसी नौबत आये, तो मैं आप लोगों से आशा रखता हूँ—विशेषकर युधिष्ठिर भाई से—कि मुझे रोक देंगे।

सामने बैठी रामी ने हँसते हुए कहा—इसकी चिन्ता न करें, युधिष्ठिर भाई को रोकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

भगवानदास ने मुस्कराते हुए कहा—रामीजी का एक संकेत तुम्हें चुप कराने के लिए काफी होगा।

महीप—मेरे लिए तो वह काफी होगा, लेकिन मुझे डर है कि कहीं आप न सारे शास्त्रों और वेदों को यहाँ उड़ेलने लग जाय।

भगवानदास—शास्त्रों और वेदों से इतनी चिढ़ क्यों? क्या शास्त्रों और वेदों में कोई काम की बात नहीं है? क्या वहाँ कोई भी अकल की बात नहीं कही गई है? और फिर हमारा तो सिद्धान्त होना चाहिए, कि सत्य जहाँ मिले, वहाँ से उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

महीप—मुझे आशा है भगवान भाई, अपने इस सिद्धान्त को स्मरण रखेंगे और सभी तरह के पक्षपातों को छोड़कर सत्य को कहीं से भी

ग्रहण करने के लिए तैयार रहेंगे।

खोजीराम—महीप, यदि भगवान भाई यह न समझ पाये होते, तो वह यहाँ न होते। उनके बाहर के आकार-प्राकार को देखकर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उनका नाम तो भगवानदास की जगह सत्यखोजी रखा जाता, तो अधिक ठीक होता।

युधिष्ठिर—अर्थात् आप हमारी मंडली में एक नहीं दो खोजी रखना चाहते हैं। अच्छा, तो आज हम अपने संवाद को आरंभ करते हुए कौनसी बात पहले लें?

रामी—स्वतंत्र-भारत के सामने आज बहुत-सी समस्याएं हैं।

महीप—क्षमा करना रामी बहन, यदि मैं आपके स्वतंत्र शब्द पर आपत्ति करूं। मेरी समझ में भारत स्वतंत्र नहीं है; अब भी वह बृटिश-साम्राज्य का, जिसे राष्ट्रमंडल या कोई भी दूसरा नाम दिया जाय, एक अंग है। बृटिश साम्राज्यवाद ने भारत को खुशी-खुशी नहीं छोड़ा, बल्कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ऐसी मजबूरियाँ उसके सामने आईं, जिनके कारण उन्हें भारत छोड़कर भागना पड़ा। युद्ध समाप्त होते-होते अंग्रेज आर्थिक तौर से दिवालिया हो गए।

खोजीराम—दिवालिया हो गए, यह बात ठीक है। विलायत की मजूर-पार्टी ने समाजवाद की बड़ी-बड़ी बातें और ऊंचे-ऊंचे प्रोग्राम रखे, लेकिन चुनाव के समाप्त होने के बाद जैसे ही मजूर-पार्टी ने बागडोर संभाली, ट्रूमन ने उधार-पट्टा में कोई चीज देने से इनकार कर दिया। प्रधानमंत्री एटली दौड़े-दौड़े अमेरिका पहुँचे, डालर देवता के सामने नाक रगड़, कान पकड़कर उठे बैठे।

भगवानदास—यदि कान पकड़कर न उठते बैठते और मजूर-सरकार अपनी धुन पर चली जाती तो क्या होता?

महीप—क्या होता की बात पूछ रहे हैं? दूसरे हफ्ते ही सारे इंगलैंड में त्राहि-त्राहि मच जाती। अमेरिका के मांस, अमेरिका के मक्खन पर भोग लग रहा था। अमेरिका की देन पर इंगलैंड कितने ही

वर्षों तक जीता रहा। अमेरिका का उसके ऊपर इतना कर्ज है, जिसे आशा नहीं है, अब वह कभी चुका सकेगा। उस वक्त पैसा कहाँ था कि कहीं से खाने-पीने की चीजें मंगाके लोगों को खिलाता, कच्चा माल मंगवा के अपने कारखानों को चलाता ?

भगवानदास--अर्थात् अमेरिका की एक घुड़की पर इंगलैंड की मजूर-सरकार को सारा समाजवाद भूल गया।

महीप—मुझे यही कहना था, कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंगलैंड ऐसी स्थिति में नहीं था, कि मनमानी कर सके। चर्चिल ने तो खुल्लम-खुल्ला इंगलैंड को युक्तराष्ट्र की उंचासवीं रियासत बना देने का प्रस्ताव रखा था। एटली ने भी कार्यरूप में वही किया। इंगलैंड वस्तुतः अब अमेरिका की एक रियासत-मात्र है। इंगलैंड ही नहीं, बृटिश साम्राज्य—जिसे दुनिया की आँख में धूल झोंकने के लिए राष्ट्रमंडल कहा जा रहा है—अमेरिका का एक अधीन देश है। भारत इसी बृटिश राष्ट्रमंडल का एक मेम्बर है।

भगवानदास—महीपजी, आप भूले जा रहे हैं, कि हम तुरन्त अपने देश को प्रजातंत्र घोषित करने वाले हैं।

महीप—मैं भूलता नहीं हूँ। कैसा अच्छा प्रजातंत्र है, जिसके राष्ट्रमंडल का प्रधान इंगलैंड का राजा है! भारत का राजा नहीं, किंतु भारत और दूसरे राज्यों से मिलाकर जो राष्ट्रमंडल बना है, उसका प्रधान इंगलैंड का राजा होगा। यह सब किसकी आँख में धूल झोंकने के लिए किया जा रहा है ?

भगवानदास—आशा है, आप किसीकी नियत पर आक्रमण नहीं करेंगे, लेकिन पढ़ा तो होगा कि हम भारतवर्ष को परम-स्वतंत्र प्रजातंत्र घोषित करने जा रहे हैं। हमारे देश में कहीं भी इंगलैंड के राजा का कोई भी चिह्न देखने में नहीं आयगा। न हमारे सिक्के पर, न हमारे टिकटों पर उसकी मूर्ति रहेगी और न नोट या स्टाम्प-कागजों पर। हम अशोक-चक्र को राज्य-लांछन बना चुके हैं, अशोक-सिंह हमारी राज-

मुद्रा पर आ चुका है।

महीप—यह सब होते हुए भी जिस राष्ट्रमंडल का भारत अंग है, उसका सब काम-काज इंगलैंड के राजा के नाम से होगा। भगवानदास जी, भोलेपन की बात छोड़ें। छोड़ दीजिये मूर्तियों और मुद्राओं की बात; बृटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बनकर भारत ने एसिया की स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लेना छोड़ दिया। मलाया के रबर और टिन को अपने हाथ में रखने के लिए जापानियों के सामने पतलून छोड़कर भागने वाले अंगरेजों ने आज फिर वही तानाशाही कायम करनी चाही है। वहाँ के लोग स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, और अंगरेज़ कम्युनिस्ट कहकर उन पर गोले-गोलियों की वर्षा कर रहे हैं। वहाँ के बारे में भारत ने क्रूर मौन धारण कर रखा है।

खोजीराम—क्रूर मौन तो नहीं कह सकते महीप जी, गणपति की फाँसी पर भारत सरकार ने अपना विरोध प्रकट किया था।

महीप—विरोध प्रकट किया, किन्तु उसे बचा नहीं पाये। अंगरेजों ने किसी शिखंडी का नाम लेकर छुट्टी पा ली। लेकिन, वहाँ एक गणपति नहीं, एसिया के हजारों गणपति अंगरेजी शासन की क्रूरता के शिकार हो रहे हैं; वहां कितने ही जलियाँवाला बाग रचे जा रहे हैं। क्या हमारे नेताओं ने अंगरेजों से दो टूक कहा, कि मलाया के स्वदेश-प्रेमी हमारे एसियाई भाई हैं, उनके खून से हाथ लाल करने वालों के साथ हम हाथ नहीं मिला सकते।

भगवानदास—यह मैं मानता हूँ कि मलाया में अंगरेज पहले ही जैसा अत्याचार कर रहे हैं, किंतु दुनिया में जहाँ-जहां अत्याचार हो रहा हो, सभी जगह हम ढाल बनने के लिए तो पहुँच नहीं सकते।

महीप—एक मलाया की ही बात नहीं है भगवान भाई, बर्मा में अंगरेजों के अपने तेल के कूएं, खानें और क्या-क्या स्वार्थ हैं। वह नहीं चाहते कि बर्मा उनके प्रभाव से मुक्त हो जाय। आज बर्मा में इसीकी लड़ाई है। एक पक्ष अंगरेजों के स्वार्थ को अक्षुण्ण रखने की कोशिश

कर रहा है और दूसरे बर्मा को वास्तविक रूप में स्वतंत्र बनाना चाहते हैं। आज तक दुनिया की राजनीति में यह सदाचार माना जाता था, कम-से-कम कहने के लिए, कि गृहयुद्ध में बाहर की शक्तियों को हस्त-क्षेप नहीं करना चाहिए। यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने इसे कभी नहीं स्वीकार किया, यह बात ठीक है। यदि इसे स्वीकार किया होता तो एसिया में उनका प्रभुत्व नहीं बढ़ता। उन्होंने गृहयुद्धों में भाग लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया। लेकिन सदियों तक दासता के मजे को चखे हमारे देश को तो यह शोभा नहीं देता, कि वह बर्मा के गृहयुद्ध में एक पक्ष को खुल्लमखुल्ला मौखिक ही नहीं बल्कि ठोस मदद देने को जाय। आप किस तरह हमारी सरकार के बर्मा में हस्तक्षेप करने की नीति का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं?

खोजीराम—लेकिन हस्तक्षेप तो तब कहते, जब सरकार यहाँ से सेना भेजती।

महीप—माफ कीजिये डाक्टर साहब, भारत के ही एक भाग नेपाल के सिपाही वहाँ लड़ने के लिए पहुंच चुके हैं।

युधिष्ठिर—आपको यह सिद्ध करना होगा, कि नेपाल भारत का एक अंग है।

महीप—क्या प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अंगरेजों ने नेपाल के राजा-धिराज को "हिज़ हाइनेस" की जगह "हिज़ मैजेस्टी" का कागजी खिताब दे दिया, इसीलिए नेपाल भारत से अलग हो गया? खैर, इसके बारे में फिर कहूंगा, लेकिन जानते हैं न, बर्मा में लड़ने के लिए भेजे गए नेपाली सैनिकों में से कितने ही दूसरी तरफ जा मिले। हमारी सरकार बुद्धिमानी कर रही है, जो सेना नहीं भेज रही है। लेकिन रुपये और हथियारों की सहायता क्या कम अपराध की बात है? मैं आपको ऐसे बहुत से उदाहरण दे सकता हूँ, जहाँ बृटिश साम्राज्य के साथ हमारा गठबंधन बहुत बुरा हुआ है। एसिया के लोग भला हमारे देश से कौनसी आशा रख सकते हैं? इसीसे मैं कहता हूं, अब भी हमारा

देश अंगरेजों के पंजे से छूटा नहीं है। अभी भी उसे स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता।

रामी—मैं एक बात कहूँ महीप भाई ?

युधिष्ठिर—यहाँ कहने के लिए ही तो हम एकत्रित हुए हैं, इसमें क्या किसी को संदेह है ?

रामी—हरेक चीज सापेक्ष हुआ करती है। कोई आदमी सुखी है, तो इसका अर्थ यह नहीं, कि उसके जीवन में दुःख, चिन्ता का लेश नहीं है। इसी तरह स्वतंत्रता को भी हमें सापेक्ष अर्थ में ही लेना चाहिए।

भगवानदास—ठीक कहा रामी बहन, हमें हरेक चीज को सापेक्ष अर्थ में लेना चाहिए।

महीप—रामी बहन को ही कहने दीजिये भगवान भाई, आप अपनी बारी में तो कुछ नहीं कह सके, केवल सरकार का ही अंधाधुंध समर्थन करते रहे।

युधिष्ठिर—आप लोग यदि इस तरह बात-में-बात निकालकर बोलते रहेंगे, तो हम विषय से दूर चले जायंगे। हमें आज की बैठक में इस बात पर विचार करना है, कि देश स्वतंत्र हुआ या नहीं।

रामी—मैं मानती हूँ कि पहले से १५ अगस्त १९४७ के बाद के भारत में भारी भेद है। मैं महीप भाई से इस बात में सहमत हूँ, कि अंगरेजों के साथ का यह गठबंधन हमारे लिए कलंक की चीज है। यदि हम आज भी दासता की कुछ कड़ियों को रखे हैं, तो अमेरिका के मुक्त हुए उस दास की तरह ही, जो मुक्त होने पर भी अपने स्वामी के अस्तबल को छोड़ना नहीं चाहता था।

महीप—तो यह तो रामी बहन, तुमने स्वीकार किया, कि हम अभी अस्तबल में जगह ढूंढने वाले उसी दास की तरह हैं।

रामी—हां, मैं स्वीकार करती हूँ, किन्तु स्वेच्छा से स्वीकार करना और मजबूर होके स्वीकार करने में कुछ अन्तर तो अवश्य है। यह तो तुम

मानोगे महीप, कि हमारे देश के उत्पीड़ित, दलित लोगों को न उठने देने के लिए, उन्हें पीस डालने के लिए दो-दो वज्र चक्र थे—एक हमारे देश के स्वार्थी शोषक राजा, जमींदार आदि और दूसरे अंगरेज। अंगरेज शिकंजे में हमें जकड़े हुए थे। उनकी सेना, और सेनानायक ही नहीं, उनके साधारण नागरिक शासक और व्यापारियों तक को हम प्रभावित नहीं कर सकते थे, लेकिन आज हमारे देश के भीतर हमारा भाग्य हमारे हाथों में है।

महीप—ऐसा न कहो रामी बहन, हमारी सेना का महासेनापति कुछ ही महीने पहले तक अंगरेज था, और हैदराबाद के मामले में ऐन मौके पर उसने ऐसी चाल चली थी, कि यदि सफल हो गया होता, तो हम भारी विपदा में पड़ जाते। अभी भी सेना के कई बड़े-बड़े पदों पर अंगरेज मौजूद हैं। हमारे सारे सैनिक-रहस्य उन्हें ज्ञात हैं। वह हमारे तरुणों की सैनिक-शिक्षा के जिम्मेवार हैं और अब भी स्वतंत्रचेता तरुणों को चाहारदीवारी के भीतर जाने का अवकाश नहीं है। मैं कम्युनिस्ट तरुणों की बात नहीं कर रहा हूं बल्कि एक होनहार नवतरुण को केवल इसलिए सैनिक-विद्यालय से अलग कर दिया गया, कि अंगरेजों के समय की सी० आई० डी० ने उसके बारे में सूचना दे दी थी, कि उस तरुण का सम्बन्ध किसी समय किसी दूसरी उग्र संस्था के साथ था।

रामी—मैं मानती हूँ, अभी भी अनावश्यक तौर से बहुत-से महत्व पूर्ण पदों-स्थानों पर अंगरेजों को रखा गया है, शायद यह भी देश को खींचकर बृटिश राष्ट्रमण्डल में ले जाने का कारण हुआ।

महीप—या यह कह सकते हैं, कि अभी भी हमारे राष्ट्र के कर्णधारों की आंखें अंगरेजों के प्रताप से चकाचौंध में हैं, अब भी वह दुनिया को उतना ही देख पाते हैं, जितना अंगरेजों ने हमें दिखलाया था। युधिष्ठिर भाई, इतना कहने के लिए मैं क्षमा चाहूँगा, कि हमारे नेताओं ने पुरानी दास-मनोवृत्ति को जरा भी अपने हृदय से नहीं हटाया है। उनके लिए दुनिया अंगरेज और अंगरेज दुनिया है; सारी विद्या,

बुद्धि, शिष्टाचार-सदाचार के आदर्श अंगरेज हैं।

युधिष्ठिर—मैं समझता हूं रामी बहन को अपनी सापेक्ष स्वतंत्रता की बात समाप्त करने का मौका देना चाहिए।

रामी—मैं इतना ही कहना चाहती हूं, कि १५ अगस्त १९४७ और अब में अन्तर अवश्य है। आपने पतीले में पके भात को तो देखा होगा ?

सब हँस पड़े। रामी ने फिर अपनी बात जारी रखी—आप स्त्री और पतीले के सम्बन्ध का ख्याल करके हस रहे हैं।

युधिष्ठिर—हम हर्ष प्रकट करने के लिए ही हंसे रामी बहन, हम यही चाहते हैं कि नारी और पतीली का यह सुन्दर सम्बन्ध सदा अक्षुण्ण बना रहे। इन पतली अंगुलियों के नीरस पतीली से लगते ही उसमें अमृत भर जाता है। मेरा भगवान् पर बिलकुल विश्वास नहीं है, लेकिन नारी और पतीली के इस मधुर सम्बन्ध को स्मरण कर किसी-किसी समय विश्वास करने का लोभ हो आता है।

भगवानदास—सो क्यों ?

युधिष्ठिर—इसीलिए कि कम-से-कम दुनिया में और जगह नहीं तो नारी और पतीली के सम्बन्ध में तो उसका हाथ दिखलाई पड़ता है, और हमारे वास्ते यह अच्छा ही है। लेकिन अब रामी बहन को बात खत्म करने देना चाहिए।

रामी—सूखे पके भात को यदि पतीली से अलग कर दिया जाय या पतीली उससे हटा दी जाय, तो भी भात उसी आकार में थक्का बांधे रह जाता है, और जब तक सड़ने न लगे, तब तक उसे उसी आकार में रखा जा सकता है। पहले वैसे आकार में रखने की जिम्मेदारी पीतल की पतीली की थी, और अब वह काम भात की जाति-बिरादरी वाले किनारे के चावल कर रहे हैं। इसी तरह हमारा देश १५ अगस्त १९४७ से पहले पीतल की पतीली जैसे अंगरेज शासकों और सैनिकों की जकड़बंदी में था, अब वह हमारी सीमा के भीतर

प्रभुता नहीं रखते, या कम-से-कम साक्षात दखल देने का अवसर नहीं रखते, लेकिन उसी तरह का काम यदि हमारे अपने देशभाई करना चाहेंगे तो उन्हें देर तक सफलता नहीं मिल सकती।

भगवानदास—पतीले के कठोर बंधन के हटने के बाद राष्ट्र के कर्णधारों ने यदि देश की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने का काम नहीं किया, तो उन्हें याद रखना चाहिए, कि किनारे के चावल अभेद्य दुर्ग नहीं हैं।

खोजीराम—मुझे तो अपने गांव की कहानी याद आती है—जो शालिग्राम को भूंज-भांजकर खा गया, उसे बैंगन भूनते कितनी देर लगेगी?

युधिष्ठिर—अर्थात देश की आर्थिक समस्याओं को हल करना होगा, उनके साथ खिलवाड़ नहीं करना होगा; नहीं तो चाहे हमें सापेक्ष स्वतन्त्रता जितनी भी कम मिली हो, वह इतनी अवश्य है, कि निकम्मे शासक निकाल बाहर किये जा सकें।

विश्व-राजनीति

अगले दिन फिर सायंकाल को नीचीबाग के एक कोने में पाँचों पंचों की सभा जुरी। कल स्वतंत्र-भारत कहने पर विवाद उठ खड़ा हुआ था, और उसका निर्णय दो टूक नहीं हो सका। आज प्रश्न उठा कि राजनीति में पहले विश्व-राजनीति को लिया जाय या भारत की भीतरी राजनीति को। राजनीति की व्याख्या करते हुए युधिष्ठिर ने स्वयं कह दिया था, और जिससे सभी सहमत थे : राजनीति बहुत व्यापक चीज है, उसके निराकार नहीं, बहुत-से साकार रूप हैं, जिनमें देश की अर्थनीति या आर्थिक ढाँचा विशेष महत्व रखता है।

महीप ने आज की बात के सम्बन्ध में कहा—हमें आज विश्व-राजनीति को पहले लेना चाहिए, और विश्व के राजनीतिक-मंच पर भारत जो पार्ट अदा कर रहा है उस पर विचार करना चाहिए।

भगवानदास हिन्दू-कोड-बिल और अम्बेडकर की आलोचना कर डालना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने पूछ दिया—विश्व-राजनीति को पहले लेने का क्या काम है? पहले घर में दीपक जलाके मस्जिद में जलाया जाता है।

महीप—कभी-कभी मस्जिद के मीनार पर बिना दीपक जलाये घर को प्रकाश नहीं मिलता। यह भी हमारे लिए कम दिलचस्प बात नहीं रहेगी। हमारे राष्ट्र-कर्णधारों में विश्व-राजनीति की सर्वज्ञता सुनी जाती है। हमें अपने राष्ट्र को विश्व-राजनीति के प्रकाश में देखना चाहिए,

और राष्ट्र-कर्णधारों की बुद्धि को भी।

सबकी राय हुई कि विश्व-राजनीति पर आज विचार किया जाय और आवश्यकता पड़ने पर अन्त में फिर इसके लिए समय दिया जाय। महीप ने बड़े उत्साह के साथ कहना शुरू किया—कितने ही लोग समझते हैं, कि विश्व या अन्तर्राष्ट्रीय-राजनीति कचहरी में वकीलों के अखाड़ा जैसी है, जहाँ बहस और नज़ीर के बल पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इसका उदाहरण वह इंगलैंड को देते हैं। वह समझते हैं कि इंगलैंड के वाग्मी और वकील राजनीतिज्ञों ने हर जगह अपनी पैनी सूझ और वक्तृत्वकला से पासा पलट दिया।

रामि—तो तुम समझते हो, प्रत्युत्पन्न-बुद्धि तथा वाग्मिता ऐसी जगहों पर कोई काम नहीं आती?

महीप—मैं उन्हें बेकार नहीं समझता। कोई भी काम सिर्फ एक कारण से नहीं होता, चाहे वह कारण कितना ही बड़ा हो। बहुत से कारण मिलकर एक कार्य को करते हैं। उन कारणों में जो छोटे भी हैं, वह भी अपना महत्त्व रखते हैं, क्योंकि उनके बिना कार्य नहीं हो सकता। लेकिन कारणों में कुछ को प्रधान या बड़ा कहा जाता है और कुछ को छोटा। इंगलैंड हो या अमेरिका, रूस हो या जर्मनी सभी जगह पर अंतर्राष्ट्रीय-पंचायतों में उसीकी बात मानी जाती है, जिसके पास ठोस सामरिक शक्ति हो। चीन में अफीम-युद्ध या बाक्सर-युद्ध में अंगरेज वाग्मिता के बल पर नहीं, बल्कि अपने सैनिक जहाजों, उनकी महान् तोपों और अग्निबोटों के बल पर हमेशा स्वार्थ-साधन करने में सफल होते रहे।

युधिष्ठिर—मैं तो यह भी कहूँगा, कि अन्तर्राष्ट्रीय-रंगमंच पर वाग्मिता की दुहाई ही फजूल है, क्योंकि वहाँ वक्ता अपनी भाषा में अपनी वक्तृत्व-कला भले ही दिखाये, लेकिन श्रोताओं में बहुतेरे ऐसे होते हैं, विरोधियों में विशेषकर, जिनके लिए वह सारी वक्तृत्व-कला है भैंस के आगे बीन बजाना। वह तो उसे तब समझते हैं, जब उनके लिए

दुभाषिया उल्था कर देता है। उल्था अगर पहले से किया रहता है, तो संदेह नहीं, भाषा अच्छी होती है, किन्तु उसमें वक्ता की वक्तृत्व-कला का कहाँ पता होता है?

खोजीराम—और ऐसी बैठकों में सदा ही पहले से तैयार किये गए भाषणों को तो देना नहीं पड़ता। कितनी ही बार वहाँ भाषण नहीं संवाद या विवाद होता है, जिसका सारा काम दुभाषियों के जरिये होता है। इसलिए सिर्फ बात के भरोसे जीत की बात कहनी ठीक नहीं है।

रामी—लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध या विदेशी राज्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए तो ऐसे ही प्रतिनिधि भेजे जाते हैं, जिनको वहाँ की भाषा, संस्कृति, इतिहास का परिचय हो—कम-से-कम उनका उस देश की भाषा से अवश्य परिचय हो, जहाँ उन्हें भेजा गया है।

महीप—रामी बहन, तुम भी बहुत भोली हो।

भगवानदास—मैं ऐसे अपार्लामेंट्री शब्द के प्रयोग का विरोध करता हूं।

महीप—यदि ऐसा है, तो मैं नौ बार दसों नखों से हाथ जोड़कर रामी बहन से क्षमा माँगता हूं।

रामी—क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं है महीप भाई, मैं समझती हूं, कोई बात ऐसी होगी जिसको जाने बिना मैंने कहा और इसीलिए तुमने मुझे भोली बनाया।

महीप—हां, बहन, और देश में चाहे न हो, लेकिन हमारे देश में तो स्वतंत्रता होने के बाद से ही नियम-सा बन गया है, और हमारे वही दूत या प्रतिनिधि कहीं भेजे जाने के योग्य समझे जाते हैं, जो कि वहां की भाषा, देश के इतिहास, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि से बिलकुल अपरिचित हैं। हां, यह ध्यान अवश्य रखा जाता है, कि वह अंगरेजी अच्छी तरह से बोल सकें। आखिर हमारे देश की स्वतंत्रता का यह

भी कितना अच्छा प्रमाण है, कि हमारे दूतावासों का सारा काम-काज अंगरेजी में चलता है, और हमारे दूत या प्रतिनिधि अपने पद के प्रमाण-पत्र को भी अंगरेजी में पेश करते हैं, हस्ताक्षर भी उनके अंगरेजी में होते हैं।

खोजीराम—सचमुच ही यह लज्जा से गड़ जाने की बात है, इस से बढ़कर जातीय-अपमान क्या हो सकता है?

महीप—लज्जा की बात छोड़िये डाक्टर साहब! लज्जा की क्या बात है, जब हम बृटिश-राष्ट्रमंडल के भीतर हैं, और कौरवों-पांडवों की तरह भीतर के लिए पांच और सौ होते हुए बाहर के लिए १०५ हैं, तब बृटिश-राष्ट्रमंडल की भाषा अंगरेजी का अन्तर्राष्ट्रीय-क्षेत्र में व्यवहार करना कौनसा अपराध है?

रामी—इतना व्यंग न करो महीप, हमारी राजदूता ने मास्को में हिन्दी में अपना दौत्य-प्रमाण-पत्र पेश किया था और हमारे प्रधान मंत्री ने स्तालिन के पास हिन्दी में तार द्वारा अभिनन्दन भेजा था।

महीप—यह सब अपनी खुशी से नहीं रामी बहन, इसके लिए रूसियों ने ही मजबूर किया, तब ऐसा हुआ। उन्होंने हमारी दूता से कहा कि न अंगरेजी हमारी सात पीढ़ी की मातृभाषा और न आपकी ही; अंगरेजी में भी पेश करने पर हमें रूसी में अनुवाद करना पड़ेगा, तो क्यों न हिन्दी से ही अनुवाद करें।

भगवानदास—यहां महीप जी, मैं आपसे सहमत हूँ। मैंने तो यह भी सुना था, कि मास्को के भारतीय-दूतावास में भेजे जाने वाले लोगों को इस तरह चुना गया था, कि हिन्दी बोलने जानने में वह साहबों से थोड़े अधिक हों। प्रमाण-पत्र में सोवियत् के राष्ट्रपति को सभापति कहके सम्बोधित किया गया था, जिस पर रूसियों की तरफ से एतराज हुआ और उनके सुझाव के अनुसार राष्ट्रपति बनाया गया।

रामी—विजयलक्ष्मी जी की दौत्य-योग्यता से तो आप सभी सहमत होंगे। वह स्त्री जाति के लिए अभिमान की चीज हैं। वह

पहली स्त्री हैं, भारत की ही नहीं, विश्व की, जिन्हें इतना दायित्वपूर्ण पद मिला। मैं समझती हूं, किसी पुरुष से कम योग्यतापूर्वक उन्होंने अपने दायित्व का निर्वाह नहीं किया।

भगवानदास—मैं तो रामी बहन, विजयलक्ष्मी जी को आधुनिक काल की पंच-कन्याओं में मानता हूं। फिर उनकी योग्यता के बारे में संदेह करने की गुंजाइश कहाँ है ?

सब लोग हंस पड़े और रामी ने पूछ दिया—पंच-कन्याओं का नाम तो प्रातः स्मरणीय पाँच पशस्विनी महिलाओं के लिए सुना था। पिताजी सवेरे उठकर जहां "अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्चीह्य-वन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।" का पाठ करते, वहां साथ ही यह भी—

"अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पंचकन्या स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनीः॥"

भला हम भी सुनें, आज की वह कौनसी स्त्री-समाज की आदर्श भूता पांचों कन्यायें हैं ?

भगवानदास—सुनिये; श्लोक ही आपको सुनाये देता हूं—"सरोजिन्यमृते चैव विजया कमलारुणे। पंचकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनीः।"

खोजीराम—भाई चुनाव तो बहुत अच्छा हुआ है, और मैं समझता हूँ, आज के भारत में इनसे बढ़कर प्रातः स्मरणीया महिलायें नहीं हो सकतीं।

महीप—मैं समझता हूँ, भगवानदास जी ने जो यह पांच कन्यायें आविष्कृत की हैं, इनकी योग्यता के बारे में कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बात होगी। किन्तु, मैं इतना अवश्य कहूँगा, कि यह देश के भीतर ही प्रातः स्मरणीया होने लायक हैं। विजयलक्ष्मी सासानीबम्बिश्नान्-बम्बिश्न (रानियों की रानी) से कम दिमाग वाली नहीं है, और उनको भेज दिया गया मास्को, जहां के लिए वह बिलकुल अनफिट

पानी की मछली स्थल में जैसी थीं। दो साल वहां रहकर वह एक जौं-भर भी तो मास्को को दिल्ली के नजदीक नहीं ला सकीं। लेकिन उनको क्या दोष दिया जाय, जबकि बड़े भैया की सारी शक्ति दूसरी ओर लगी थी। यदि उन्होंने कुछ किया है, तो यही कि मास्को के भारतीय दूतावास को इंगलैंड और अमेरिका के टक्कर का बना दिया।

खोजीराम—यह मत कहो महीप, इतनी बेदर्दी से भारत के गरीबों की कमाई में आग लगाना सहृदयता का परिचय नहीं देता।[1]

महीप—सहृदयता जाय चूल्हे-भाड़ में डाक्टर साहब, वहाँ तो भारतवर्ष के मान को ऊपर रखना था। सेवाग्राम की फूस की झोंपड़ी में गांधी भले ही विलायती लार्डों का आतिथ्य करके अपने देश के मान को कायम रख सकें, लेकिन मास्को सेवाग्राम नहीं है। हमारी राजदूता को मास्को के बने फर्नीचर पसन्द नहीं आये, वह स्वयं विमान से उड़कर फर्नीचर खरीदने स्वीडन पहुँचीं। अपनी कलात्मक-सुरुचि के अनुसार ही उन्होंने भारतीय-दूतावास को सजाया होगा।

---

1. भारतीय दूतों का खर्च १९४८

वाशिंग्टन	२२,८६,८००	मास्को	८,४१,३००
पेरिस	४,१६,०००	चीन	६,८०,६००
ब्रुसेल्स	३,६८,६००	मिश्र	७,२३,०००
ईरान	६,५२,१००	नेपाल	२,१३,२००
अफगानिस्तान	४,५४,४००	ब्राजील	४,३७,६००
तुर्की	६,७४,१००	पराग्वाय	१,६५,१००
रंगून	४,३८,६००	बर्न	४,६३,७००
स्टाकहाम	१,३१,४००	लंदन (हाईकमिश्नर)	४५,४०,०००
आस्ट्रेलिया	२,१२,६००	कोलम्बो	२,०८,५००
कराची	५,३८,१००	जोहानेसबर्ग	१,३४,२००
लाहौर	२,६३,३००	ढाका	१,४२,८००
तोक्यो (मिशन)	३,३६,६००		

भगवानदास—और इस पर भी आप उन्हें अनफिट और असफल कहना चाहते हैं ?

युधिष्ठिर—नहीं, असफल क्यों ? डाक्टर सर राधाकृष्णन् के लिए वह पहले से ऐसा दूतावास तैयार कर आई हैं, जिसे देखकर इन्द्र-भवन भी सिहाता होगा।

महीप—मैं अपनी भूल को मानता हूँ, और अनफिट शब्द को वापस लेता हूँ। मैं समझता हूँ, वह सबसे फिट राजदूता हैं, यदि किसी और दूत को भेजने से पहले उन्हींको हमारे सभी बड़े-बड़े दूतावासों मे भेज दिया जाय, निश्चय ही उनकी कायापलट हो जायगी, और वह सजकर जगमग-जगमग करने लगेंगे कि दुनिया दांत तले उंगली काटने के लिए तैयार हो जायगी। लेकिन छोड़िये ये बाहरी बातें, हमें यहां चिरतरुणी श्रीमती विजयलक्ष्मी की बात तो नहीं करनी है।

खोजीराम—श्रीमती नहीं मैडम, अब हमारे अखबारों के विदेशी संवाददाता उन्हें मैडम कहने लगे हैं।

महीप—अच्छी बात है मैडम ही सही। दूसरा राजदूत चीन का ले लीजिये। श्री पनिक्कर की योग्यता यही है कि वह अंगरेजी के बड़े लेखक और वक्ता हैं, लेकिन चीन के तब के सर्वेसर्वा चाङकाइशक और उनके अधिकांश मन्त्रियों का अंगरेजी से उतना ही वास्ता है, जितना गदहे का सींग से।

भगवानदास—तो वह काम कैसे चलाते होंगे ? क्या सब काम दुभाषिया के ही भरोसे चलता है ?

महीप—दुभाषिया के भरोसे। लेकिन दुभाषिया किसी भारतीय भाषा से चीनी भाषा में अनुवाद नहीं करता, बल्कि अंगरेजी से—पनिक्कर साहब अंगरेजी में बोलते हैं, उसका चीनी में अनुवाद करके चाङ्काइशक को सुनाया जाता है, फिर चाङ् की चीनी को अंगरेजी में करके पनिक्कर साहब के सामने रखा जाता है।

भगवानदास—कितना भारी अपमान! चीन के लोग क्या समझते होंगे?

युधिष्ठिर—चीन के लोग भारत को अच्छी तरह समझते हैं। उनका और हमारा सम्बन्ध दो हजार वर्षों का है, और ऊपर-ऊपर का नहीं। उन्हें भारत के बारे में कोई गलतफहमी नहीं हो सकती।

भगवानदास—गलतफहमी नहीं हो, किन्तु हमारा पुराना सम्बन्ध दोनों देशों को और नजदीक लाने में बहुत सहायक हो सकता था।

युधिष्ठिर—आप तो दूसरी ही बातबीच में डाल रहे हैं। लेकिन अभी तो हमारे पास वस्तुतः उपयुक्त दूतों का एक तरह अभाव है। हमारे दूत यदि कुछ थोड़ा-बहुत काम कर सकते हैं, तो इंगलैंड और अमेरिका में ही।

भगवानदास—आज यदि इञ्जीनियरी या मेडिकल कालेज में किसी छात्र को भेजें तो चार-पाँच वर्ष बाद वह तैयार होकर निकलता है, फिर व्यवहारिक शिक्षा भी आवश्यक होती है। लेकिन क्या भावी दूतों के तैयार करने का भी कोई आयोजन दिखाई दे रहा है?

खोजीराम—आयोजन की बात पूछ रहे हो? आयोजन यही है कि भाई-भतीजे-भांजे यदि कहीं तीन-चारसौ मासिक पर हों, तो चट उन्हें किसी दूतावास में दो हजार की जगह पर भेज दिया जाय। बस अंगरेजी बोलना आना चाहिए और पोशाक में टिपटाप हों। हाँ, विशेष अवसर पर राष्ट्रीय-पोशाक लगाने का भी अभ्यास जरूर होना चाहिए।

रामी—राष्ट्रीय पोशाक! कौनसी राष्ट्रीय पोशाक?

महीप—राष्ट्रीय पोशाक आपको मालूम नहीं? वही जिसे नेहरू जी मौके-बेमौके धारण करते हैं।

रामी—मुझे तो सचमुच नेहरू जी की बुद्धि पर तरस आता है। उससे भद्दी रूप बिगाड़ने वाली कोई पोशाक न होगी।

महीप—धन्यवाद रामी बहिन, तुम्हारे फैसले पर। यह राष्ट्रीय

पोशाक का चूड़ीदार पायजामा, यदि कहीं आदमी के पैर दुबले-पतले हुए तो 'शंकर' का कार्टून बन जाता है, और वह घुटनों तक लटकता अचकन, जिसे काट-छाँटकर शेरवानी का रूप दे दिया गया है। दोनों के बाद सिर्फ पटे के बाल और बगल में सिर्फ एक चीज की कमी रह जाती है। भला इसमें कौनसी सुरुचि का परिचय मिलता है ?

युधिष्ठिर—सुरुचि की बात कह रहे हो, यह तो बड़ी ही अरुचि-पूर्ण पोशाक है। १९३५ ई० में तोकियो में एक दक्षिण भारतीय सज्जन इसी राष्ट्रीय पोशाक का प्रदर्शन कर रहे थे। एक जापानी दोस्त ने मुझसे कहा था कि मैं उन्हें पोषाक के दोष समझा दूं। मैंने धृष्टता की, लेकिन भारतीय दोस्त—तारीफ यह कि वह मद्रासी थे—ने एक-दम कह डाला, हमें जापानियों की रुचि की परवाह नहीं।

रामी—आप जानते हैं युधिष्ठिर भाई, भारतीय मुसलमान महिलायें इस चूड़ीदार पाजामे को राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और धार्मिक पोशाक मानती थीं, लेकिन जब उन्होंने अपने को शीशे में देखा, तो बात समझ में आ गई, और देखते हैं न पक्की पाकिस्तानियों तक ने भी उसे छोड़कर साड़ी को अपनाया है।

खोजीराम—यहाँ न संस्कृति की बात है न सुरुचि की ही, यदि है तो दुराग्रह मात्र। भला यह राष्ट्रीय पोशाक कैसे हुई ? यदि राष्ट्रीय पोशाक है तो पहले राजाजी और सरदार पटेल को इसे पहनना चाहिए। मुगलों के वक्त की यह नकल है। यदि राष्ट्रीय संस्कृति का ही ध्यान रखना है, तो फिर धोती और अङ्गरखा होना चाहिए। मैं समझता हूँ, वह इस बेहूदी पोशाक से हजार गुना सुन्दर होगा। यदि यह नहीं पसन्द है, तो कोट-पतलून रहने दीजिये। आखिर कोट-पतलून अठारहवीं शताब्दी के यूरोप में नहीं पहना जाता था, यह तो आधु-निक पोशाक है, और हमारे देश को गर्मियों को छोड़कर काम के लिए भी अच्छा है।

युधिष्ठिर—हम लोग फिर बहकने लगे। हमें विश्व-राजनीति पर विचार करना है।

भगवानदास—यह तो स्पष्ट हो गया, कि विदेशों में हम जिनको भेज रहे हैं, वे पक्के गोइयां नहीं हैं।

महीप—और न पक्के गोइयों को तैयार करने की हम कोशिश कर रहे हैं। दिल्ली विश्व-विद्यालय में हमें एक फेकल्टी खोलनी चाहिए, जिसमें सभी स्वतंत्र देशों की भाषाओं के ही पढ़ाने का प्रबंध न हो, बल्कि ४-५ साल में उन देशों की संस्कृति, इतिहास आदि सभी के सम्बन्ध में विशेषज्ञ तैयार किये जा सकें। किन्तु हमारे कर्णधारों को अभी तो अंग्रेज वाइसचांसलर से बढ़कर कोई योग्य मिल ही नहीं रहा है।

खोजीराम—लेकिन महीप भाई, १५ अगस्त १६४७ को दो साल ही तो बीते हैं, जन्मभर का कोढ़ क्या एक एतवार से कहीं दूर हुआ है?

महीप—लेकिन एक एतवार भी तो शुरू होना चाहिए, हम तो कोई एतवार नहीं देख रहे हैं। जान पड़ता है, जहां तक बाहरी दौत्य सम्बन्ध स्थापित करने की बात है, उन्हीं पुराने नौकरशाहों को दस वर्ष तक इधर-से-उधर घुमाया जायगा—सुनते हैं अब भूतपूर्व राजा लोगों को भी राजप्रमुख और प्रान्तों के गवर्नर तक ही न रखके दूत बनाने की बात चल रही है।

खोजीराम—और महीप भाई, पुराने मुकुटधारियों में एक तो हीरा हमारे हाथ में बेकार जा रहा है।

महीप—सो कौन?

खोजीराम—काश्मीर और जम्मू के महाराज सर हरीसिंह जी सी० आई० ई०, जी० सी० एस० आई०, जिनकी शाहखर्ची की दुनिया दाद दे चुकी है। फिर तुर्की के दूत को लौटाने की क्या जरूरत थी?

महीप—मैं तो समझता हूँ, हमारे बूढ़े कर्णधारों से कोई भी दस साल से आगे रहने की आशा नहीं रखता और दस साल तक तो अभी पुराने तर्कश के तीर उनके पास मौजूद हैं ही।

खोजीराम—चाहे वह तर्कश के तीर मोर्चा खाकर बेकार हो गए हैं।

युधिष्ठिर—तो क्या राजदूतों और राज-प्रतिनिधियों तक ही हमारी आज की बैठक सीमित रहेगी?

महीप—नहीं, हम यही बतलाना चाहते थे, कि जहां भविष्य की वैदेशिक राजनीति की इमारत की हमें ठोस नींव डालने की आवश्यकता थी, वहाँ कोसी, दामोदर, महानदी, नर्मदा, कावेरी की कागजी घोषणाओं तक भी वह नहीं पहुँची है। वैदेशिक राजनीति की सर्वज्ञता की बात कुछ मत कहिए। अभी तक तो उसमें सभी जगह नौसिखिया-पन ही देखा जाता है। ले लीजिए काश्मीर के ही झगड़े को। जब काश्मीर भारत में सम्मिलित हो गया, तो उसके मामले को राष्ट्रसंघ में ले जाने की क्या आवश्यकता थी? राष्ट्रसंघ को नचाने वाले एंग्लो-अमेरिकन गुट की रुझान का क्या पहले से पता नहीं था? कौन नहीं जानता था, कि यह दोनों साम्राज्यवादी देश सोवियत के सीमान्त पर अवस्थित गिलगित के इलाके को ऐसे राज्य के हाथ में रखना चाहते हैं, जो सदा उनके मुँह की ओर देखने वाला हो, और ऐसा राज्य पाकिस्तान ही हो सकता है।

खोजीराम—उस वक्त न सही महीप जी, किन्तु अब तो भारत अपने को आप्रलय न्यायावतार, जनतंत्रता-समर्थक, समता-प्रसारक, परद्रव्ये-लोष्ठवत्-दर्शी पवित्र बृटिश राष्ट्रमंडल का अंग बना चुका है। अब तो कोई डर नहीं।

युधिष्ठिर—बकरे की जान गई, खाने वाले को स्वाद नहीं आया। जान पड़ता है सब करने पर भी काश्मीर का मामला हमारी इच्छानुसार हल होता दिखाई नहीं पड़ता।

खोजीराम—क्या काश्मीर का बंटवारा हो जायगा, या सब बात वोट पर रख दी जायगी ?

महीप—मैं तो कहूँगा, कि काश्मीर के बारे में हमारे राजनीति-सर्वज्ञ ने अपने राजनीतिक-दिवालियेपन का परिचय दिया है।

युधिष्ठिर—ये बड़े कठोर शब्द हैं। मैं समझता हूँ, इसी भाव को नरम शब्दों में भी कहा जा सकता है।

महीप—अच्छा, मैं कहूंगा काश्मीर के बारे में जो कदम उठाया गया, वह बहुत भूल का था। यह राजनीतिक चाल नहीं जुआ खेला जा रहा है और बहुत बुरी तरह का जुआ। सर्वज्ञ देवता कहते हैं, काश्मीर के बारे में निष्पक्ष राय ले ली जाय। यहाँ तक तो कोई बात नहीं, किन्तु साथ ही वह यह भी कहते हैं, कि यदि लोगों का बहुमत वैसी राय दे दे तो सारा काश्मीर भारत में आ जायगा, यदि ५१ प्रतिशत वोट पाकिस्तान के पक्ष में हों, तो सारा जम्मू काश्मीर पाकिस्तान को मिल जाय।

भगवानदास—अनर्थ, अनर्थ ! क्या वे इलाके भी पाकिस्तान को दे दिये जायं, जहाँ के ७०-८० फीसदी लोग भारत में रहना चाहते हैं, और पाकिस्तान में जाने के बाद हिन्दू और बौद्ध होने के कारण जिन्हें पंजाब-सिंध के भाइयों की भाँति सब कुछ छोड़कर शरणार्थी बन भारत की ओर भागना पड़े ?

युधिष्ठिर—नेहरूजी को विश्वास है, कि उनके सात पीढ़ी पहले के पूर्वजों के उत्तराधिकारी उनकी ओर हैं, बहुमत उन्हें मिलेगा। वहाँ बहुमत का अर्थ है, दो-तिहाई मुसलमानों का बहुमत, वह हिन्दुस्तान के पक्ष में वोट देगा, इसलिए गिलगित तक और शायद चित्राल तक भारत की ध्वजा फहराने लगेगी।

भगवानदास—चौबेजी भी छब्बे बनने चले थे, जानते हैं न ?

महीप—और दूबे ही रह गए। वह तो दूबे रह भी गए, यहाँ तो सरासर जुआ खेला जा रहा है और जम्मू वालों के मत्थे।

युधिष्ठिर—जम्मू वालों के ही मत्थे नहीं, लद्दाख के बौद्ध 'त्राहि', 'त्राहि' कर रहे हैं। वहां कोई नहीं चाहता कि लद्दाख पाकिस्तान में जाय, लेकिन यदि मीरपुर, पुंछ, काश्मीर-उपत्यका, दरदिस्तान, बालतिस्तान अपने बहुमत को पाकिस्तान के पक्ष में दे दें, तो 'लौटें राम सिया मैं हारी' कहते नेहरूजी सबको पाकिस्तान में ढकेलने के लिए तैयार हैं—जब काश्मीर नहीं मिला, तो दूसरों को लेकर क्या करना है ?

महीप—इसीलिए मैं इसे जुआ कहता हूं। काश्मीर-जम्मू रियासत में मतदान का सवाल ही क्यों उठाया गया ? अंग्रेजों ने चलते समय मान ही लिया था, कि रियासत जहां जाना चाहे, जा सकती है। जब काश्मीर ने भारत में आना स्वीकार कर लिया, तो द्रौपदी को दाव पर लगाने की क्या आवश्यकता थी ? यदि पाकिस्तान झगड़ा करता, तो एक बार सारी शक्ति लगाके वहां की भूमि को अरिविहीन कर दिया जाता। यदि मतदान ही मानना था, तो भाषा की दृष्टि से डोगरी, पंजाबी, दरदी, बाल्ती, काश्मीरी और तिब्बती (लद्दाखी) के छः क्षेत्र हैं। एक-एक क्षेत्र को एक-एक इकाई मानते, और प्रत्येक इकाई का वोट उसीके भाग्य के निपटारे के लिए माना जाना चाहिए था, निश्चय ही पंजाबी भाषा-भाषी क्षेत्र में नेहरूजी बहुमत क्या दस सैकड़ा भी वोट पाने की आशा नहीं रख सकते। वही बात दरद और बाल्ती क्षेत्र की है।

भगवानदास—अब भी क्यों नहीं अकल आती। इसे साफ-साफ कहने में क्यों लज्जा आती है ?

महीप—हमारे अद्वितीय राजनीतिज्ञ एकबोला बनना चाहते हैं। पाकिस्तान इसमें कहीं होशियार है। पहले काश्मीर में अपने दखल देने की बात को स्वीकार नहीं करता था, लेकिन अन्त में उसने साफ मान लिया—शायद उसके गुरू अंग्रेजों का भी इसमें हाथ है। भारत भी साफ कह सकता है, कि वैधानिक तौर से काश्मीर भारत के भीतर

है, इसलिए हम किसी पंच-पंचायत को नहीं चाहते, या यदि मत लेना हो, तो उसके प्रभाव को एकाएक भाषा-क्षेत्र के भीतर सीमित करके रखना चाहिए।

खोजीराम—मुश्किल यह है, कि राष्ट्रसंघ को ऐसी बातों में बिलकुल पगु देखते हुए भी हम अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देते हैं। क्या देखा नहीं, फिलिस्तीन में यहूदियों ने राष्ट्रसंघ के बल पर सफलता नहीं पाई।

महीप—और दूसरी बात लीजिए। रियासतों के बारे में आगे चर्चा करेंगे, किन्तु नेपाल को हमारे महान् राजनीतिज्ञ भारत के भीतर नहीं बल्कि बिलकुल सर्वतंत्र स्वतंत्र महान् राष्ट्र मानते हैं। ब्रिटेन-अमेरिका अपने-अपने राजदूत वहाँ भेज रहे हैं। अपने यहाँ नेपाल के दूतावास स्थापित कर रहे हैं, नेपाल को सैनिक अड्डा बनाने की बात चल रही है। तो भी हमारी सरकार अपने बड़े भाइयों से पीछे नहीं रहना चाहती, बल्कि वह भी नेपाल को भारत से बिलकुल दूर चन्द्रलोक के पास कोई राष्ट्र मानकर अपने शिष्टमंडल और राजदूत भेज रही है। कौन नेपाल? दुनिया में सबसे निकृष्ट प्रतिगामी, सामन्तशाही क्रूर शासन रखने वाला नेपाल—जहाँ जनता को कोई अधिकार नहीं है। असली राजा को भी कोई अधिकार नहीं है। जहाँ खूनी काण्ड के बल पर पुश्तैनी मन्त्री राणाखान्दान के पचास-साठ परिवार सारे देश और वहाँ की जनता को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति समझते हैं। नेपाल की तराई में हमारे वही भाई बसते हैं, जो बगल के हमारे जिलों में; लेकिन हम उन्हें चन्द्र-लोक की प्रजा समझना चाहते हैं। नेपाल जानता है, किसी भी समय जनता का रुख विरोधी होने पर भारत-सरकार को अपना रुख बदलना पड़ेगा, इसलिए वह चाहता है, कि जल्दी राष्ट्रसंघ का मेम्बर बन जाय, जिससे पड़ोसी भारत उसके भीतर दखल देने लायक न रह जाय। सचमुच ही हमारे यहाँ राजनीति का अजीर्ण हो गया है।

नेपाल के राष्ट्रसंघ का सदस्य होने में सबसे पहले भारत को विरोध करना चाहिए था, लेकिन विरोध किया है रूस ने।

भगवानदास—भाई, मैं तो शास्त्र-वेद का विद्यार्थी था। गांधीजी में श्रद्धा बढ़ी, तो कुछ राजनीतिक बातें भी सुनने लगा। पिता ने नहीं चाहा था, कि मैं म्लेच्छ-भाषा में हाथ लगाऊं, लेकिन देखा कि उसके बिना राजनीति समझना मुश्किल है, फिर चोरी छिपके कुछ अंगरेजी भी पढ़ ली और अब तुम्हारे पास भी आया, लेकिन मैं तो देखता हूँ, हमारे प्रधान मन्त्री के सूझ की धाक आज सारी दुनिया में है।

महीप—क्योंकि हमारी दुनिया रूटर और अंगरेजी अखबारों तक ही सीमित है। बड़े-बड़े अखबार पूंजीपतियों के हाथ में हैं, और वह नेताओं के गुणगान में कालम-के-कालम काले कर रहे हैं, वैसे ही जैसे कुछ साल पहले चीन के अखबार करते थे। हमारे प्रधान मंत्री ने तो पीछे जाकर भारत को बृटिश राष्ट्रसंघ में ढकेला, किंतु बृटिश समाचार-साम्राज्य को तो हमारे पत्रस्वामी पूंजीपतियों ने पहले ही स्वीकार कर लिया है। रूटर की आंखों से अब भी हम दुनिया को देखते हैं। इंगलैंड, अमेरिका के अखबार तो बड़ों-बड़ों को बुद्धू बनाने में होशियार हैं, बेचारे हमारे प्रधान मंत्री उन्हींकी तान पर नाचते हैं, जिस तान का एक रूप यह अखबारी तारीफ का पुल भी है। रोटी मुंह में दाबे कौवे को देखकर बिल्ली ने "अहो रूपं, अहो ध्वनिः" कहना शुरू किया। फूल-फुला होकर कौवे ने अपने मुंह की रोटी गँवा दी। इन अखबारी तारीफों से राजनीतिज्ञता की परीक्षा नहीं होती, परीक्षा होती है परिणाम से। और अभी तक कहीं पर भी हमारे राजनीतिज्ञ कोई सफलता नहीं दिखला पाये। मैंने पहले ही कहा था, कि राजनीति की बाजी बात के बल पर नहीं जीती जा सकती। विदेश-मंत्री की शक्ति सेना-मंत्री के बल पर अवलंबित है। यदि सेना-मंत्री के हाथ मजबूत हैं, तो विदेश मंत्री अपने काम में जरूर सफल होगा, उसकी बात को लोग

बड़े ध्यान से सुनेंगे। "बिनु भय होय न प्रीति।"

भगवानदास—इसका अर्थ तो यह हुआ, कि हमें अपनी सैनिक शक्ति मजबूत करनी चाहिए, तभी हमारी बात बाहर सुनी जायगी। किन्तु यह तो गांधीजी की शिक्षा और सिद्धान्त के विरुद्ध जाना होगा।

युधिष्ठिर—गांधीजी के सिद्धान्त के बारे में कहने का आपको पूरा मौका मिलेगा भगवान भाई, किन्तु यह तो मानेंगे ही कि अभी परम गांधीवादी भी पुलिस और सेना को गोलियों से मदद लेने से इन्कारी नहीं हैं, और न पुलिस और सेना पर तिगुना-चौगुना व्यय करने से बाज आते हैं। आज हम सारी विश्व-राजनीति पर तो नहीं बहस कर सके, किन्तु समय बहुत हो गया, अब हमें यहीं समाप्त करना है।

भगवानदास—हां, मुझे मणिकर्णिका पर संध्या करने जाना है। युधिष्ठिर भाई ने अच्छा किया, जो इसी समय सभा बर्खास्त कर दी।

तीसरा अध्याय

सैनिक शक्ति

आज युधिष्ठिर ने गोष्ठी आरम्भ की—हमारे कितने भाइयों की इस मिथ्या धारणा के बारे में हम पहले कह आये हैं, कि लच्छेदार व्याख्यानों से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वारा-न्यारा किया जा सकता है। जिस कूटनीति के पीछे प्रबल सेना रहती है, उसीका दुनिया में मोल है। चाहे बोली कितनी ही टूटी-फूटी हो, लेकिन जिस राष्ट्र के पीछे शस्त्रबल है, उसीकी बात कान लगाकर लोग सुनते हैं। हमारे लोग पाँच सवारों में नाम लिखाना चाहते हैं, किंतु जहाँ सैनिक-शक्ति को मजबूत करने की बात है, वहाँ वह समझते हैं कि इंगलैंड और अमेरिका से तृतीय श्रेणी के कुछ सैनिक विमानों, कुछ पुराने घिसे-टूटे सैनिक-पोतों और इसी तरह के मंगनी के टैंकों और तोपों से हम बलवान बन जायंगे। हमारा संख्या-बल कितना ही हो, हमारी सैनिक सूझ, सैनिक अनुशासन, सैनिक वीरता चाहे कितनी ही हो, किंतु उक्त प्रकार से हम देश को सैनिक तौर से सबल नहीं बना सकते।

भगवानदास—कहते हैं इसी कमजोरी से बचने के लिए भारत को बृटिश राष्ट्रमण्डल में रहने की आवश्यकता पड़ी।

युधिष्ठिर—बृटिश-साम्राज्य (राष्ट्रमण्डल) के भीतर भारत का रहना सैनिक दृष्टि से और भी बुरा हुआ है। बृटिश राष्ट्रमण्डल के दूसरे देश—जो छोटा होने पर भी उद्योग में हमसे आगे बढ़े हुए हैं—यही चाहते हैं, कि हमारा संख्याबल बृटिश साम्राज्य की रक्षा का काम

करें। अभी तक नेपाल के शासक अपने निरीह तरुणों को अंग्रेजों के काम में तोपों का चारा बनने के लिए बेचते रहे, किन्तु अब वही बात चुपचाप भारत ने करना स्वीकार कर लिया है। द-गाल फ्रांस के प्रतिगामियों का आजकल नेतृत्व कर रहा है, और यूरोप का वह फिर से एक नया फासिस्तवादी राज्य फ्रांस में स्थापित करना चाहता है। रूस को वह फूटी आंखों भी नहीं देख सकता। लेकिन, रूस के विरुद्ध किये गए अतलांतिक-समझौते से वह प्रसन्न नहीं हुआ। उसने ठीक ही कहा—इस समझौते का मतलब है कि रूस के विरुद्ध लड़ी जाने वाली लड़ाई में फ्रांसीसी सिपाहियों को भारी संख्या में मौत के मुंह में झोंका जाय। अमेरिका अतलांतिक पार से जहाजों में भरके सारे सैनिक नहीं ला सकेगा। इंगलैंड के पास भी बहाना कुछ हद तक है, किन्तु फ्रांस के पास क्या बहाना है? इसलिए तृतीय महायुद्ध में फ्रांस को तीन-चौथाई सैनिक देने होंगे। द-गाल ने समझ लिया कि फ्रांसीसी तरुणों के मत्थे अतलांतिक समझौता किया जा रहा है, इसी लिए वह प्रसन्न नहीं हो सकता था।

रामी—तब तो हमें भारी बुद्धू बनाया गया।

युधिष्ठिर—पश्चिमी यूरोप में जो काम फ्रांस पर डाला जा रहा है, वही खेल एसिया में भारत के मत्थे खेला जा रहा है। यहाँ किसी अतलांतिक समझौते की भी आवश्यकता नहीं, बृटिश राष्ट्रमण्डल में रहना किसी समझौते से कहीं बढ़कर है। बृटिश राष्ट्रमण्डल के किसी राज्य के विरुद्ध यदि आक्रमणात्मक या रक्षात्मक युद्ध हुए, तो भारत को उसमें कूदना पड़ेगा। इसे साफ न कहकर तरह-तरह की बहानेबाजियाँ जो हमारे राजनीति-सर्वज्ञ कर रहे हैं, वह बच्चों को भुलवाने की बातें हैं। भविष्य के रुख में यदि कोई सन्देह था, तो बर्मा के गृह-युद्ध में दखल देकर भारत ने साफ कर दिया। भावी युद्ध में बृटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य भारत कैसे तटस्थ रह सकता है? अकल बेच नहीं खाई है, कि लोग विश्वास कर लेंगे, कि अंग्रेज

राजा के मुकुट के नीचे संगठित बृटिश राष्ट्रमण्डल का एक अभिन्न अंग भारत न अंग्रेजों की ओर है और न रूस की ओर। स्वीकार क्यों नहीं करते कि एसिया में युगों के बाद जो नया आमूल परिवर्त्तन हो रहा है, उससे हमारा होश-हवास खतम हो गया है और जो बलिष्ठ-से-बलिष्ठ गुट्ट हमारा सहायक हो सकता है, हम उसके साथ हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि इंगलैंड अपने सारे साम्राज्य के साथ अमेरिका की उनचासवीं रियासत-मात्र है। दक्षिण-पूर्व-एसिया के लिए किसी अलग समझौते की आवश्यकता नहीं, भारत की गैया को बृटिश साम्राज्य के खूंटे के साथ मजबूती से बाँध दिया गया है। यदि तृतीय विश्वयुद्ध हुआ, तो संख्या के कारण यूरोप में फ्रांस पर जिस काम का भार है, वही एसिया में भारत पर है। इसमें सन्देह नहीं, अमेरिकन हिन्दुस्तान में कुछ हवाई अड्डे बना देंगे, कुछ सैनिक विमान भी दे देंगे, कितने ही अमेरिकन सैनिक परामर्शदाता भी आ जायंगे, हथियार भी मिलेंगे, लेकिन अगले युद्ध में पच्चीस-तीस नहीं, पचासों लाख की संख्या में हमारे नौजवानों को रूस के विरुद्ध लड़ना होगा—लड़ने जाना नहीं होगा, क्योंकि युद्ध भारत में ही होगा। वस्तुतः तटस्थता का ढोंग रचके न हम रूस की आँख में धूल झोंक सकते हैं, न अपने लोगों की ही आँखों में। हमारे बहन-भाई राजनीतिज्ञ "चोर की दाढ़ी में तिनका" के अनुसार गला फाड़-फाड़कर मौके-बेमौके बेकार ही तटस्थता की बात करते हैं, रूस विश्वास नहीं करता और बेविन तथा ट्रूमन के मुख पर उससे हल्की-सी मुस्कराहट-भर आ जाती है।

महीप—हम इसीके पात्र हैं।

युधिष्ठिर—किसीको भ्रम न होना चाहिए, कि जब तृतीय युद्ध की तैयारी हो रही है, जिसमें भारत को विशेष भाग लेना है, तो अमेरिका अवश्य भारत को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनायेगा। यह ख्याल गलत होगा। उन्हें आपके सिपाही चाहिए। उनकी दृष्टि में

आपके सेना-संचालक निकम्मे हैं, क्योंकि वह इंगलैंड के चेले हैं। इंगलैंड दुनिया-भर की सेनाओं के सेना-संचालकों की योग्यता का अपने को सबसे बड़ा निर्णायक समझता था; उसकी दृष्टि में रूसी सेनापति सबसे अयोग्य थे। लेकिन इंगलैंड के सेनापति युद्ध में एक के बाद एक निकम्मे निकलते गए। सिंगापुर में दो महान् सैनिक पोतों को मुफ्त में खो देना अंग्रेज सेनापतियों का रण-चातुरी का दिवाला था। जिस तरह उनकी सारी भविष्यवाणियाँ गलत साबित हुईं, उससे साफ हो गया कि इंगलैंड के सेनापति सबसे निकम्मे हैं। हाँ, हमारे लिए अवश्य वह आज भी भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य हैं। कुछ भी हो अमेरिकन साम्राज्यवाद, जहां तक सेना-संचालकों का संबंध है, हमें कभी स्वावलम्बी नहीं होने देगा। उसकी कोशिश यही रहेगी, कि हम हरेक आधुनिक हथियार के लिए उसके मुंह की ओर देखते रहें, उसके हाथ में रहें।

महीप—कैसी बेबसी !

युधिष्ठिर—हमारे राष्ट्रकर्णधार पाताल की ओर नेह लगाये हैं कि अमेरिका सभी तरह के यंत्रों को लाकर भारतवर्ष को उद्योग-प्रधान बना देगा और फिर हम टैंक, सैनिक-पोत, सैनिक-विमान सभी चीजें अपने यहाँ बनाने लगेंगे। प्रतीक्षा करने वाले करके देख लें। आँख पोंछने के लिए छोटी-मोटी चीजें छोड़कर अमेरिका कुछ नहीं देने वाला है। नफील्ड ने बिड़ला से मिलकर विलायत में बने पुर्जों को इकट्ठा करके "हिन्दुस्तान" नाम की मोटर बनाने का कारखाना खोल दिया है। ऐसे ही कोई अमेरिकन कम्पनी भी किसी दूसरी चीज के पुर्जों को बाहर से लाकर जमा करने का कारखाना खोल सकती है। इसीको हम बुद्धू समझने लगेंगे, कि हमारे यहाँ मोटरें, हवाई जहाज बनने लगे। अमेरिकन साम्राज्यवाद को केवल आपके सैनिक चाहिएं, और दूसरी कोई चीज वह आपसे लेना नहीं चाहता। वह और किसी चीज के लिए आपको तैयार नहीं करना चाहेगा। आप १९४९ में चीन में

कई तरह की मशीनें बनते देखेंगे, औद्योगिक दृष्टि से चीन तब तक अपने पैरों पर खड़ा हो गया रहेगा, लेकिन तब तक भी ये बूढ़े राज-नीतिज्ञ—यदि जीवित रह सके—आंखों पर हाथ की छाया किये अमेरिका की ओर टकटकी लगाये रहेंगे।

महीप—हमारे सैनिक-बजट की रकम को देखकर अवश्य मालूम होगा कि बजट[1] की भांति हमारा सैनिक बल भी कई गुना बढ़ गया है।

युधिष्ठिर—लेकिन तुम जानते ही हो, हमारे देश में सेना का कोई शक्तिशाली हथियार नहीं बनता। हमारी सभी चीजें मंगनी की हैं। मोटर छोड़ पूरी बाइसिकल भी यहां नहीं बनती, फिर टैंक का क्या सवाल हो सकता है? अभी तो अच्छी क़िस्म की तोप वाला इस्पात भी नहीं तैयार होता, फिर शक्तिशाली तोपें कहाँ से बन सकती हैं। विजगापट्टम में जहाज बनने का स्वदेशी कारखाना खुला। सभी सरदारों ने वालचंद-हीराचंद के पास अभिनन्दन और मंगल-कामनाएं भेजीं, लेकिन अब इस स्वदेशी पोत-निर्माण-कम्पनी का कहना है, कि भारतवर्ष में जिस पोत के बनाने पर ४० लाख लगता है, वह इंगलैंड में २० लाख में खरीदा जा सकता है। तो पोत-निर्माण बन्द कर दो, सस्ता जहाज जो लेना है; चाहे उसके कारण हम विदेशों के हाथ में न चले जायं! यह कोई नई बात नहीं है। मुगल बादशाहों के भले दिनों में भी सैनिक-पोतों के बारे में यही नीति बरती जाती थी; पैसा दिल्ली के खजाने से दिया जाता था, और सैनिक-पोतों के रखने और संचालन करने का काम पुर्तगाली करते थे। मराठों ने पीछे यह भार फ्रांसीसियों और दूसरों पर छोड़ा था। जान पड़ता है, हम भी अपने इन पूर्वजों से आगे बढ़ना नहीं चाहते। यदि उद्योगों की नकल हमारे देश के अदूरदर्शी पूंजीपतियों के हाथों में रही, तो वह बंटाढार

---

१. १२१०८ लाख/२४७३७ लाख (१९४८-४९ ई०)

करके ही छोड़ेंगे। यदि हमारे राजनीतिक नेता एसिया के परिवर्तन को देखकर आठ आना बदहवास हो चुके हैं, तो पूंजीपति होश-हवास का दिवाला निकाल चुके हैं।

रामी—आखिर हम किधर जा रहे हैं?

युधिष्ठिर—हमारा रास्ता जिधर लिये जा रहा है। उससे कभी हम आशा नहीं रख सकते कि सैनिक दृष्टि से हम अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे। हमारे लिए यह बहुत सस्ती बात है, हम अपने अखबारों में व्याख्यान दे-देकर छपवाते रहें कि बापू ने सारे संसार को सत्य और अहिंसा का रास्ता दिखलाया, और उसीसे दुनिया का उद्धार हो सकता है। लेकिन दुनिया इतनी बुद्धू नहीं है, कि चिराग-तले अंधेरा देखकर भी इन बातों पर विश्वास करती फिरेगी। काम रत्ती-भर न होने पर भी कागजी घोड़ा दौड़ाने में हमारे नेता किसीसे पीछे नहीं रहना चाहते। आशा-पर-आशा दिलाते चले जा रहे हैं। वह जानते हैं, कि आशा रबर से भी अधिक बढ़ने वाली चीज है, लोगों को इसीके बल पर एक पीढ़ी तक ले जाया जा सकता है। इसमें शक नहीं, इन प्रचारों से लोग धोखे में भी आ जाते हैं। अखबारों में निकला कि बंगलोर में सिर्फ बाहर से लाये पुर्जों को ही विमानों के रूप में नहीं जोड़ा जायगा, बल्कि अब वहां से विमान निकला करेंगे। निकलने में कहीं लोग कलियुग की समाप्ति का समय समझ उतावले न होने लगें, इसलिए कहा गया, कि १९५२ में बंगलोर के बने विमानों पर हमारे तरुण विमान चलाना सीखेंगे। कितनी सफलता और इतनी शीघ्रता के साथ! और विमान भी वह बनेंगे, जिनसे लोग विमान चलाना सीखेंगे। अर्थात् न जिनसे सवारी का काम लिया जा सकेगा न माल ढोने का, सैनिक कार्य की तो बात ही अलग।

महीप—यह तो लोगों की आंखों में धूल झोंकना है।

युधिष्ठिर—भोले लोग समझ रहे हैं, कि ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में रहने पर भारत को हथियारों का टोटा नहीं रहेगा। टोटा क्यों रहेगा,

यदि आप एक की जगह सौ दाम चुका सकें। लेकिन साथ ही इंगलैंड को यह भी देखना है, कि ऐसा न हो कि हिन्द और पाकिस्तान को दो आँखों से देखने की भूल करनी पड़े। इसीलिए हथियारों को देने में न्यायतुला का पूरा ख्याल रखा जायगा। अगर भारत को जेट संचालित विमान दिया जाय, तो पाकिस्तान को भी वह जरूर मिलना चाहिए। अंग्रेजों ने पाकिस्तान को १९४९ में ४० सैनिक विमान, ३५ हेलिफैक्स बमवर्षक, ५० टैंक, १३० भारी मशीनगनें, ५० ज्वालावर्षक यन्त्र, ४५००० रायफलों की सहायता दी। हां, यह हथियार अफगानिस्तान के विरुद्ध सहायता के रूप में मिले हैं। किन्तु उनको काश्मीर में या भारत के विरुद्ध इस्तेमाल करने से कैसे रोका जा सकता है? मालूम नहीं इस सहायता के समय भारत को कितना मिला। यह न्याय इसीलिए किया जाता है, कि भारत कहीं शस्त्रों में पाकिस्तान से बढ़ न जाय, पाकिस्तान से अधिक सबल न हो जाय। विमानों का उपयोग यदि भारत पाकिस्तान के विरुद्ध करेगा, तो पाकिस्तान दिल्ली, बम्बई, और कलकत्ता पर बमवर्षा करेगा। "नंगी नहायेगी क्या, निचोड़ेगी क्या?" पाकिस्तान के पास औद्योगिक केन्द्र नहीं हैं, इसलिए अंग्रेजों से मिले बमवर्षकों द्वारा हमारे औद्योगिक केन्द्र ही ध्वस्त होंगे। इसके लिए ब्रिटेन के भावी प्रधान मंत्री चर्चिल को क्यों दुख होने लगा?

भगवानदास—सभी बातों में बादल देख घड़ा फोड़ देने की नीति हमारे देश में बरती जा रही है।

युधिष्ठिर—एंग्लो-अमेरिकन श्रावणघन आकाश में मंडरा रहे हैं, फिर किस बात की चिन्ता? भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के मस्तिष्क महा-महान् प्रोफेसर रंगा ने जाकर ट्रूमन से भेंट की—भेंट क्या की जग जीत लिया, और प्रेज़िडेंट को बतलाया कि भारत को सिर्फ दो अरब डालरों की आवश्यकता है, जिसमें एक अरब स्वयं भारतवर्ष जमा कर सकता है। अमेरिका एक अरब के लिए हिम्मत कर दे, तो

भारत की सभी बड़ी-बड़ी योजनाएं और बड़े-बड़े कारखानों के संकल्प साकार रूप धारण कर लेंगे। फिर भारत अपने पैरों ही पर खड़ा नहीं हो जायगा और न केवल अपने देश से ही कम्युनिज़्म का नामोनिशान मिटा देगा, बल्कि एसिया की भूमि में एक भी जगह कम्युनिज़्म नहीं रहने पायगा। भारतवाहिनी कम्युनिज़्म-विरोधी झंडा हाथ में लिये बर्मा से ही इन लाल गुंडों का सफाया नहीं करेगी, बल्कि मलाया, जावा, स्याम और इंदोचीन को भी कम्युनिस्ट-विहीन करना उसके बायें हाथ का खेल होगा। उसके सामने न माउ-से-तुंग टिक सकेगा और न स्वयं स्तालिन। कितना बड़ा काम भारत को करना है और सिर्फ एक अरब डालर की बात है!

महीप— अमेरिका में डालरों का क्या टोटा?

युधिष्ठिर—लेकिन अमेरिकन डालरशाही उतनी उदार नहीं है, जितना कि हमारे महा-महान् प्रोफेसर साहब सोचते हैं। उसने ढाई अरब डालर चीन के दलदल में डाले, यदि किसी वास्तविक दलदल में भी इतने चाँदी के डालर डाल दिये जाते, तो वहाँ ठोस जमीन बन जाती, जिस पर रेलवे लाईन बिछ जाती, इंजन दौड़ने लगते; लेकिन चीनी दलदल में कहीं पता नहीं लगा कि ढाई अरब डालर कहां गये। प्रोफेसर रंगा ढाई अरब की जगह उसी भूत को भगाने के लिए सिर्फ एक अरब मांगते अपने को बहुत संयत साबित करना चाहते हैं। लेकिन दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है। चाङ्‌कैशक ने भी रंगा की भाँति ही डोरा डाला था। अमेरिका को विचारना होगा, कि यह एक अरब डालर भी चीन की भाँति अतल दलदल में गड़ाप तो नहीं हो जायगा। आखिर चीनी पूंजीपतियों की भाँति ही हमारे करोड़पति उद्योगपतियों को अब दो सौ-तीन सौ सैकड़े नफे से कम पर संतोष नहीं होता। चाँदी और अफीम के सटोरिये मल दस-बीस सैकड़ा नफे को कुछ नहीं समझते।

महीप—आजकल तो—"रामनाम की लूट है लूट सके सो लूट।

अन्तकाल पछताओगे जब तन जैहे छूट ।"

खोजीराम—यही सूत्र आज से बीस बरस पहले चीन के पूंजी-पतियों की जबान पर भी था और इसीने उनका, चांग का, और अमेरिकन पीठ ठोंकने वालों का बंटाढार कर दिया ।

युधिष्ठिर—चाहे शेष की मृदुल शय्या पर पौढ़े लक्ष्मी के कोमल करों के धीरे-धीरे संमर्दन से तंद्रित भगवान् आंख नहीं खोल रहे हैं, तो भी भक्त देवगण उनकी शरण में गोरूपी पृथ्वी को आगे करके पहुँच ही रहे हैं। प्रोफेसर रंगा ने सस्ते में काम बनाने की युक्ति भगवान् ट्रूमन के सामने रखी और साथ ही धमकी भी दे दी—यदि तुम डालर वर्षा के लिए तैयार नहीं हुए, तो चीन की हालत हमारे यहां भी होने वाली है। ट्रूमन भला रंगा की धमकी क्या समझते, जो कि पहले ही से अपने आपको अनन्यगतिक हो समर्पण कर चुका है ।

महीप—रंगा ने अपना जन्म तो सफल कर लिया ?

युधिष्ठिर—रंगा को अखबारों द्वारा इस खबर को भारत के पत्रों में छपवाकर वाहवाही लेनी थी, इसलिए उसने जो कुछ भी वहाँ कहा, सबको भारत में पहुंचा दिया। उधर बिड़लादेव भी शेषशायी भगवान् के पास पहुंचे। उन्होंने क्या-क्या विनती की, यह अखबारों में पूरी नहीं आई। उनको ऐसे प्रचार की आवश्यकता नहीं थी। रंगा को बहुत कुछ उछलने-कूदने पर जहां कभी-कभी अखबारों में जरा-सी जगह पाने का सौभाग्य मिलता, वहाँ बिड़ला अखबारों के परमेश्वर हैं। एकछत्र सम्राट् न सही, लेकिन इसमें क्या संदेह है, कि भारत के बहुत बड़े भाग में वही बातें पढ़ी जाती हैं, जिन पर बिड़लादेव की भौंहें तनी नहीं। बिड़ला को अपने प्रचार के लिए रंगा की तरह उतावला होने की क्या आवश्यकता ? सहायता देने के बारे में ट्रूमन भगवान् कह चुके हैं—अमेरिकन सरकार टेकनिकल या विज्ञान-सम्बन्धी परामर्श द्वारा सहायता देगी। बाकी पूंजी लगाने की बात, उसे अमेरिकन पूंजीपति जानें ।

महीप—तो शेषशायी भगवान् नाम के हैं ?

युधिष्ठिर—अमेरिका के शेषशायी भगवान् भी बहुत कम शक्ति रखते हैं, अंतिम फैसला वहां के पूंजीपतियों के ही हाथ में है। और "एक जाति" के कारण उन पर जितना प्रभाव बिड़ला का पड़ सकता है, उतना और का नहीं पड़ सकता। हाँ, किसीका नहीं। हमारी श्वेतकेशा, चिरतरुणी, मधुरभाषिणी, मंजु-स्वभावा अजेय श्री राजदूता भी शेषशायी भगवान् की स्तुति में पीछे नहीं हैं। उनके ज्येष्ठ सहोदर भी शेषशायी के दरबार में पहुँचे हैं। लेकिन क्या इससे ट्रूमन का भाव बदल जायगा ? फिर वही बात कहेंगे—"विशेषज्ञों द्वारा परामर्शदान अमेरिकन सरकार कर सकती है।" अमेरिकन सरकार भारत को दो-चार अरब डालर की सहायता देगी, इसकी आशा नहीं रखनी चाहिए। अन्त में फैसला वहाँ के पूंजीपतियों के ही हाथ में रहेगा, और अमेरिकन अपनी शर्तों पर ही कुछ करने के लिए तैयार होंगे। वह वही मानेंगे, जिससे कि हमारे देश के उद्योगपति सेठ सहमत होंगे—दोनों एक नाव में हैं। लोग पूछेंगे, कि जब चीन के सम्बन्ध में अमेरिकन सरकार इतनी शाहखर्च रही, तो भारत के बारे में इतनी मक्खीचूसी क्यों ? प्रश्न करना आसान है, किंतु यदि आप भी ढ़ाई अरब डालर (१० अरब रुपया) चीन में गंवाकर हाथ-पर-हाथ रखे झंखते होते, तो समझ पाते।

रामी—तो वहाँ के पूंजीपतियों का क्या रुख है ?

युधिष्ठिर—इसका कुछ पता आगे मालूम होगा। भारत उद्योग-प्रधान होने से ही सैनिक तौर से सबल हो सकता है। और देश के उद्योगीकरण के संबंध में एकमात्र आशा लगी है, अमेरिका पर; और अमेरिका चीन में मार खाके अब फिर कोई बड़ी बेवकूफी नहीं करना चाहता। विशेषकर जब आपके पत्र रोज ही भारत में कम्युनिस्टों के उपद्रव छापकर उन्हें शंकित कर रहे हैं, ऐसी अवस्था में लम्बी-लम्बी बातें करना केवल घर बैठ के गाल बजाना है।

महीप—अब भी तो हमारे कितने बंधु भारत के एसिया का नेता होने की बात कहते हैं ?

युधिष्ठिर—शायद इसीलिए कि बर्मा में अंग्रेजी हित की रक्षा के लिए वहाँ की जनता के अधिकांश की इच्छा के विरुद्ध भारत थाकिन-नू की सरकार को मदद पहुँचा रहा है। थाकिन-नू की सरकार में सबसे अधिक संख्या रखने वाले समाजवादीदल ने अभी हाल ही में चीन में कम्युनिस्टों की विजय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की है, जिससे हवा का रुख किधर है, यह स्पष्ट हो जाता है। मलाया के लोग अवश्य भारत को अपना नेता मानेंगे, क्योंकि अंग्रेजी सेना स्वतन्त्रता-प्रेमियों के साथ जैसे अमानुषिक अत्याचार कर रही है, उसमें हम भी सहमत मालूम होते हैं; और हमारे पत्र भी वहाँ के देशभक्तों को चोर-डाकू कहकर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। हमारे नेता वहाँ की किसी बात में दखल न देने की शपथ खा चुके हैं, और तिस पर भी हम दावा करते हैं, कि एसिया का नेतृत्व भारत कर रहा है। नेतृत्व कौन कर रहा है, वह अब किसीसे छिपा नहीं है। एसिया का नेतृत्व वह कर रहा है, जिसके भय से हांगकांग डगमग हो रहा है, जिसमे एसिया पर सदियों से शासन करने वाले घबड़ा उठे हैं। दक्षिणी अफ्रीका, इंगलैंड, आस्ट्रेलिया सभी जगह हाय-तोबा मचने लगी है। एसिया के एक बड़े भाग को जिन्होंने अपाहिज बना रखा था, अब वहीं चीन में एक नयी शक्ति को देखकर युगों के स्वेच्छाचारियों की नींद हराम हो गई है। हमारे नेताओं को ईर्ष्या करने से क्या फायदा ? एसिया की लड़ाई की जगह उन्होंने पश्चिमी साम्राज्यवादियों से गठबंधन जोड़ना, मदद करना अपना कर्त्तव्य समझा।

महीप—दुनिया के लोग बड़े बेवकूफ होंगे, जो आपको दोनों ओर मजा उड़ाने देंगे—बृटिश साम्राज्यवादियों से भी वाहवाही लूटना और उत्पीड़ित एसियाइयों का नेतृत्व भी करना।

युधिष्ठिर—जैसा कि मैंने पहले ही कहा, मदद न जबानी जमा-

खर्चे से हुआ करती है और न लच्छेदार अंग्रेजी में व्याख्यानों से। चू-ते, चो-अन्-लाई और माउ-से-तुंग चाहे अंग्रेजी का एक शब्द भी न बोल सकते हों, चाहे बड़े वक्ता भी न हों, किंतु उनकी एक-एक बात की ओर दुनिया के साम्राज्यवादी शत्रु भी ध्यान देंगे। एसिया का नेतृत्व करना अब भारत के लिए दूर का स्वप्न है। एसिया के बड़े भाग पर अब भी भारत की संस्कृति और विचारधारा की गाढ़ी छाप है, लेकिन अपनी संस्कृति से कोरे अंग्रेजों के नक्कालची हमारे हर्ता-कर्ता उसके महत्व को समझ नहीं सकते, चाहे जबान से भले ही जब-तब उसकी दुहाई दें। एसिया के नेतृत्व के लिए किसी समय भारत और चीन की होड़ थी, जो पूरी तरह लगने भी नही पाई थी, कि हमारी बेवकूफी से फैसला हमारे खिलाफ़ हो गया। एसिया में शक्तिशाली राष्ट्र होने के सम्बन्ध में अभी चार ही मास पहले बड़ी गंभीरता से कहा जाता था—भारत ही ऐसा देश है, जहाँ न गृहयुद्ध है, न क्रान्तिकारियों का कोई उपद्रव; चीन तो आपसी लड़ाई के कारण तीन दशाब्दियों से किसी गिनती में नहीं रह गया। उस समय यह सोचने की कोई तकलीफ नहीं करता था, कि चीन को निर्बल रखनेवालों के खिलाफ ही संघर्ष चल रहा है, जिसका अंत पेपिंग, नानकिंग, शंघाई और कान्तन से प्रतिगामी शक्तियों के निष्कासन के साथ हो रहा है। इसी संघर्ष के भीतर चीन अपने सैनिक बल को पहले से बहुत अधिक मजबूत कर चुका है। अब तो निर्माणकारिणी शक्ति की विजय के बाद चीन का तेजी से नवनिर्माण होगा। शघाई में मोटरों का दाम पाँच गुना कम हो गया, शौकीनी चीजों का दाम और भी कम हो गया है; चोर-बाजारियों का वहाँ पता नहीं है, शहर की सुव्यवस्था की प्रशंसा दुश्मन भी कर रहे हैं। जितनी गन्दगी, जितनी निर्बलताएँ चीन में थीं, वह च्याङ्-कैशक के साथ विदा हो गईं। अब चीन एक उद्योग-प्रधान देश होने जा रहा है; उद्योग प्रधानता का ही दूसरा नाम सैनिक-शक्ति की प्रबलता है। चीन उद्योग-प्रधान बनने के लिए किसी अमेरिका की ओर टकटकी लगाये नहीं रहेगा और न ही

वहाँ वाले शेषशायी भगवान् से वरदान मांगने अमेरिका पहुँचेंगे। चीन अपनी प्राकृतिक संपत्ति, अपने लोगों के बाहुबल और मस्तिष्क-शक्ति का पूरे तौर से उपयोग करेगा, जिसके बल पर वह सब तरह से एक सबल राज्य हो जायगा—१६६४ ई० में रूस और अमेरिका के समान ही वह एक तीसरी महान शक्ति बनके रहेगा।

महीप—देखें हम तब तक बृटिश साम्राज्य के साथ ही बंधे डूबते हैं या बचते हैं।

चौथा अध्याय

देश का उद्योगीकरण

युधिष्ठिर—किसी भी दृष्टि से देखने से देश को उद्योगप्रधान बनाना सबसे प्रथम और आवश्यक कर्त्तव्य है। किसी भी समृद्ध देश के लिए यह आवश्यक है, कि उसकी राष्ट्रीय आय का तीन-चौथाई भाग उद्योग-धंधे से आये, और जो देश भारत की तरह बहुत घना बसा है, उसके लिए तो यह और भी आवश्यक है।

भगवानदास—सरकार सावधान है।

युधिष्ठिर—भारतवर्ष ने विश्वबंक से एक भारी रकम, १५ करोड़ डालर, उधार लेना चाहा था। महाजन किसी को ऋण देने से पहले लेने वाले की क्षमता को देखना चाहता है, इसीलिए विश्वबंक ने एक जाँच-कमीशन भेजा था, जिसके नेता श्री स्टेनली होर ने अपने वक्तव्य में कहा था—"भारतवर्ष की निहित महान् प्राकृतिक संपत्ति को देखकर कोई भी दर्शक प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा; साथ ही यह भी जानते हुए, कि इस संपत्ति के विकास करने के लिए लोगों में शक्ति और दृढ़ संकल्प है।" आगे होर ने यह भी कहा—"भारत में जीवनतल को लगातार और दृढ़तापूर्वक ऊपर उठाने के लिए उपज बढ़ानी आवश्यक होगी, और प्राप्य सभी स्रोतों की सावधानी के साथ जाँच-पड़ताल करनी होगी, तथा यह भी देखना होगा, कि कैसे एक दूसरे के साथ सुसम्बद्ध रीति से कृषि, उद्योग-धंधे, शक्ति (बिजली) और यातायात को विकसित किया जा सकता है। वैसा करते समय इन चीजों के विकास के

उत्तरोत्तर रूप की प्रत्येक अवस्था का ऐसा आधार बनाना होगा, जिस पर आगे के विकास को आधारित किया जा सके।" मिशन ने अपनी जाँच के आधार पर भारतवर्ष की प्राकृतिक संपत्ति और मानवीशक्ति का बखान तो किया, किंतु मालूम नहीं उनकी जाँच ने उनके ऊपर दूसरे किस तरह के प्रभाव डाले। हमारा देश अपरिमित प्राकृतिक संपत्ति का धनी है, किंतु प्रश्न यह है, धरती के भीतर छिपी निधि को कैसे ऊपर लाकर उसे मनुष्य के उपयोग में लाया जाय। सारी संपत्ति के रहते भी हमारे देश की साधारण जनता का जीवन-तल जितना नीचा है, उतना विश्व में शायद ही कहीं हो। हमारे देश की राष्ट्रीय आय कितनी है, अभी इसकी कोई ठीक से जाँच-पड़ताल नहीं हुई है। पिछली शताब्दी में सन् १८७५ में अटकिन्सन और १८५५ में विलियम डिग्बी ने भारत की राष्ट्रीय आय पता लगाने का प्रयत्न किया था। वर्तमान शताब्दी में दादाभाई नौरोजी ने कुछ अंदाज लगाया था। राष्ट्रीय आय बढ़ी है, लेकिन वह वृद्धि उसी परिमाण में हुई है, जिस परिमाण में कि हमारी जनसंख्या बढ़ी है, इसमें संदेह है। अब हमारी सरकार का ध्यान इसकी ओर गया है और राष्ट्रीय आय[1] का पता लगाने के लिए उसने एक कमीशन नियुक्त किया है।

भगवानदास—सरकारी आय से भी तो राष्ट्रीय-आय का पता लग सकता है।

महीप—कर से बचने के लिए कितना जाल-फरेब किया जाता है, यह क्या मालूम नहीं है? कुछ लाख नहीं अरब-अरब का हिसाब कागज पर नहीं आने पाता।

---

१. विश्व की सारी आय ५३०.६ अरब डालर कूती गई है, जिसमें २४० अरब (४५%) उत्तरी अमेरिका की है, और शेष है सोवियत से भिन्न यूरोप १४० (२६%), सोवियत संघ ५२ (१०%), एशिया ५८ (११%), मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका १७.१ (३.५%), अफ्रीका १५ (३%), सामुद्रिक देश ८.५% डालर (१.५%)।

युधिष्ठिर—राष्ट्रीय आय का कितना भाग सरकारी आय है, इसे बतलाना मुश्किल है, लेकिन सालाना बजट से सरकारी आय-व्यय का पता लगता रहता है। १९४८-४९ का बजट निम्न प्रकार रहा है—

आय—	२३०.५२ करोड़
व्यय—	२५७.३७ करोड़

व्यय में १२१.०८ करोड़ अर्थात आय का आधे से अधिक सिर्फ सेना का खर्च है। १९.९१ करोड़ खाद्य-वस्तुओं की कीमत सस्ता करने के लिए है तथा शरणार्थियों को बसाने के लिए १४.०४ करोड़। २६.८५ करोड़ के घाटे को नये करों की वृद्धि और दूसरे तरीके से १.०९ करोड़ कर दिया गया। पूंजीपतियों को संतोष और विश्वास दिलाने के लिए लाभकर कम कर दिया गया, महाकर से मुक्त रकम की सीमा को बढ़ा दिया गया, कंपनियों के कर को भी हलका किया गया। पिछले साल लियाकतअली के बजट को समाजवादी बजट कहा गया था, अब १९४८-४९ का बजट पूंजीपतियों का बजट है।

रामी—और प्रान्तों की भी तो आय है ?

युधिष्ठिर - प्रान्तों के बजट को देखने से पता लगता है, कि बिहार छोड़ सारे ही प्रान्तों में आय से व्यय अधिक रखा गया। जैसे कि—

प्रान्त	आय	व्यय	हाथ में
मद्रास	५०.३२	५५.९४	—५·६२
युक्तप्रान्त	४५.८७	५०.५७	—४·७०
बम्बई	४१.३८	४४.०२	—२.६४
पच्छिमी बंगाल	३१.१८	३१.९६	—·७८
बिहार	२१.५७	२०.०९	+१·०४८
मध्यप्रान्त	१५.२९	१५.७४	—·४५
आसाम	१३.१२	१४.६१	—१·४९
पूर्वी पंजाब	११.१३	१७.८२	—६·७९
उड़ीसा	६.२८	७०.५१	—१·२३

खोजीराम—इससे तो मालूम होगा कि सभी प्रान्तों के पास अपने वर्तमान व्यय के लिए भी पैसा नहीं है। बिहार इसका अपवाद है, किंतु उसमें हो सकता है, वहाँ के मंत्रियों की आवश्यकता से अधिक मितव्ययिता कारण हो। प्रान्तीय बजट के देखने से यह भी पता लगता है, कि पुलिस और प्रबंध विभाग का खर्च बहुत बढा दिया गया है।

महीप—सेना से भी पुलिस का व्यय अधिक बढ़ना ही चाहिए।

युधिष्ठिर—प्रांतों की कुछ आय केन्द्र द्वारा लौटाये आयकर से भी होती है, जो सारे आयकर के प्रतिशत के हिसाब से होती है। १९४८ में सबसे अधिक अर्थात २१ प्रतिशत बम्बई को मिला और सबसे कम आसाम और उड़ीसा को (तीन-तीन प्रतिशत)।

रामी—स्वयं फाके-मस्त प्रांत कहां से उद्योग-धंधे के लिए पैसा दे सकेंगे ?

युधिष्ठिर—बजट देखने से केन्द्र और प्रान्तों की जो आर्थिक अवस्था मालूम होती है, उसे यदि आर्थिक योजनाओं से मिलाएं, तो मालूम होगा, कि रास्ते में कितनी भारी-भारी कठिनाइयाँ हैं। जहाँ अमेरिका का प्रेज़िडेन्ट दूसरे देशों को फिर से बसाने तथा आर्थिक पुन-निर्माण के लिए कर लगाकर धन जमा कर सकता है, वहाँ भारत को अपना खर्च चलाने में भी कठिनाई है। यदि हम केवल नदियों की ही योजनाओं को ले लें, तो वही कितनी विशाल हैं। आजकल भारत-वर्ष में पाँच लाख किलोवाट पनबिजली पैदा की जाती है, जो हमारी सारी क्षमता का १½ सैकड़ा है। यदि सावधानी के साथ बड़ी पनबिजली योजनाओं को कार्यरूप में परिणत किया जाय, तो एक करोड़ चालीस लाख किलोवाट बिजली प्रतिवर्ष हमारी नदियों से पैदा की जा सकती है। भारत में सबसे पहले पनबिजली स्टेशन दार्जिलिंग में १८९७-१८९८ में बना। अमेरिका में उससे १५ वर्ष पहले १८८२ में और कनाडा में हमसे तीन साल बाद १९०० ई० में प्रथम पनबिजली

स्टेशन स्थापित हुए। कनाडा ने हमसे तीन साल बाद यह काम शुरू किया था, लेकिन आज वह ७७ लाख किलोवाट अर्थात भारत से १५ गुना अधिक बिजली तैयार कर रहा है। हमारे देश से अमेरिका २६ गुना और सोवियत रूस ४१ गुना अधिक बिजली पैदा करता है। जो बिजली हमारे यहाँ पैदा की भी जाती है, वह केवल शहरों के लिए ही। कलकत्ता और बम्बई की जन संख्या सारे देश की जन संख्या की १ प्रतिशत से अधिक नहीं है, लेकिन देश की सारी बिजली का आधा इन्हीं दोनों शहरों में खर्च होता है। हमारी बिजली की योजनाओं को यदि पूरी तरह कार्यरूप में परिणत किया जाय, तो रूस और अमेरिका के बाद तीसरा नंबर भारत का होगा। बिजली की क्षमता का अंदाजा इसीसे लग सकता है, कि केवल कोसी-योजना को पूरा करके हम इतनी बिजली पैदा कर सकते हैं कि वह देश की सारी रेलों को चलाने के लिए पर्याप्त होगी। हमारे कोयले की सालाना उपज का एक-तिहाई अर्थात ७० लाख टन रेलों की भेंट होता है। यह ऐसी क्षति है, कि यदि रोक-थाम नहीं की गई, तो हमारा लोहा आदि धातुओं के कारखानों को चलाना मुश्किल हो जायगा।

भगवानदास—जो चीज नहीं है, उसे बाहर से मंगायेंगे।

युधिष्ठिर—लेकिन क्या हम बिजली के सामान के उद्योग के बिना बिजली-उद्योग को विकसित कर सकते हैं? इस भारी बिजली के प्रयोग के लिए करोड़ों बल्ब और लाखों टन खंभे, तार, परिवर्त्तक, इन्सुलेटर, स्विच, गियर, मोटर, तापक, संचयक, पम्प, मीटर आदि की आवश्यकता होगी, क्या उन्हें बाहर से मंगाने को हमारे पास पैसा रहेगा? इससे साफ है कि पनबिजली की योजना दूसरे उद्योग-धंधों के विकास के साथ नत्थी है। १७० नदी-उपत्यकाओं की बिजली-योजनाएं हमारे पास तैयार हैं, जिनको कार्यरूप में परिणत करने के लिए १२ अरब रुपये या तीन अरब डालर की आवश्यकता होगी। प्रोफेसर रंगा दो अरब में पनबिजली ही नहीं सभी

कारखानों के काम को निपटा देना चाहते हैं। १२ अरब रुपया का अर्थ है, यदि केन्द्रीय सरकार चार सालों तक अपनी सारा आमदनी को इसीमें खर्च करे, तब भी पूरा नहीं कर सकती। कलकत्ता के एक पूंजीपति ने अपने भाषण में कहा था—योजनाएं तो सभी बन सकती हैं, लेकिन सवाल है, इनके लिए पैसा और योग्य आदमी कहां से मिलेंगे। उन्होंने यह भी कहा, कि जिस तरह उद्योग-धंधे पर नियंत्रण करने के लिए कानून बनाया जा रहा है, कारखानों के राष्ट्रीयकरण की तलवार सिर पर लटक रही है, उससे कैसे पूंजी-पति अपने पैसे को काम में लगायेंगे।

महीप—शाबाश !

युधिष्ठिर—इसीलिए हमारे प्रधानमंत्री ने पूंजीपतियों को खुल खेलने की छुट्टी दे दी। दिसम्बर (१९४८) में प्रधानमंत्री ने पुरानी सारी बातों को तिलांजलि देकर घोषित कर दिया—"(१) केवल सुरक्षा, रेलवे, परमाणुशक्ति आदि के उद्योग धंधे को ही राज्य के हाथ में रखा जायगा। (२) राष्ट्रीय महत्व के उद्योग धंधे जैसे—कोयला, लोहा, इस्पात, विमान-निर्माण आदि का काम करने वाली कम्पनियों को छुआ नहीं जायगा। हां, आगे से इस सम्बन्ध के नये कारखाने सरकार की ओर से भी खुलेंगे। (३) नमक, बिजली, इंजीनियरी, मोटरकार, भारी रसायन आदि जैसे आधारभूत उद्योग-धंधों का नियन्त्रण और नियमन राज्य की ओर से होगा और (४) बाकी सारा औद्योगिक क्षेत्र व्यक्तिगत प्रबन्ध में रहेगा।" इस वक्तव्य को समाजवाद और पूंजीवाद के बीच में समझौते का प्रयत्न बतलाया गया है, लेकिन सूची देखने से ही पता लग जायगा, कि जितने अधिक लाभ के धंधे हैं, उन्हें पूंजीपतियों के लिए छोड़ दिया गया, और जो घाटे का सौदा है, उसके राष्ट्रीयकरण की बात की जा रही है ; या यों कहिये, जिसमें लगा रुपया जल्दी वसूल होने वाला नहीं है उसे सरकार ने लिया और जिसमें जल्दी लौट

आने वाला है, वह पूंजीपतियों के हाथ में छोड़ दिया गया। हमारे पूंजीपति कोई ऐसा काम करना भी नहीं चाहते, जिसमें लगे रुपये से आमदनी कई वर्षों बाद होवे। दिल्ली के श्री ओमप्रकाश ने पूंजीपतियों की मनोवृत्ति के बारे में लिखा है—"बहुत-सी कम्पनियां खड़ी कर दी गई और लोगों ने उतावले होकर आवश्यकता से अधिक पूंजी लगा दी। लेकिन उद्योग-धंधों से रुपया पांच-सात साल बाद लौटा करता है। उधर बाहर से कारखानों का सामान मिलना मुश्किल हो गया, इसके कारण नई कम्पनियों में फंसा रुपया बिना नफा के कई सालों के लिए रुक गया। इसके कारण शेयर का भाव गिर गया और नये शेयर खरीदने वालों का उत्साह मंद हो गया।"

महीप—लेकिन हमारी सरकार तो हर तरह से अनुनय-विनय करके पूंजीपतियों को अपने साथ रखना चाहती है, वह उनके हर पाप को क्षमा करने के लिए तैयार है। कपड़े से कंट्रोल हटते ही कपड़े के सेठों ने तीन महीने में एक अरब रुपया मारके रख लिया। सरकार इस पर पहले आगबगूला होकर चाहती थी, कि कपड़े के व्यापार के अतिरिक्त-लाभ पर भी कर बढ़ाया जाय। लेकिन अंत में सरकार ने यह ख्याल छोड़ दिया, क्योंकि पूंजी जिनके पास है, उन्हें नाराज करने से काम नहीं चलेगा।

युधिष्ठिर—एक तरफ अपने देश के पूंजीपतियों को खुश रखने के लिए रियायत दी गई है, दूसरी तरफ विदेशी पूंजीपतियों के लिए भी ऐसी रियायतें दी जा रही हैं, जिनमें वह अपनी लगी पूंजी को निकाल ले जायं तथा दूसरे विदेशी पूंजीपति यहां आके पूंजी लगाने में नहीं हिचकें। भारत में उद्योग-धंधा रखने वाले अंग्रेजों के सामने दिसम्बर में प्रधान मंत्री ने जो भाषण दिया था, वह उन्हें कितना पसंद आया, इसे यूरोपीय व्यापारी-सभा के सभापति एलकिन्स के शब्दों में सुन लीजिये—"हममें से जो लोग भारत में विदेशी पूंजी के लगाने में सरकार की

नीति के बारे में शंकित हो गए थे, वे प्रधान मंत्री के भाषण का स्वागत करेंगे। विदेशी पूंजी इससे अधिक और कुछ नहीं चाहती, कि उसे भी भारतीय आवश्यकताओं में सेवा करने के लिए भारतीय पूंजी के समान ही अवसर दिया जाय।" भारत सरकार विदेशी पूंजी को हर तरह की रियायत से संतुष्ट ही नहीं करना चाहती, बल्कि विदेशी पूंजी को भी वही सुभीते दे रही है।

महीप—इस पर भी सरकार पूंजीपतियों से निर्लेप रहने की कसम खाती है।

युधिष्ठिर—हमारे देश के उद्योगीकरण में जितने पैसों की आवश्यकता है, वह देश के पूंजीपतियों और पहले से लगी विदेशी पूंजी के द्वारा नहीं पूरी की जा सकती, इसीलिए दूसरे तरीकों से भी पूंजी जमा करने की कोशिश की जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय बंक से १५ करोड़ डालर कर्ज लिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त पिछले युद्ध में १२० करोड़ पौंड-पावना जो इंगलैंड के ऊपर हो गया था, उससे भी मदद मिली है, लेकिन खाद्य-सामग्री जैसी अत्यावश्यक चीजों के लिए करोड़ों रुपये निकल गए। इस साल तो पौंड पावने से जितना डालर इंगलैंड ने दिया था, उससे दस करोड़ डालर अधिक की चीजें हमें खरीदनी पड़ीं। पौंड-पावने का पैसा जिस तरह से खर्च होता जा रहा है, उससे आशा नहीं है, कि उससे देश के उद्योगीकरण में अधिक सहायता मिल सकेगी।

भगवानदास—अब और कौनसा रास्ता है, जिससे भारत के उद्योगीकरण के प्रोग्राम को आगे बढ़ाया जा सके?

युधिष्ठिर—इसका एक ही रास्ता है, कि विश्व के धनकुबेर का दरवाजा खटखटाया जाय। अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमन ने अपने भाषण में जो बात इस विषय में कही थी, उससे असंतोष प्रकट करते हुए रा० सक्सेना ने कहा—"राष्ट्रपति ट्रूमन ने अपने भाषण में अविकसित देशों को टेकनिकल सहायता देने की बात की है। टेकनिकल

सहायता का महत्व है, इसमें संदेह नहीं, किंतु जब तक अविकसित देशों में पूंजी लगाने का काम भी साथ-साथ नहीं होता, तब तक वह बेकार होगा।" सक्सेना ने और आगे कहा—"इन देशों में पूंजी के लगातार लगाने और टेकनिकल साधनों से संयुक्त करने पर उपज का मान और ऊंचा होता जायगा और वहाँ के लोगों की जो भारी मांग बढ़ेगी, उससे (अमेरिका में) आर्थिक संकट का भय सदा के लिए खतम हो जायगा।" सक्सेना ने अमेरिकन पूंजीपतियों के हृदय को नरम करने का प्रयत्न करते हुए कहा—"सारे विश्व की आर्थिक स्थिति को देखते हुए मैं कहूंगा; कि युक्तराष्ट्र अमेरिका—जो ही केवलमात्र औद्योगिक विकास में पूंजी देने की क्षमता रखता है—विश्व में आर्थिक कारबार बिगड़ने से रोकने के लिए रास्ता ढूंढे और अविकसित देशों की विकास-योजनाओं के लिए पूंजी दे। इस तरीके से लोगों को पूरी तौर से काम मिलेगा। औद्योगिक उपज यथेष्ट परिमाण में चालू रहेगी, और सारे विश्व के लोगों का जीवनतल ऊंचा होगा, जिससे यह साबित होगा, कि विश्व सचमुच एक है, जिसमें शान्ति की भाँति समृद्धि भी सबके लिए अविभाज्य है।"

महीप—भारत आदर्शवादियों से खाली नहीं होगा।

युधिष्ठिर—लेकिन जिसके पास पैसा है, वह उसे जहाँ-तहाँ बोता नहीं फिरता, वह पचास बार देखकर तब आगे कदम रखने की कोशिश करता है। जैसा कि पहले बता चुके हैं, श्री घनश्यामदास बिड़ला पूंजी की खोज में बाहर जाने वाले देशवासियों में सबसे प्रभावशाली हैं—भाग्यशाली तो हैं ही। उन्होंने अमेरिका की पूंजी राजधानी में कई दिन उन लोगों से बातें की, उनके सामने अपने सुझाव रखे, जोकि ट्रूमन के कथनानुसार पूंजी बाहर लगाने की क्षमता रखते हैं। २२ मई (१९४९) को न्यूयार्क में एक संवाददाता से बिड़ला ने अपने विचार प्रकट किये—"हमने अमेरिकन उद्योगपतियों में से चोटी के कितने ही लोगों से बातचीत की। यह उद्योगपति वह हैं, जिनके हाथ में मोटर-

कार की कंपनियां, बिजली के सामान तथा बिजली पैदा करने के प्लांट, कपड़े की मिलें, और तेल के बड़े-बड़े कारबार हैं, और ऐसों से भी बातचीत की, जो कि बड़े बैंकर, कोशपति, भारी इंजीनियरी कारबार के मुखिया हैं। यहाँ के व्यापारी आमतौर से भारत के प्रति सहानुभूति रखते हैं। वह अच्छी तरह अनुभव करते हैं, कि चीन के चले जाने तथा एसिया के दूसरे भागों में उथल-पुथल होने के कारण भारत ही ऐसा देश है, जो शान्ति-स्थापन करने में सहायता कर सकता है। लेकिन व्यवहार में उनकी सारी सहानुभूति का अर्थ कुछ नहीं है। यदि हमारे पास डालर होते, तो अमेरिका से यंत्रों और टेकनिकल ज्ञान लेना मुश्किल न था; लेकिन हमारे पास डालर नहीं हैं, इसलिए भारत अमेरिका से तभी यंत्र और टेकनिकल सहायता प्राप्त कर सकता है, जबकि अमेरिकन ही हमारा हस्तावलम्बन करें।"

महीप—प्रधान मंत्री तो पूरा विश्वास दिला चुके हैं।

युधिष्ठिर—प्रधान मंत्री के विदेशी पूंजीपतियों को पूरी छूट की घोषणा करने पर भी बिड़ला उसे पर्याप्त नहीं समझते, इसीलिए कहते हैं कि—"प्रधान मंत्री ने विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया है, वह संतोषजनक समझा जाता है, लेकिन उसमें कई बातों को और साफ करने की आवश्यकता है। आशा है, प्रधानमंत्री जब यहाँ आयंगे तो उन्हें और साफ कर देंगे।"

महीप—प्रधान मंत्री की जिस सफाई की प्रतीक्षा बिड़लाजी के कथनानुसार अमेरिकन पूंजीपति कर रहे हैं, उसे सोचकर भारत का सिर यदि गरम होने लगे, तो आश्चर्य नहीं। अभी भारत को बृटिश साम्राज्य के जूए में जोड़कर एक सफाई हमारे प्रधान मंत्री दे आये हैं।

युधिष्ठिर—बिड़लाजी ने यह भी विचार प्रगट किया—"यदि हम देश का जल्दी-से-जल्दी उद्योगीकरण चाहते हैं, तो उसके लिए आवश्यक सामान खरीदने पड़ेंगे। इसके लिए अगले कुछ सालों में एक अरब डालर खर्च करने पड़ेंगे। यह तभी हो सकता है, जब

अमेरिकन उद्योगपति केवल पैसे ही से मदद नहीं करें, बल्कि अमे-रिकन काम के ढंग को भी बतलायें ।"

महीप—विश्वबंक भी सहायता करेगा ही। फिर क्या ?

युधिष्ठिर—आगे बिड़ला जी ने कहा—"विश्वबंक भी भारत को कुछ सहायता देगा। किंतु बहुत अधिक रकम की नहीं। इसलिए वह समस्या को हल नहीं कर सकता। यदि भारत उद्योग-प्रधान बनना चाहता है, तो उसे बहुत हद तक अमेरिका की सहायता और सहयोग पर निर्भर करना पड़ेगा, और आपसी संपर्क से संदेहों को दूर करना आवश्यक है। आशा है, हमारी नई राजदूता श्रीमती विजयलक्ष्मी की अधीनता में हमारा दूतावास उन संदेहों को दूर करने में सफल होगा।"

महीप—बकरे की जान गई, किंतु खाने वाले को स्वाद नहीं आया। संदेह !

युधिष्ठिर—सन्देहों के बारे में बिड़लाजी ने कहा—"यहाँ के पूंजीपति का विदेश में, और विशेषकर भारत में, पैसा लगाने का मन नहीं करता। वह अत्यधिक लाभ नहीं चाहता, लेकिन साथ ही वह अपनी अंगुली को जलाना भी नहीं चाहता।...हाल में कारखाना-संबन्धी जो कानून भारत में बना है, और जो अधिक परतंत्रता पूंजी पर लादी गई है, उससे अमेरिकन उद्योगपतियों का भय अधिक बढ़ गया है; अमेरिकन लोगों को भारत का कर भी अधिक मालूम होता है। लाभ में मजदूरों को सहभागी बनाना, कारखाना-नियंत्रण-कानून और पैसे के लौटा पाने की अनिश्चितता, यह सभी बातें सन्देह का कारण हुई हैं।"

महीप—साथ ही कम्युनिस्टों के उपद्रव की खबरें भी तो। बिड़ला जी एक ढले से दो शिकार करने में उस्ताद हैं।

युधिष्ठिर—बिड़लाजी ने अमेरिकनों की ओर से किंतु अपने भारतीय बंधुओं के हितों की ओर निगाह रखते हुए कहा—"मैं सम-

भता हूं भारत सरकार को यह अनुभव करना होगा, कि विदेशी पूंजी लगाने वालों के ऊपर तलवार लटकाना और फिर उन्हें समुद्र पार से आकर मदद देने के लिए कहना, दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।" बिड़लाजी को वहाँ यह देखकर संतोष हुआ, कि अमेरिका में देश की अर्थनीति से सम्बन्ध रखने वाले सभी महत्वपूर्ण विभाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उद्योग-संचालकों के नीचे हैं।

भगवानदास—सचमुच, अमेरिकनों से पैसा निकलवा सकेगा, तो यही पुरुष।

युधिष्ठिर—अमेरिका से भारत के जल्दी उद्योगीकरण के लिए कितनी पूंजी और टेकनिकल सहायता मिलेगी, इसका पता लगाना बिड़ला जी के वक्तव्य के बाद भी मुश्किल है। यह तो निश्चय समझना चाहिए कि अमेरिका से पूंजी प्राप्त करना नेहरू भाई-बहिन की कोशिश से नहीं, बल्कि बिड़ला की ही सिफारिश पर संभव है। भारत सरकार का अभी देशी-विदेशी पूंजीपतियों के सामने नाक रगड़नी होगी, और अपनी अवांछनीय हरकतों के लिए कान पकड़ कर उठना-बैठना होगा, तब शायद अमेरिकनों का हृदय द्रवित हो, और ऊंट के मुंह को जीरा दस-बीस करोड़ मिल जाय। लेकिन क्या हमारा देश अधिक दिनों तक हाथ-पर-हाथ धरके बैठे रहने की अवस्था में है? ५० लाख खाने वाले मुखों का हर साल बढ़ना भारी संकट ऊपर से है ही, जिसके लिए हमारी सरकार पिछले साल ट्रैक्टरों से बहुत जोर लगाने के बाद सिर्फ ४० हजार एकड़ जमीन को आबाद करा पाई। हमें चाहे जैसे भी हो देश के उद्योगीकरण को आगे ले चलना है।

रामी—रूस ने कैसे किया था?

युधिष्ठिर—सोवियत रूस ने १९२२ में गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद जब फिर से आर्थिक पुनर्वास का आयोजन किया, उस समय रूस की अवस्था हमसे भी बहुत गई-गुजरी थी। मोटर और बिजली के उद्योगों का नाम भी न था; रेलें, कपड़े के कारखाने सभी गृह-युद्ध

की बलि चढ़ चुके थे। सारे बड़े देश शत्रु थे, फिर कौन कर्ज देता? लेकिन रूस के पास अपार प्राकृतिक-संपत्ति थी, वहाँ के लोगों के पास सीखने-समझने की शक्ति थी। थोड़े-बहुत इंजीनियर और विज्ञान-वेत्ता भी थे, जिनकी संख्या आज के भारतवर्ष से अधिक नहीं थी। हमारे देश में कोई वैसी ध्वंसलीला नहीं होने पाई, देश स्वतन्त्र होते समय रेलें सर्वथा सुरक्षित रहीं, हमारे कल-कारखाने काम करते मिले। फिर क्यों न हम भी अपनी प्राकृतिक-संपत्ति और मानवी प्रतिभा का उपयोग करें? विदेशी-पूंजी आना चाहे, तो आये और उसके लिए हम कुछ रियायत करें तो भी ठीक है; लेकिन सिर्फ उसीके भरोसे हमें बैठा नहीं रहना चाहिए। सोवियत रूस बीस वर्षों के प्रयत्न के बाद आज दुनिया का दूसरे नम्बर का उद्योग-प्रधान देश बन गया है। जापान ने भी अपने परिश्रम से ही अपने को शक्तिशाली बनाया था।

रामी—तो हमें भी परमुखापेक्षी नहीं होना चाहिए।

युधिष्ठिर—यदि हम अपने लिए पर्याप्त भोजन अपनी धरती से निकालना चाहते हैं, तो उसके लिए कोसी, महानदी आदि की योजनाओं को पूरा करना होगा। और वह योजनाएं उसी दशा में पूरी होंगी, जहां विशाल नदियों से पनबिजली के साथ दूसरे उद्योग-धन्धों को भी साथ-साथ बढ़ाया जा रहा हो। यदि हम कपड़े की समस्या को हल करना चाहते हैं, और बाहर से चीजें मंगा नहीं सकते, तो कारखानों को आधुनिकतम मशीनों से सज्जित और संगठित होना चाहिए। यदि हम अपने देश के सारे लड़के-लड़कियों को साक्षर बनाना चाहते हैं, तो भी पाठ्य पुस्तकों के लिए जितने कागज की आवश्यकता होगी, उसके लिए आज से तिगुने नये कारखाने खोलने पड़ेंगे, और उन्हें अपने यहां के बने यन्त्रों से चलाना होगा। यह लज्जा ही नहीं अत्यन्त शोक की बात है कि हमारे एक-दो जिलों के बराबर के स्वीजरलैंड, स्वीडन और चेको-स्लावाकिया जैसे देशों के सामने हम रेल के डिब्बों, बिजली के सामान, रेफ्रिजरेटर के लिए हाथ पसारें। हमारे छापेखानों का चलना असंभव

हो जायगा, यदि हम बाहर से मशीनें न मगायें। आलपीन, सुई से लेकर फौन्टेनपेन, ब्लेड, घड़ी, मोटर तथा विमानों तक सभी चीजें हम बाहर से मंगाकर अपना कभी कल्याण नहीं कर सकते।

महीप—हमारे नेता गद्दी संभाल कर निश्चिन्त जो हैं।

युधिष्ठिर—हमारे राजनीतिक नेताओं के लिए तो यह जीवन-मरण का प्रश्न है। आजकल की तरह ढीलमढाल चाल से वह पाँच वर्ष तक मुश्किल से अपना अस्तित्व कायम रख सकते हैं। हमारी भोजन की समस्या और भयंकर होगी, शिक्षा, स्वास्थ्य के संबंध में सारे वायदे झूठे सिद्ध होंगे। दो बरस या चार बरस टालने पर भी, लोगों के पास वोट के लिए जाना ही पड़ेगा – फिर २१ वर्ष से ऊपर वाले उस वक्त के नर-नारियों में क्या चतुर्थांश के वोट को भी प्राप्त कर सकेंगे? यदि आग से खेलना नहीं चाहते हैं, तो उन्हें देश की आवश्यकताओं को देखना होगा। यदि हमारे देश के शांतिप्रिय भाई देश को खूनी क्रांति के भीतर से नहीं घसीटना चाहते हैं, तो उन्हें भी कोशिश करनी होगी, कि अपनी आर्थिक समस्याओं को और बुरी न होने दिया जाय, और देश के किसी शिक्षाप्राप्त मस्तिष्क को बेकार न रहने दिया जाय। केवल कलकत्ता में दो सौ से अधिक ऐसे तरुण बेकार पड़े हैं, जिन्होंने विदेश जाकर कल-कारखानों और विज्ञान की बातें वर्षों रहकर सीखी हैं, लेकिन भारत लौटने पर उनके लिए कोई काम नहीं। तारीफ यह कि इनमें कुछ भारत सरकार की छात्रवृत्ति लेकर बाहर गये थे। जब एक तरफ योजनाएं धरती पर उतरने के लिए तैयार हों, और दूसरी तरफ उपयुक्त संख्या में विशेषज्ञ तैयार किये जायं, तभी दोनों का ठीक से उपयोग लिया जा सकता है। लेकिन इसके लिए उनसे क्या आशा की जा सकती है, जो एक दिन में सौ फाइलों पर हस्ताक्षर कर देने से समझते हैं, कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया? आज बड़े वेतन का स्थान होना चाहिए, फिर योग्य-अयोग्य का कोई भी ख्याल न करके अपने आदमियों को भरती करने की बात सोची जाती है। इंजीनियरी

के क-ख को भी न जाननेवाले एक सज्जन भूगर्भी रेलों के काम को देखने के लिए विलायत भेजे गए हैं, जहाँ से वह शायद पेरिस, बर्लिन और फिर अमेरिका का भी चक्कर लगायेंगे। पौंड-पावने और विदेशी-विनिमय का यह कितना सदुपयोग है? बड़ी-बड़ी पनबिजली और नहर की योजनाओं के प्रधान प्रबंधक जो लोग बनाये गए हैं, उनका कोई संबंध उस काम से नहीं है। वह मोटी-मोटी तनखाहें लेते बड़े-बड़े भत्ते बना रहे हैं। दामोदर-योजना की अकर्मण्यता को देखके "अमृत-बाजार-पत्रिका" (१५ मार्च १९४९) ने झुंझला कर लिखा—"दामोदर-योजना की प्रगति के बारे में जो कुछ सूचनाएं मिली हैं, वे बहुत उत्साहवर्धक नहीं हैं। आठ विकराल बांध बांधे जाने वाले हैं, किंतु अभी बनाने का काम एक में भी शुरू नहीं हुआ है। सिर्फ इंजीनियरों की प्रारंभिक दौड़-धूप हो रही है। अभी तक केवल ४५ एकड़ जमीन किसानों से प्राप्त की गई है, किंतु उनसे भी किसानों को हटाया नहीं गया है। इस योजना को पूरा करने के लिए जितनी विशाल मात्रा में कार्य करना है, उसे, आज हुए काम को देखने से कोई आशा नहीं होती, कि योजना नि[illegible]त समय के भीतर समाप्त हो सकेगी। "यदि काम इसी गति से चलता रहा, जैसे कि हो रहा है, तो इतना समय लगेगा कि लोग अधीर हो जायंगे। केवल लम्बी बातें करने और वचन देने पर वे संतुष्ट नहीं हो सकते। यदि जनता को अपने पक्ष में करना है, यदि राष्ट्रीय-सरकार के लिए उनका पूर्ण समर्थन प्राप्त करना है, तो कुछ ठोस चीज करनी होगी और वह भी बहुत जल्द। इस बात में जितनी देर होगी, आन्दोलनकारियों को गड़बड़ी फैलाने का उतना ही अधिक अवसर मिलेगा।

भगवानदास—बिजली के सम्बन्ध में तो मालूम है, कि भारत यद्यपि आबादी में ड्योढ़े से ज्यादा है, किंतु रूस में हमारे यहाँ से ४५ गुना अधिक बिजली पैदा होती है।

युधिष्ठिर—हाँ, और १९५० में पूरी होने वाली सोवियत् पंचवार्षिक

योजना, जो बहुत-सी चीजों को इस साल के अंत तक पूरी कर चुकी रहेगी, निम्न परिमाण में भिन्न-भिन्न पदार्थों को तैयार कर चुकी होगी—

नाम	टन	(लाख)
लोहा—	१६५	,,
इस्पात	२५४	,,
कोयला	२५००	,
मिट्टी का तेल	३५४	,,
बिजली	८२०००	(कि० वा०)
रेल इंजन	१०००	.•
मोटर	५,००,०००	
ट्रैक्टर	२,२२,०००	

रामी—और यह सब केवल बीस वर्षों के प्रयत्न से ?

युधिष्ठिर—और इसके मुकाबिले में हमारी औद्योगिक उपज (१९४७--४८ ई०) है[1]—

१९४७–४८

लोहा	१५.४०८ लाख टन	
इस्पात	१२.५८६	,,
तैयार इस्पात	८.८७	,,

१. १९४८ और १९४९ के प्रथमार्धों की उपज निम्न प्रकार है—

	१९४८ (पूर्वार्ध)	१९४९ (पूर्वार्ध)
कोयला (टन)	१५५,२७,७६३	११५,४६,०६६
सीमेंट (..)	७,५०,२६०	६,५८,०५१
कागज़ (,,)	४७,४४८	५१,३२४
कपड़ा (गज)	२१०,५६,७८,०००	१९९,६६,०२,०००
सूत (पौंड)	६६,०६,१६,०००	७६,३४,०५,२००

"हिन्दुस्तान टाइम्स" २८–७–४९

कोयला	२६८ लाख टन
बिजली	४२२१७ लाख किलोवाट
सूती कपड़ा	३७३४७ लाख गज
जूट	१०१८२ ,,

रामी—और हमारी संख्या सोवियत वालों से डेढ़ गुना से अधिक है।

युधिष्ठिर—लेकिन सोवियत के लोग इतने पर ही संतुष्ट नहीं हैं। वह सोचते हैं, कि जब तक अमेरिका के बराबर चीजें नहीं पैदा की जायंगी, तब तक हम दम नहीं लेंगे। इसके लिए ड्योढ़ी जनसंख्या होने के कारण अमेरिका से ड्योढ़ी उपज को बढ़ाना पड़ेगा। इस काम को वह १९६० ई० में पूर्ण कर देना चाहते हैं, जबकि सोवियत की कुछ चीजों की उपज निम्न प्रकार रहेगी—

लोहा	५ करोड़ टन (मेट्रिक)
इस्पात	६ ,, ,,
कोयला	५० ,, ,,
मिट्टी का तेल	६ ,, ,,

हम यदि उस वक्त की सोवियत उपज के समान शक्तिशाली होना चाहते हैं, तो तब उनसे हमारी जनसंख्या दूनी होने के कारण हमें इन चीजों को भी दूने परिमाण में पैदा करना होगा।

महीप—दुनिया दौड़ी जा रही है और हम?

युधिष्ठिर—दुनिया में जीवन की होड़ लगी हुई है। वहां खड़ा होकर तमाशा देखने वाला भीड़ के पैरों के नीचे रौंद दिया जाता है। क्या हम वही होना चाहते हैं या अपने देश को उद्योग-प्रधान बनाकर सुखी और समृद्ध बनाना चाहते हैं?

भगवानदास—अपि-चेली क्या यदि सारनाथ चलना हो, तो भी कोई बात नहीं, लेकिन मैं गंगा के घाट की बात नहीं कह रहा हूं।

महीप— जीते-जी नहीं ले जाना चाहिए भगवान भाई!

युधिष्ठिर—कहने भी दो। भगवान भाई, आप कहां पंचायत को ले चलने का प्रस्ताव कर रहे हैं?

भगवानदास—गंगा के किनारे हमारा अपना घर है, और उसकी छत पर से गंगा दूर तक दिखाई पड़ती है।

महीप—नहीं गुरु, यह नहीं होगा। पिछले ही साल जब से राय-कृष्णदास जी के मकान ने गंगालाभ लिया, तब से ऐसे मकानों पर मेरा विश्वास कम हो गया है, विशेषकर इन बरसात के दिनों में।

भगवानदास—हमारा मकान बहुत ऊंचा होने से यद्यपि वहां से गंगा दिखाई देती है, किन्तु गंगातट और हमारे घर के बीच में तीन-चार और मकान हैं और सिंधिया का पक्का घाट भी।

रामी—मैं भगवान भाई के पक्ष में हूं, न मालूम महीने-भर या कितने दिनों हमारी पंचायत चलेगी। कल ही आपने पढ़ा है, काशी के पत्रों में पंचायत की चर्चा शुरू हो गई है।

महीप—रामी बहन ने फैसला दे दिया।

युधिष्ठिर—तो जान पड़ता है सब इसके समर्थक हैं और अगली बैठक गंगा-किनारे भगवान भवन की छत पर होगी।

भगवानदास—सभी भाइयों को इस अनुग्रह के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, रामी बहन को विशेष करके। एक और निवेदन करना चाहता हूं, यद्यपि मेरा उसके लिए विशेष आग्रह नहीं है। आपने महात्मा मुखपात्री जी का नाम सुना होगा?

महीप—मैंने नहीं सुना है, मुखपात्री बड़ा विचित्र नाम है!

खोजीराम—मैंने उनका नाम सुना है, काशी के बड़े लोगों में भी

उनकी बड़ी पूजा होती है। करपात्री जी ने तो कभी किसी युग में कर को पात्र बनाके भिक्षा लेनी शुरू की थी, और मुखपात्री जी हाथ में भी भोजन नहीं लेते। मुख में जो कोई खिला देता है, उस को खा लेते हैं। शरीर पर एक कोपीन और अंगोछा के सिवा और कुछ नहीं रखते। काशी के बड़े-बड़े शिक्षित, संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के जानकार उनके भक्त हैं।

महीप—तो, उससे हमारी बैठक से क्या मतलब ?

भगवानदास—डाक्टर साहब ने उस महात्मा के बारे में बतलाया तो, लेकिन उनको समझ लीजिये बीसवीं शताब्दी के भारत के जितने महात्मा हुए हैं, सबका एकत्र अवतार।

महीप—अर्थात् वह रामकृष्ण परमहंस भी हैं ? त्रैलिंगस्वामी और भास्करानन्द भी, साथ ही अरविंद, रमन महर्षि, आनन्दी माई, स्वामी शिवानन्द, भक्तराज जयदयाल गोयन्दका और विश्वाद्वैतवादी महा-पुरुष रामकृष्ण डालमिया इत्यादि इत्यादि सभी।

भगवानदास—मैं तुमसे नाराज नहीं होता महीप बाबू, यही समझिए कि विश्व की सारी आध्यात्मिक विभूतियां उनमें अवतरित हुई हैं। उनको किसी तरह से हमारी पंचायत का पता लग गया, और वह चाहते हैं, कि यदि आपत्ति न हो तो वह भी हमारी बैठक में श्रोता बनें।

रामी—इसीलिए तो भगवान भाई, आपने स्थान-परिवर्तन की भूमिका नहीं बांधी ? खैर, मैं तो नहीं समझती, यदि महात्मा मुख-पात्री जी श्रोता ही नहीं संयम के साथ वक्ता भी बनके हमारी बैठक में शामिल हों, तो कोई आपत्ति होगी।

युधिष्ठिर—लेकिन ऐसा न हो कि कल को कोई दूसरा भाई करपात्री जी को सम्मिलित करने की बात करे और परसों तीसरा किसी और पात्री को।

सब लोगों ने भगवानदास के प्रस्ताव को माना और आज असली

विषय में वार्त्तालाप भगवानदास ने शुरू किया—युधिष्ठिर भाई, हमने एक दिन विदेशी पूंजी की बात चलाई थी। पत्रों में भी देखते हैं। कितने ही लोग विदेशी पूंजी को भय की दृष्टि से देखते हैं, कोई-कोई तो उसे सीधे डालर-साम्राज्य के हाथ में बिकना कहने से भी बाज नहीं आते। लेकिन क्या हमारा देश ऐसी स्थिति में है, कि बाहरी सहायता को ठुकरा दे? जल्दी और कम तरद्दुद से देश के उद्योगीकरण के लिए विदेशी पूंजी और विदेशी विशेषज्ञों की सहायता ली जाय तो क्या हरज? दूसरे देश के पास सारे साधन मौजूद हैं, वह अगर हमारी सहायता करना चाहता है, तो उसमें आपत्ति की कौनसी बात है?

महीप—आप समझते होंगे, कि मैं अमेरिका की सहायता का कट्टर विरोधी हूँ? यदि मुझे विश्वास होता, कि हमारी शर्त पर अमेरिका बीस साल के भीतर हमारे देश को उद्योग-प्रधान कर देगा, तो मैं मानने के लिए तैयार था; लेकिन मैं समझता हूँ, अमेरिका कभी ऐसा नहीं कर सकता।

भगवानदास—पहले से ही आप ऐसा कहे देते हैं?

महीप—यदि कोई कहे कि भगवानदास जी अपने हाथ से एक तोला अफीम लेकर खा लेंगे, तो क्या मैं यह नहीं कह सकता, कि वह ऐसा नहीं करेंगे।

भगवानदास—लेकिन यह अफीम खाकर मरने का सवाल नहीं है; अमेरिका को भी इसमें नफा है।

महीप—बस उसी नफे को दिखला दीजिए। कैसे अमेरिका हमारे देश को उद्योग-प्रधान बनाके नफा उठाता रहेगा? जिस वक्त हमारा देश एक बार उद्योग-प्रधान बन गया, तो अपनी संख्या के अनुसार वह अमेरिका से ढाई गुना अधिक शक्तिशाली बन जायगा, फिर उसे किसी से लेना-देना नहीं रहेगा। लेकिन आप सोचिये जरा, क्या दुनिया में कहीं देखा है, कि एक देश ने दूसरे को उद्योग-प्रधान बना दिया है।

इंगलैंड अपने साम्राज्य की लूट और अपने बल पर उद्योग-प्रधान बना; अमेरिका, जर्मनी, जापान अपने बल पर बने। रूस तो विरोध करने के बाद भी केवल अपने हाथों और मस्तिष्क के बल पर उद्योग-प्रधान बना। जो बात इतिहास में नहीं देखी गई, कैसे मान लिया जाय, कि वह अमेरिका हिन्दुस्तान के साथ करेगा।

खोजीराम—मैं समझता हूं, भगवानदास जी को संकटमोचन के महात्मा की यह चौपाई याद नहीं है—"सुर नर मुनि की ये ही रीती। स्वारथ लाय करहिं सब प्रीती।"

रामी—भगवान भाई, क्या अयुक्त बात कहते हैं? अमेरिका हिन्दुस्तान की मदद कर सकता है। आखिर अमेरिका पश्चिमी यूरोप में डालर वर्षा कर ही रहा है।

महीप—हिन्दुस्तान को यदि अमेरिका कभी दो अरब डालर दे सकता है, तो केवल इसी स्वार्थ से कि हिन्दुस्तान साम्यवाद के लिए ढाल का काम देगा। लेकिन चीन में दस अरब रुपया गंवाकर अब उसकी वह हिम्मत नहीं रह गई है। वैसे लल्लो-पत्तो में लगाके हमारे देश को फंसाये रखना दूसरी बात है। यह तो आप मानेंगे कि अमेरिका हमारा मुंह देखने के लिए अरबों डालर नहीं देगा। सबसे पहले यह देखेगा, कि हम पर राजनीतिक तौर से वह विश्वास रख सकता है या नहीं।

खोजीराम—इसमें भी क्या संदेह है, जब कि भारतवर्ष ने अमेरिकन साम्राज्य के उपसाम्राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में रहना ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि देश के भीतर और बाहर उसकी सारी गति-विधि उसी तरह की हो रही है, जिसे अमेरिका चाहता है।

युधिष्ठिर—इस बात को पहले ही कह चुके हैं, दोहराने की आवश्यकता नहीं, हम डालर-साम्राज्य के भीतर पूर्णरूप से हैं; लेकिन अमेरिका को अभी भी विश्वास होता नहीं दिखाई पड़ता।

भगवानदास—हनुमान जी होते तो हम हृदय चीरकर रख देते।

यह तो सब तरह से स्पष्ट है, कि हमारा देश रूस और उसके साथ सहानुभूति रखने वालों के साथ केवल दिखावे-भर का सम्बन्ध रखना चाहता है।

महीप—दिखावे का भी मत कहिये, क्योंकि हमारे प्रधान मंत्री रूस के निमन्त्रण को अस्वीकार करते हैं, और अमेरिका के निमन्त्रण को स्वीकार कर चुके हैं।

भगवानदास—जिससे कुछ मिलने वाला होता है, उसके दो लात भी आदमी मंजूर करता है।

महीप—मैं कहूंगा बिना कुछ मिले-जुले ही हम दो लात खाने जा रहे हैं। आपके देश को उद्योग-प्रधान बनाने के लिए अमेरिका को कितना सामान देना पड़ेगा ? सामान के बारे में कहने से पहले मैं यह बतला देना चाहता हूं। यदि आप समझते हैं, कि अमेरिका आपके यहां आकर मौलिक उद्योग-धंधे स्थापित कर देगा, ऐसे कल-कारखाने स्थापित कर देगा, जिसमें सुई से लेकर विमान तक, मोटर से लेकर विशाल युद्धपोत तक सभी चीजें हम बना सकें; तो आपके जैसा भोला आदमी दुनिया में नहीं है। ऐसा करने के बाद आप तुरन्त उसे अंगूठा दिखला देंगे।

भगवानदास—मौलिक उद्योग-धन्धे न सही, हल्के उद्योग-धन्धे को जमाने में क्या दिक्कत है ? हल्के उद्योग-धन्धे के जम जाने पर मौलिक या भारी उद्योग-धन्धों को हम धीरे-धीरे खड़ा कर लेंगे।

रामी—भगवान भाई, आप द्रविड़ प्राणायाम कर रहे हैं। अमेरिकन पूंजीपति बेवकूफ तो नहीं हैं, कि आपकी चाल न समझ पायंगे।

महीप—यह भी सोचिए, हमारे देश की जनसंख्या अमेरिका से ढाई-गुनी के करीब और रूस से ड्रेढ़-गुनी है। यदि रूस की पंचवर्षीय योजना से ड्योढ़ा अपने उद्योग-धन्धे को बढ़ा सकें, तभी हम रूस के समान सबल और समृद्ध हो सकेंगे; अमेरिका के बराबर पहुंचने में तो और भी देर लगेगी। मान लीजिये हम रूस की वर्तमान पंचवार्षिक

योजना से ड्योढ़ा अपने यहां धन्धे को बढ़ाना चाहते हैं, तो उसके लिए हमारे देश को यन्त्रों की आवश्यकता निम्न प्रकार होगी—

रेल-इञ्जन (दूरगामी)	३३००
डीज़ेल-इञ्जन (दूरगामी)	४५०
बिजली-इञ्जन (दूरगामी)	३३०
मोटर ट्रक	६,४२,०००
मोटर बस	९६००
मोटर कार	७८,४००
लोहा और इस्पात-मिल के कल पुर्जे	१,५४,३५० (टन)
भाप-टर्बाइन (किलोवाट)	४३,५६,०००
जल-टर्बाइन (किलोवाट)	५,५८,०००
जल-टर्बाइन मध्यम (किलोवाट)	२,२५,०००
जल-टर्बाइन छोटी (किलोवाट)	७,५०,०००
बिजलीमोटर (सौ किलोवाट तक)	९,३६,०००
बिजली मोटर (सौ किलोवाट से ऊपर)	१३,५००
धातु के कारखाने वाली मशीनें	१,११,०००
कपड़ा मिल के तकवे	२१,००,०००
कपड़ा करघे	३७,५००
ट्रेक्टर	१,६८,०००
ट्रेक्टर वाला हल	१,६५,०००
ट्रेक्टर वाला जोतक	१,२३,४५०
ट्रेक्टर वाला बोवक	१,२४,९५०
दवाई मशीन	२७,४५०

एक अच्छा ट्रेक्टर आजकल दस हजार रुपये से कम में नहीं मिलता। रेलवे इञ्जन का लाख-दो लाख मूल्य होता है। इन सब चीजों का दाम जोड़िये, तो वह एक-दो अरब नहीं खरब से कम नहीं पहुँचेगा। आप चाहते हैं, अमेरिका इन सबको बनाकर अगले पंद्रह

सालों में आपको दे दे।

भगवानदास— सौ नहीं पांच सौ अरब दाम हो, लेकिन इन चीजों के हमारे देश में आने पर हम उन्हें बन्द तो नहीं रखेंगे। हम भी अपने यहां प्रतिवर्ष चार-पांच करोड़ टन लोहा निकालेंगे, कोयला और बढ़ायेंगे। खनिज-खाद्य पचासों लाख टन तैयार करेंगे, सीमेन्ट, कांच, सूती-ऊनी कपड़ा, चमड़े की चीजें, रबर की चीजें, मोजा-बनियान, आटा, चीनी, मछली, मांस, साबुन और हजारों तरह की चीजें पैदा करेंगे और अमेरिका से लिये उधार को सूद-सहित लौटा देंगे।

महीप—लौटाने की बात छोड़िए, यदि अमेरिका आपको उधार देगा तो आपकी हड्डी से जो भी निकलने लायक होगा, निकाल लेगा। अमेरिका का परमाणु-बम रूस के सामने भले ही बेकार रहे, लेकिन आपके लिए वह काफी काम करने वाला होगा। जानते हैं न, बाक्सर युद्ध में यूरोपीय शक्तियों ने चीन पर जुर्माना लगाया, जिसका चीन के लिए देना मुश्किल था। इस पर यूरोपीय शक्तियों ने आयात कर वसूल करने का काम अपने हाथ में ले लिया। अमेरिका हमारे आय-कर ही पर अधिकार नहीं करेगा, बल्कि जूट, चाय आदि जो भी चीज बाहर भेजकर पैसा बनेगा, सब पर अधिकार कर लेगा। लेकिन सवाल यह है, कि कल और मशीन के रूप में आई इस बड़ी पूंजी का क्या आप सूद भी दे सकेंगे? आप जानते हैं कि जो लोहपाषाण दस रुपये का है, लोहा बनाने पर उसमें सौ रुपयों का माल निकलता है, मशीनों में लगने वाले इस्पात को बनाने पर तो वह सौ से दो हजार का हो जाता है, और वह इस्पात जब तरह-तरह की शक्तिशाली मशीनों के रूप में बदलता है, तो उसका दाम और बीस गुना बढ़ जाता है। आप अधिक-से-अधिक लोहा बनाके उसे कच्चा ही बाहर भेज देंगे, फिर अपनी सस्ती चीज देकर कहां तक महंगे सौदे का दाम चुकाएंगे?

भगवानदास—लेकिन जब छोटी-मोटी मशीनें हम बनाने लगेंगे,

और आज भी छोटे-मोटे डिनामो, छापे प्रेस और दूसरी चीजें हमारे देश में बन रही हैं, नई-नई यूरोपीय कलों को जब हम चलाएंगे, उनकी मरम्मत करेंगे और बड़ी संख्या में हमारे विद्वान टेक्नोलोजी को पढ़ेंगे, तो क्या हम उन मशीनों को स्वयं नहीं बनाएंगे ?

युधिष्ठिर—यह तो अमेरिका के लिए डर की बात है। आपके लिए दस लाख मोटर और ट्रेक्टर को छूमन्तर से तो वह बनाकर नहीं देगा। आपकी मांग जितने कल-मशीनों की होगी, उनके बनाने के लिए अमेरिका के आज के कारखाने पर्याप्त नहीं होंगे। उनकी संख्या बढ़ानी होगी। पांच-गुना बढ़ाने पर पूंजी भी पांच गुना और लगेगी, मजूर या इंजिनीयर भी पांच गुना बढ़ेंगे, नये विशाल नगर तैयार करने पड़ेंगे, जिनमें मजूर और विशेषज्ञ बसें। आप पन्द्रह नहीं सौ साल तक अमेरिका से सारी चीजें लेते और मूल्य वापस करते रहते, तो थोड़े नफे पर भी अमेरिका ऐसे सौदे को मान लेता; लेकिन आप तो पहले ही से सोच रहे हैं, कि जैसे ही यन्त्र विद्या का परिचय और अनुभव हुआ और उनके बनाने की सामग्री तैयार होने लगी, तो हम अपने कारखाने खोल देंगे, अर्थात पन्द्रह-बीस बरस बाद आप अपने कारखाने खोल लेना चाहते हैं। फिर तो आपके काम के लिए बसे वे अमेरिकन नगर उजड़ जायंगे। वहां लगी पूंजी कल पुर्जों के साथ नष्ट हो जायगी और अमेरिका के करोड़ आदमी भूखे मरने लगेंगे। आप यह न समझें कि अमेरिका ने बुद्धि बेचकर डालर बटोरा है।

भगवानदास—बात तो टेढ़ी मालूम होती है। उतना अधिक नहीं, कुछ कम ही सही, अमेरिका से अपने देश को उद्योग-प्रधान बनाने में क्या हमें सहायता नहीं मिलेगी ?

युधिष्ठिर—अमेरिका सहायता दे, तो क्यों नहीं मिलेगी ? लेकिन आज प्रतिवर्ष चालीस लाख टन अनाज बाहर से मंगाये बिना हम अपने लोगों की जान नहीं बचा सकते। जनसंख्या के बढ़ने से देश की आर्थिक अवस्था और गिरती जा रही है, ऊपर से रिश्वत और चोर-

बाज़ारी ने धन को लोगों के हाथों से खींचकर थोड़े हाथों में रख दिया है, नैतिक पतन की तो महामारी-सी फैली हुई है। ऐसी अवस्था में हम प्यासे को सींक से पानी तो नहीं पिला सकते।

रामी—देखने में तो यही मालूम होता है, कि अमेरिका हमारे देश को औद्योगिक तौर से सबल बनाकर अन्त में उसे अपना अनुगामी नहीं बल्कि प्रतिद्वन्द्वी बनायगा।

खोजीराम—और यह भी दिखाई पड़ रहा है, कि हमारे देश में बंगाल या तेलंगना में जो गवर्नमेंट के विरुद्ध छोटे-मोटे उपद्रव हो रहे हैं, वह चाहे देश में नगण्य मालूम होते हैं, लेकिन अमेरिकन उसे भय की दृष्टि से देखते हैं।

महीप—चाङ्कैशक पर डालर-शाहोंने विश्वास किया। ढाई अरब डालर कम नहीं होता, जो चाङ् के हाथ में सौंपा गया था। लेकिन अन्त में चाङ् कहीं का नहीं रहा। अमेरिका भारत के बारे में यह भी सोचेगा कि आज जो हमारे साथ शपथ खाते हैं, किन्तु वह कल कहां रहेंगे? अमेरिका यह भी जानता है, कि चीन में भी बीस साल पहले इसी तरह छोटे-मोटे नगण्य उपद्रव होने शुरू हुए थे।

युधिष्ठिर—महाजन अपने पैसे को बड़ी मुश्किल से घर से बाहर निकालता है। किसान तो आधे सूखे-गीले खेत में भी अनाज डाल आता है, किन्तु बनिया नब्बे की जगह सौ लिखवाकर तब रुपया गिनता है। इसलिए अमेरिका यदि हमारे देश को कुछ सहायता करेगा, तो जलते तवे पर छुन्न से करने के लिए एक-एक बूँद करके ही। इधर हमें हर साल पचास लाख नये मुखों को खिलाना है। यदि यह नहीं करते तो जनता का धैर्य टूटता है, देश में उथल-पुथल मचती है। उधर अमेरिका सिर्फ एक करोड़, दो करोड़ डालर की चीजें भेजता है।

महीप—उन चीजों में भी फौन्टेनपेन, मुख चूर्ण, लिपस्टिक और फैशनेबुल मोटरों की भरमार, जिनमें लगाये पैसे का कोई उत्पादन नहीं।

भगवानदास—तो क्या हमें बाहर से आशा छोड़ देनी चाहिए।

खोजीराम—आशा छोड़ देना हजार-गुना अच्छा है। यदि तब भी कोई मदद करता है, सहायता भेजता है, तो अच्छी बात है। लेकिन हमें हर तरह अपने पैर पर खड़े होने का प्रयत्न करना होगा।

युधिष्ठिर—और अभी तो रोज़ा बख्शाने पर नमाज गले पड़ रही है। अमेरिका से डालर मिलने की कोई आशा नहीं, और उधर इंगलैंड में हाय-तोबा मची हुई है। वहां डालर का अकाल पड़ रहा है। क्यों नहीं अकाल पड़ेगा? अन्न, दूध, मांस, गेहूँ और पूँजी भी कितने दिनों तक अमेरिका ढो-ढोकर इंगलैण्ड को पोसता रहेगा? मांस देने में कुछ आनाकानी की, तो इंगलैण्ड ने इकरारनामा लिखकर अर्जेनटाइन से माँस लेना स्वीकार किया। इसके लिए अमेरिका कुपित हो गया, डालर देने से हाथ खींचने लगा पौंड पर तबाही आई। उसकी दर गिरने लगी। इंगलैंड के पास जो चालीस-पचास करोड़ पौंड सोना था, वह कागजी पौंड को न गिरने से बचाने के लिए हवा होने लगा। इंगलैंड के लिए पौंड का भाव गिराने के सिवा और कोई रास्ता नहीं था। पौंड का भाव तिहाई गिरा देना पड़ा, जिससे हमारा पौंड-पावना चाहे गिनती में उतना ही हो, लेकिन चीजों को खरीदने में उसका मूल्य दाम दो-तिहाई ही रह गया।

भगवानदास—हरे राम! हरे राम! तब तो दुनिया उलट जायगी। हमारा रुपया भी तो पौंड के साथ नत्थी है। यदि पौंड दो-तिहाई हो गया, तो हम बाहर से चीज मंगाने से रहे और उधर रुपया जो पौंड पर अवलम्बित था, उसकी हालत बुरी हो गई।

महीप—और चालीस लाख इस साल, अगले साल पचास लाख टन जो अन्न मंगाकर बाल बच्चों को जिलाना है, उससे भी आफत आयगी। अभी तक बाहर से अन्न खरीदने में पौंड तो हमारा बड़ा सहारा रहा।

भगवानदास—इधर आग है, उधर कुंआ, बड़ी भयंकर हालत है।

युधिष्ठिर—और मंजिल बहुत दूर है, न जाने कितने साल काटने हैं। क्या मांग-जांच के भरोसे हम अपने देश को खड़ा करने की आशा रखके गलती नहीं कर रहे हैं? मैं तो समझता हूं, हमारे लिए एक ही रास्ता है। रवीन्द्र के शब्दों में—"तुमी एकला चलो रे, एकला चलो रे, ओ अभागा!" लेकिन हमारा तेतीस करोड़ का जनगण जब अपना आस्तीन को ऊपर चढ़ा हाथों में फावड़ा ले अपने पैरों पर खड़ा होकर (अकेला) चलेगा, तो रवीन्द्र के गान में अभागा की जगह सुभागा शब्द रखना होगा।

छठा अध्याय

देश में उद्योगीकरण के साधन

पंचों की मण्डली में आज युधिष्ठिर ने संवाद शुरू किया -- मंगनी की मशीनों से भारत का उद्योगीकरण नहीं हो सकता और बाहर की निर्भरता हमारे लिए हानिकारक होगी। लेकिन प्रश्न होगा, क्या हम अपने भरोसे देश का उद्योगीकरण कर सकते हैं? मैं समझता हूँ, यदि हमें बाहर से कोई भी मदद न मिले, तब भी हम अपने देश का उद्योगीकरण कर सकते हैं। हां, यह अवश्य है, कि हम जो भी उत्पादन करेंगे, उसका बड़ा भाग उपभोग न करके नये कारखानों में लगा देना पड़ेगा और कितनी ही न-अत्यावश्यक चीजों के उपभोग का लोभ छोड़ना होगा। देर होगी की शिकायत नहीं की जा सकती, क्योंकि यह आशा रखनी भूल-मात्र होगी, कि दूसरे देश—और वह इंगलैण्ड तथा अमेरिका छोड़ दूसरे नहीं हैं—जहाजों का तांता लगाकर हमारे देश में १०-१५ साल के भीतर कारखाने-ही-कारखाने खड़ा करके हमें भी अपने पैरों पर खड़ा कर देंगे, और फिर सलाम करके विदा हो जायंगे। हमारा तजर्बा बतलायेगा कि बाहर की प्रतीक्षा में जो समय हमने लगाया, उससे कहीं पहले देश को उद्योग-प्रधान बनाया जा सकता था। देश को उद्योग-प्रधान बनाने के लिए तीन चीजें आवश्यक हैं, (१) हमारे पास प्राकृतिक संपत्ति होनी चाहिए, (२) हमारे पास काम करने के लिए पर्याप्त हाथ होने चाहिएं और (३) विज्ञान तथा टेकनिकल साइन्स (यन्त्र-चातुरी) में दक्षता होनी चाहिए।

भगवानदास—ठीक कहा युधिष्ठिर भाई, दूसरों के ऊपर निर्भर रहना अच्छा नहीं है। हमारे सेठ लोग यद्यपि चाहते हैं, कि बाहर से मदद अधिक मिले, तो काम जल्दी हो जाय; किन्तु वह भी स्वावलम्बन के विरोधी नहीं हैं।

महीप—विदेशी पूंजी और सहायता के लिए हमारे पूंजीपति क्यों उत्सुक हैं, इसके और कारण भी हैं भगवान भाई, वह समझते हैं कि हम जर्जर नाव में बैठे हैं, यदि दो चार और को बिठा लें, तो सबके जोर लगाने और लग्गा भरने से नैया पार हो जायगी। अथवा समझते हैं, नाव पर डाकुओं का डर है, इसलिए और भी आदमी आ जायं, तो सबल हाथ लड़ने के लिए मिल जायंगे।

खोजीराम—इसमें सन्देह नहीं महीप, हमारे पूंजीपति आग्रह करके अमेरिकनों को ला बिठाना चाहते हैं। उनकी पूंजी से भी इन्हें परमाणु-बम बहुत प्यारा है। वह चाहते हैं, कि अमेरिका की मदद से क्रांति की बाढ़ भारत में रोक दी जायगी।

शर्मा—लेकिन अमेरिका चीन को क्यों नहीं बचा सका?

भगवानदास—चीन अपनी कमजोरियों से तबाह हुआ। भगवान भी उसी को मदद करके बचा सकते हैं, जो स्वयं अपनी मदद करता है।

महीप—मैं समझता हूं भगवान भाई, हमारे पूंजीपति चाङ्-कैशक के पृष्ठपोषक पूंजीपतियों से किसी बात में बेहतर नहीं हैं।

युधिष्ठिर—हम दूसरी-दूसरी बातों में बहके जा रहे हैं। देश के उद्योगीकरण के साधन पर विचार करना है। यह इतना बड़ा विषय है, कि इसे एक शाम में समाप्त करना बहुत कठिन है, इसलिए अपने विषय ही तक बात को सीमित रखें, तो अच्छा है। लेकिन देखना है, प्राकृतिक संपत्ति में किसकी हमारे पास कमी है, और कौन-कौनसी वस्तुएँ मौजूद हैं।

महीप—उद्योगीकरण में सबसे पहले ही धन और शक्ति की आव-

श्यकता होती है। यदि कोयला, बिजली, तेल, गैस हमारे पास पर्याप्त नहीं हैं, तो हम अपने देश का पर्याप्त उद्योगीकरण भी नहीं कर सकते।

भगवानदास—कोयला तो, मैं समझता हूँ, हमारे पास बहुत है।

महीप—बहुत क्या पर्याप्त भी कहने का हमें साहस नहीं है। लेकिन यह भी स्मरण रखना है, कि उद्योगीकरण के लिए आवश्यक सामग्री में से अधिकांश जमीन के उदर के भीतर हैं। हमारे यहाँ जो सर्वे अंग्रेजों ने की है, वह बिलकुल नाममात्र की है। जिन खनिजों को उन्होंने देखा, कि सस्ते और आसानी से निकाले जा सकते हैं, उन्हीं की खानों को चालू किया। कितने ही खनिज पदार्थ धरती में हजार-हजार फीट नीचे प्राप्त होते हैं। उनकी खोज की बात ही क्या, जब ऊपरी सर्वे भी बहुत कम हुई है। कोयला हमारे पास है। हमारे झरिया, मध्यप्रदेश, हैदराबाद जैसे कोयला-क्षेत्र प्रसिद्ध हैं। कालिम्पोङ् की कोयलाखान में तो लड़ाई के समय से काम होने लगा है। हमारी धरती में जितना कोयला है, उसे जानने के लिए हमें हजारों भूतत्त्वज्ञों को खोज के काम में लगाना पड़ेगा। पूर्वी पंजाब, युक्तप्रान्त, बिहार और बंगाल के कुछ हिस्से यही हमारे मैदानी इलाके हैं, जो पहाड़ी इलाकों से कम हैं। हमारे पास विन्ध्याचल और दक्षिणी पर्वतमाला दुनिया की सबसे पुरानी चट्टानों की हैं, और हिमालय सबसे नया पहाड़ है। आश्चर्य नहीं होना चाहिए, यदि कोयले की राशि हमारे पास अकूत हो।

भगवानदास—लेकिन हमें कल्पना पर नहीं दौड़ना चाहिए, अभी हमारी क्या स्थिति है?

महीप—कोयला परिमित मात्रा में है, और उसमें भी धातु के लिए आवश्यक ऊँचे दर्जे का कोयला कम है।

रामी—तब तो कोयले को बड़ी सावधानी से खर्च करना होगा।

महीप—आज तक अंग्रेज हमारी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु को सबसे ज्यादा बरबाद करते रहे हैं। हमें अवश्य अपने कोयले को

मितव्ययिता के साथ खर्च करना होगा। लेकिन कोयले की कमी को हम बिजली से पूरा कर सकते हैं।

खोजीराम—बिजली के लिए तो हमारा देश शायद दुनिया में सबसे धनी है।

महीप—सारी दुनिया से अगर सबसे धनी न भी हो, तो भी हमसे अधिक बिजली दुनिया के एक-दो ही देश पैदा कर सकते हैं। पूर्वी पंजाब से बिहार तक की सात बड़ी नदियों से प्रत्येक हजार फीट की उतराई पर ३० लाख घोड़े की शक्ति की बिजली पैदा की जा सकती है।

भगवानदास—३० लाख घोड़े की शक्ति!

महीप—और यह भी ख्याल रखिये कि इन नदियों पर सात हज़ार फीट की ऊंचाई से बराबर हम बिजली बनाने वाले स्टेशन स्थापित कर सकते हैं।

भगवानदास—तब तो सात नदियां ही हमें दो करोड़ घोड़े से अधिक की शक्ति प्रदान कर देंगी।

महीप—हमारे पास बिजली का स्रोत केवल हिमालय ही में नहीं है। नर्मदा, महानदी और सोन जिन पहाड़ों से निकलती हैं, वहां से भी बिजली निकाली जा सकती है। यद्यपि विंध्याचल का भाग इतना ऊँचा नहीं है, कि वहां सनातन हिम बना रहे, किन्तु मानसून हमें इतना पानी देती है, कि हम इन पहाड़ों में जगह-जगह बड़े-बड़े सरोवर कृत्रिम समुद्र बनाके पानी जमा कर सकते हैं, जो बिजली और सिंचाई दोनों के काम आ सकते हैं। कई जगह तो एक नदी को दूसरी से मिलाया जा सकता है, जिससे नौका द्वारा माल सस्ते में भेजा जा सकता है।

खोजीराम—हमारे यहां भी नदियों के मिलाने की संभावना है? रूस ने अपनी मास्को, वोल्गा, दोन आदि नदियों को मिलाकर पाँच समुद्रों को नत्थी कर दिया है। हो सकता है, हमारे पास भी ऐसे

साधन हों।

महीप—हां, महानदी और नर्मदा को ऊपरी भाग में मिलाकर हम अपने पूर्वी (अरब) पच्छिमी (वग) समुद्रों को देश के भीतर-भीतर से जोड़ सकते हैं।

रामी—क्या कहा ? क्या उड़ीसा से महानदी द्वारा आदमी नर्मदा होकर गुजरात पहुंच सकता है ?

महीप—रामी बहन, आश्चर्य करने की बात नहीं है। महानदी भी अमरकंटक से निकलती है, और नर्मदा का भी स्रोत वहीं है। अमरकंटक से कुछ दक्खिन इन दोनों नदियों को नहर द्वारा मिलाया जा सकता है। हां नदियों को कहीं-कहीं पर गहरी करने की आवश्यकता होगी, कहीं-कहीं उनकी धारा में भी परिवर्त्तन करना पड़ेगा, तब उनसे नौसंतरण का काम लिया जा सकेगा। खैर, सिंचाई और नौसंतरण की बातें फिर होंगी। यह निश्चय है, कि मध्यप्रदेश और मालवा भी अपनी रेलों, कल कारखानों और प्रकाश के लिए पर्याप्त बिजली पैदा कर सकते हैं। मद्रास और बम्बई के पूर्वी-पच्छिमी घाटों में भी बिजली भरी हुई है; बम्बई नगर को अब भी वहां से बिजली मिल रही है। इस प्रकार हमारे देश में कहीं भी रेल और कारखाने को चलाने के लिए कोयला जलाने की आवश्यकता नहीं।

भगवानदास—तब तो कोयले की बहुत बचत होगी, हम चाहेंगे तो विदेश में उसे भेज दूसरा आवश्यक माल खरीद सकेंगे।

महीप—शायद पूरे उद्योगीकरण के बाद धातुओं के कारखाने में जितने कोयले की आवश्यकता होगी, तथा पेट्रोल बनाने में उसकी जितनी आवश्यकता होगी, वह कम नहीं होगी। तो भी बिजली वस्तुतः हमारे ईंधन और शक्ति की समस्या को हल कर सकती है। हम देश में उसे इतना पैदा कर सकते हैं, कि सारी रेलों को बिजली से चलाया जा सकता है, ग्राम-नगर दोनों के सारे कारखानों को बिजली से संचालित किया जा सकता है, सारे घरों में बिजली के ही प्रकाश

को जलाया जा सकता है। यहां तक कि अपनी खेती की मशीनों को भी हम बिजली से चला सकते हैं।

भगवानदास—लेकिन पेट्रोल का काम कैसे चलेगा? कहते हैं हमारे यहां उसका अभाव है।

महीप—अभी तक जो सर्वे हुई है, उसे नाम-भर का कहना चाहिए, और उससे जान पड़ता है, कि पेट्रोल में हमारा देश परम दरिद्र है।

खोजीराम—क्या पेट्रोल के लिए कोई रास्ता नहीं निकाला जा सकता है?

महीप—बहुत-सा पेट्रोल का खर्च कम किया जा सकता है, शहर में मोटर बसों को हम बिजली से चला सकते हैं। दरअसल अब ट्रामवे चलाने की आवश्यकता नहीं है, उससे खामख्वाह सड़क खराब लगती है। हम ऊपर के बिजली के तारों के बल पर मोटर-बस चला सकते हैं। मोटरों और बसों में भी एक चौथाई पेट्रोल के खर्च को कम किया जा सकता है, यदि अपनी सारी चीनी मिलों के सीरे को स्पिरिट में बदल दिया जाय। अंग्रेज इसे नहीं चाहते थे, क्योंकि अंग्रेज कम्पनियों को अपना तेल बेचना था।

भगवानदास—लेकिन हमें तो कम्पनियों का ख्याल नहीं करना है।

महीप—एक-चौथाई पेट्रोल कम करने ही से काम नहीं चलेगा। किंतु कोयले से भी हम बहुत-सा पेट्रोल पैदा कर सकते हैं। इस तरह अपने पेट्रोल के आयात को तीन-चौथाई तक घटा सकते हैं, और एक तरह विमानों के लिए ही हम बाहर के देशों के पेट्रोल पर निर्भर कर सकते हैं।

खोजीराम—और एक-चौथाई पेट्रोल के लिए हम किसी के मजबूर नहीं रहेंगे। रूस, इंगलैण्ड, अमेरिका जो भी हमें अच्छी शर्त और भाव पर देगा, उससे हम पेट्रोल खरीदेंगे।

रामी—मेरा तो महीप भाई, माथा ठनकने लगा था। सोचती थी, कहीं पेट्रोल हमारे हाथ-पैर बांधकर दूसरों के हाथ में नहीं दे। यह तो मालूम हो गया, कि तीन-चौथाई पेट्रोल का काम हम निकाल सकते हैं। उसके बाद नाप—आ-सेतु, आ-हिमालय, आ-सदिया, आ-सौराष्ट्र हर जगह की छान-बीन करने पर संभव है और भी कुछ पेट्रोल मिल जाय।

महीप—अवश्य हमको कोशिश करनी चाहिए। अंग्रेजों ने जितना बतलाया, हमारी धरती में उतने ही खनिज पदार्थ हैं, यह समझ बैठना गलत होगा। स्वाभाविक गैस का ईंधन किसी-किसी देश में मिलता है, किसी-किसी देश में कोयले की खान से गैस निकालने का भी आयोजन है। सब देखने से जान पड़ेगा कि ईंधन और शक्ति के हमारे पास काफी स्रोत हैं, जिनके कारण हमें अपने देश को उद्योग-प्रधान बनाने में कोई दिक्कत नहीं हो सकती।

भगवानदास—और लोहा ?

महीप—लोहे से तो हमारा देश मालामाल है। हमारा लोहा दुनिया में बहुत ऊंचे दर्जे का है। तीन अरब टन लोहे की निधि तो अभी ही कूती जा चुकी है। पहाड़ों में उसे जगह-जगह पाया जाता है। हिमालय में कई जगहों पर सौ वर्ष पहले लोहा निकाला जाता था। हिमालय में यमुना की शाखा पब्बर की उपत्यका में सौ वर्ष पहले लोहा बनाया जाता था। बिहार उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मैसूर और मद्रास में सुजात लोहे के इतने भारी स्रोत हमारे पास मौजूद हैं, जो कई सौ वर्षों तक काम दे सकते हैं।

भगवानदास—उसके बाद और भी महत्वपूर्ण धातुएँ हैं ?

महीप—आलमोनियम कम महत्त्व की चीज नहीं है। यह केवल बर्तनों के बनाने में ही इस्तेमाल नहीं होती, बल्कि हवाई-जहाज और दूसरे कामों में भी इस्तेमाल होती है। लोहे के बाद सबसे अधिक खर्च आलमोनियम का ही है। हमारे पास आलमोनियम की अक्षयनिधि है। अभी तो हम केवल बंगाल के बक्साइट का ही आलमोनियम बना रहे

हैं, यह काम भी लड़ाई के समय से आरम्भ हुआ।

भगवानदास—हां, मुझे मालूम है। बाबू निर्मल कुमार जैन ने बड़े परिश्रम और दूरदर्शिता के साथ इस कार्य को आरम्भ किया था। अंग्रेज नहीं चाहते थे, कि देश में आल्मोनियम बने।

महीप—अब चाहने का नहीं करने का सवाल है। अलौह धातु में तांबे की हमें कमी नहीं है। अभी वह बिहार में निकाला जाता है, लेकिन हिमालय में कई जगह निकाला जाता था; पीछे विदेशी तांबा सस्ता पड़ने लगा, तब पुरानी खानें बंद हो गईं।

खोजीराम—देश के लिए सस्ता और महंगा क्या मतलब रखता है? यदि हमें अपने देश को किसी वस्तु में परतंत्र नहीं रखना है, तब तो हमें सस्तेपन और महंगेपन का ख़्याल छोड़ देना होगा।

महीप—यह आप समाजवादी उद्योग-धंधे की बात कह रहे हैं। पूंजीपति का जीवन निर्भर है सस्ते-महंगेपन के ऊपर। जहाँ सारे राष्ट्र की दृष्टि से काम करना होता है, वहाँ तीस रुपया मन खरीदे गेहूँ को भी घाटा सहकर पंद्रह रुपया मन में बेचा जाता है। एक जगह के बढ़े मांस को काटकर दूसरी जगह लगाने में राष्ट्र कोई क्षति नहीं समझेगा, लेकिन पूंजीवादी प्रथा यह स्वीकार नहीं कर सकती। जहाँ तक तांबे का सवाल है, हम हर जगह शोधनिया, कारखाने खोल सकते हैं। तांबे के लिए हमें बाहर के देशों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। मज़बूत इस्पात बनाने के लिए मगानीज और क्रोमाइट की आवश्यकता होती है। यह दोनों चीजें हमारे यहां बहुत मिलती हैं। अंग्रेजों ने देश में शुद्ध करने का इंतजाम होने नहीं दिया और आज भी यह चीजें बड़े परिमाण में कच्चेरूप में मिट्टी के मोल बाहर भेजी जा रही हैं। सीसा की हमारे यहाँ कमी नहीं है, लेकिन अब भी उसके निकालने में बहुत-सा खर्चीला तरीका इस्तेमाल किया जा रहा है। उदयपुर से सीसे के धातु-पाषाण को लारी और रेल से बंगाल भेजा जाता है। किसी वक्त मेवाड़ की इन सीसे की खानों के पास बड़ा

नगर बसा था, आज भी उसका ध्वंसावशेष वहाँ मौजूद है, और सीसा ढालने की लाखों मूसायें आप वहाँ देख सकते हैं। पहले धातु-पाषाण से सीसा भर गला के निकाल लिया जाता था, उसमें मिला चांदी, तांबा और जस्ता छोड़ दिया जाता था। आधुनिक ढंग का कारखाना स्थापित कर देने पर हम सब धातुओं को अलग कर सकते हैं।

भगवानदास—हमारे देश में और कौन-कौन-सी धातुएँ हैं?

महीप—अभी जो हमारी अधूरी खोज हुई है उससे मालूम होता है, कि निकल और रांगे का हमारे यहां अभाव है। लेकिन हमें पुरानी सर्वे पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मेरे मित्र १९४८ में ऊपरी सतलज के इलाके में गये थे। वह धातु-शास्त्री नहीं हैं, लेकिन देश की भूमि में क्या-क्या संपत्ति है, इसे पता लगाने की कोशिश हरेक भारतीय को करनी चाहिए। वहां उन्हें सीसा के बहुत अच्छे धातु-पाषाण की राशि का पता लगा, जिनमें एक सतलज के बायें किनारे पूर्वणी में है, और दूसरा सतलज के दाहिनें तट पर मीरू में। इनके अतिरिक्त चार-पांच प्रकार के दूसरे खनिज पदार्थ भी वहां प्राप्त हुए। पास की वस्पा-उपत्यका के ऊपरी भाग में तो काले रंग का एक चूर्ण मिलता है जो जल उठता है, गंधक की तीक्ष्ण गंध देता है। दर असल उद्योगीकरण के काम के साथ हमें अपने देश की अंगुल-अंगुल भूमि को चालना होगा, तब चीजों का पता लगेगा।

खोजीराम—उद्योग-धंधे के लिए कच्चे माल भी आवश्यक होते हैं?

महीप—बहुत-से कच्चे माल आवश्यक हैं। हमारे जंगल लाख, टरपेन्टीन, गंदा-बिरोजा, बाँस की पल्प, कागज की घास के अक्षय-भंडार हैं। यह हमारे हाथ में है, कि चाय कपास, जूट, तंबाकू, ऊख, तेलहन को अपनी आवश्यकता-भर पैदा कर सकें, हां इसके लिए कृषि में सुधार और सिंचाई का सस्ता प्रबंध करना पड़ेगा।

रामी—यह तो मालूम हो गया, कि हमारे देश में उद्योगीकरण के लिए आवश्यक प्राकृतिक संपत्ति मौजूद है, मानवी शक्ति के लिए तो

कुछ कहना ही नहीं है।

महीप—मानवी शक्ति बेकार पड़ी है, उसका उपयोग कैसे किया जाय, हमारे लिए यह भारी समस्या है। हमारे गांवों के काम करने-वाले लोगों में एक-तिहाई के लिए साल में चार महीने का काम है और तब जबकि हम कृषि का यंत्रीकरण नहीं कर पाए हैं। हमारे देश की जन-संख्या में से २० करोड़ आदमी काम करने लायक हैं, जिनमें अगर १५ करोड़ को ही उत्पादक शारीरिक काम के लिए ले लें, तो आज उनमें से मुश्किल से ५ करोड़ के लिए काम है। हमारे देश के लिए मानवी शक्ति की कठिनाई का सवाल ही नहीं है। उद्योग प्रधान देश होने पर हमारे कमकरों को मशीन का ज्ञान अधिक होना चाहिए, जिसमें वह यत्रों को चतुराई से इस्तेमाल कर सकें। हमारे देश के मजूरों में कार्यक्षमता की कमी है, किंतु इसका कारण है, उनके जीवन-तल का नीचा होना, तथा शिक्षा का अभाव।

युधिष्ठिर—मैं समझता हूँ, यदि अमेरिका की तरह इनका भी वेतन और जीवन-तल ऊँचा हो और सार्वजनिक शिक्षा फैले, तो कार्य-क्षमता की कोई शिकायत नहीं रह सकती। लोग कमकरों को भूखे मारकर चाहते हैं, कि वह बीस-तीस रुपये रोज़ कमाने वाले मजूरों का मुकाबला करें। यह केवल अपने लूटने के लिए कार्यक्षमता का बहाना ढूंढ़ने की बात है।

रामी—हमारे देश में प्राकृतिक और मानवी शक्ति की कमी नहीं है। लेकिन प्राकृतिक शक्ति तो लाखों वर्षों से पड़ी है, सभी धातु हिमालय, विंध्याचल, सतपुड़ा, सह्याद्रि और महेंद्र के गर्भ में मौजूद थे। आदमियों के हाथ भी अपेक्षाकृत कम तो नहीं थे, किंतु उनसे क्या फायदा हुआ?

महीप—रामी बहन, फायदा के लिए सबसे आवश्यक चीज है साइंस ज्ञान और टेकनिकल-ज्ञान। जिस देश के पास यह मौजूद हैं, उसे दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है, फिर वह उद्योग-प्रधान हो समृद्ध-

सबल बनके रहेगा। क्या किसी को संदेह है, कि हमारा देश साइंस के अवगत करने में कोई अयोग्यता नहीं रखता ?

भगवानदास—मैं तो समझता हूं, जिस देश ने आर्यभट्ट, वराहिमिहिर जैसे अद्भुत गणितज्ञ और ज्योतिषी पैदा किये, नागार्जुन और चरक जैसे रसायन-वेत्ता और आयुर्वेदज्ञ पैदा किये वह नये विज्ञान को अवगाहन में अक्षम रहेगा, यह मानने की बात नहीं है ?

महीप—दुनिया में सभी मानते हैं, कि भारतीय मस्तिष्क बड़ी-से-बड़ी उड़ानों में भी पीछे नहीं रह सकता। हमारे रामानुजम् को बहुत अधिक दिन जीने का मौका नहीं मिला, लेकिन उन्हें २० वीं सदी में विश्व का सबसे बड़ा गणितज्ञ माना गया। रामन् ने भौतिकशास्त्र में नोबुल-पुरस्कार प्राप्त करके दिखा दिया कि भारतीय दिमाग केवल गणित की सैद्धान्तिक उड़ान में ही बहुत ऊँचे नहीं उड़ सकता, बल्कि प्रायोगिक-विज्ञान में भी वह दुनिया का मुकाबला कर सकता है। हमारे रवीन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में भी विश्व से भारत का लोहा मनवा लिया; इसलिए आज दुनिया में कोई आदमी भारतीय मस्तिष्क को विज्ञान में अक्षम होने की बात नहीं कर सकता। लेकिन यह जरूर है, कि हमारे देश में शिक्षा जिस तरह होती रही है, उसकी उपज रामानुजम्, रामन्, जगदीशचन्द्र बोस, या मेघनाद साहा नहीं हैं, उन्होंने भारत में अंग्रेजों की बांधी लकीर को तोड़कर यह सफलता पाई। अंग्रेज चाहते थे, कि भारतीय केवल क्लर्क बने रहें।

भगवानदास—उनकी तो देश में भरमार है। बंगाल सरकार की बसों के संचालन के लिए तीन सौ बाबुओं की आवश्यकता थी, जिसके लिए तीन हजार दरखास्तें आईं।

महीप—हमारे यहाँ अब भी आँख नहीं खुल रही है, अभी भी हमारे शिक्षामंत्री संपूर्णानन्दजी संस्कृत-विश्वविद्यालय खोलके एक सफेद हाथी बांधने जा रहे हैं।

भगवानदास—महीप बाबू, मैं आपसे यहां मतभेद रखता हूँ।

आप हमारी प्राचीन विद्या को फूटी आँखों देखना नहीं चाहते। क्या संस्कृत में कोई भी काम की चीज नहीं है? क्यों उसे आप ठुकराना चाहते हैं?

महीप—भगवान भाई, आप गलत समझ रहे हैं। मैं अपने पूर्वजों के कृतित्त्व का अभिमान करता हूं। वाल्मीकि-अश्वघोष; व्यास-कालिदास, दंडी-बाण, बुद्ध-कणाद, दिङ्नाग-धर्मकीर्ति, शंकर-वाचस्पति, आर्यभट-भास्कराचार्य, चरक-नागार्जुन के लिए मैं किसीसे कम गर्व नहीं करता। मैं मानता हूँ कि छठी-सातवीं सदी तक बौद्धिक उड़ान में भारत का दुनिया में कोई सानी नहीं था, हरेक क्षेत्र में हम आगे बढ़े हुए थे। मैं यह नहीं मानता, कि संस्कृत को ठुकरा देना चाहिए। संस्कृत एक नये रूप में हमारे जीवन में भीतर तक घुसने जा रही है, केवल अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा और मातृ-भाषा के माध्यम बनने की देर हो।

भगवानदास—जीते रहो महीप!

महीप—यदि मुझे अपने देश के इतिहास, अपनी संस्कृति के विस्तार का परिज्ञान न होता, तो मैं संस्कृत के महत्व को हल्के दिल से ठुकरा सकता था। मैं उसके महत्व को समझता हूँ, लेकिन किस समय कौनसी चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है, इसे भी देखना होता है। आज हमारे पास जो कुछ रुपया है, उसे देश की संपत्ति बढ़ाने, उसे सबल करने में न लगाकर यदि सौ संस्कृत के विद्यालय और दो सौ विद्यार्थियों के अन्न-क्षेत्र लगाके खर्च कर डालें, तो क्या यह बुद्धिमानी होगी? संस्कृत-विश्वविद्यालय दस-बीस वर्ष बाद बनता, तो आसमान न टूट पड़ता।

भगवानदास—तो आप संस्कृत के विरोधी नहीं हैं न?

महीप—विरोधी! मैं तो कहता हूँ, कि हमारे लड़के-लड़कियां, शत-प्रतिशत स्कूल में पढ़ने जायँ, और उनमें अधिक-से-अधिक संस्कृत को द्वितीय भाषा के तौर पर लें। ऐसा होने पर जो हमारी वैज्ञानिक

परिभाषाएँ संस्कृत से बन रही हैं; उन्हें वह आसानी से समझ सकेंगे, जिस तरह चिकित्सा-विज्ञान के छात्रों के लिए पश्चिमी यूरोपीय देशों में लातिन का ज्ञान आवश्यक समझा जाता रहा है, क्योंकि अंग्रेजी चिकित्सा की पुस्तकों में लातिन के शब्द अधिक आते हैं।

भगवानदास—महीप बाबू, मेरा भ्रम दूर हो गया।

महीप—मेरा कहना इतना ही था, कि सूप के ब्याह में चलनी का गीत नहीं होना चाहिए। देश का उद्योगीकरण और कृषि का यंत्रीकरण, यह है हमारे सामने सबसे आवश्यक काम। हमारे यहां सभी जगह कूँए में भांग पड़ी मालूम होती है; नेहरूजी प्रायोगिक विज्ञान नहीं, परमाणु के भीतर का रहस्य निकलवाने के लिए करोड़ों रुपया लगाके भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला खुलवा रहे हैं, शुद्ध रसायन और ज्योतिष के विज्ञान के अनुसंधान में हमारे देश की प्रतिभाओं को लगाना चाहते हैं। परमाणु-विज्ञान जैसे शुद्ध विज्ञानों का अनुसंधान ऐसा है, जिसका प्रयोग हमारी तुरंत की समस्याओं के हल में कोई नहीं है। अमेरिका, इंगलैंड, रूस जैसे उद्योग-प्रधान देशों के लिए जो काम की चीज है, वह आज हमारे लिए बहुत महंगी शौकीनी-मात्र है।

भगवानदास—नेहरूजी दूसरे प्रकार के अनुसंधान को मना तो नहीं करते।

महीप—मना न मना करने का सवाल नहीं है। सवाल है, आप करते क्या हैं? हमारे कर्णधार कोई बहाना नहीं कर सकते, क्योंकि देश को किधर ले जाना है, उपयोगी शिक्षा के लिए क्या किया जाय, यह हमारे हाथ में है।

रामी—लेकिन उच्चशिक्षा के लिए कमीशन तो बैठाया गया था?

महीप—वह जले पर नमक छिड़कने से अधिक नहीं है। जो विशेषज्ञ कमीशन में हैं, वह औद्योगिक विज्ञान अथवा टेकनिकल शिक्षा के संबंध में सलाह देने के न अधिकारी हैं, न उसके लिए बुलाये गए हैं। वह हमें वही बतलायेंगे जो सौ वर्षों से अंग्रेज हमें बतलाते रहे।

हमारे विश्व-विद्यालय वैसे ही दर्शन, साहित्य, कानून, शिक्षा-विज्ञान के स्नातक और डाक्टर—सो भी अंग्रेजी के माध्यम से—पैदा करते जायंगे, जो बेकारी बढ़ाना छोड़ हमारी कोई आर्थिक समस्या हल नहीं कर सकते। कमीशन के सयानों से यही आशा रखिये, कि वह मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने जैसी आवश्यकता तथा स्वाभाविक बात को भी टाल देंगे। द्वीप-द्वीपांतर से बुलाये इन सयानों में एक भी ऐसा विशेषज्ञ नहीं है, जो हमें आज की हमारी शिक्षा-समस्याओं पर परामर्श दे सके। राष्ट्र कर्णधारों की बुद्धि जहाँ तक जाती है, उसीके अनुसार तो कमीशन बनाया जायगा। हमारे पास वह सूझ कहां है, कि सारे राष्ट्र को उन समस्याओं के हल करने पर लगायें, जो हमारे द्वार से टकरा रही हैं। विदेश में विद्यार्थी भेजे जा रहे हैं। इस समय तो केवल ऐसे विद्यार्थी भेजे जाने थे, जो उन विषयों को सीखते, जो हमारी आर्थिक उन्नति में सहायक होतीं, किंतु अभी भी भारी संख्या में हमारे विद्यार्थी साहित्य, भाषा-विज्ञान, शिक्षा-विज्ञान में डाक्टर बनने के लिए हमारे उस विनिमय के रुपये से विदेश जा रहे हैं, जो कल-मशीनों की खरीद के लिए अत्यावश्यक हैं।

भगवानदास—यह तो बड़ी बुरी बात है। इस बात को तो मैं भी समझ सकता हूं, यद्यपि मैंने बहुत-सा समय संस्कृत के ग्रन्थों के खोजने में लगाया।

महीप—पहले तो विद्यार्थी बाहर भेजने की जगह सस्ता यह है, कि शिक्षक यहां बुला लिये जायं। और जो विद्यार्थी भेजने ही हों, तो वह सिर्फ साइंस और टेकनालोजी के हों और उनमें भी वही लिये जायं, जो अपने विषय को काफी जानते हों और विदेश में केवल विशेषज्ञता और अनुभव प्राप्त करने के लिए जा रहे हों। बाहर भेजे जानेवाले विद्यार्थियों के बारे में जो बेसमझी बरती जा रही है, वही बात अपने यहां के इंजीनियरी कालेजों में हो रही है। बनारस, रुड़की या यादवपुर के इंजीनियरी कालेजों को देखिए, जहां हमारे सारे आर्थिक ढांचे के

इंजीनियर तैयार किये जा रहे हैं। वहाँ तीन से पांच साल में अपने विषय में वह अच्छी योग्यता प्राप्त करके निकलेंगे। अभी भी इन कालेजों में जितने विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा सकती थी, नहीं दी जा रही है। इन कालेजों में हम विद्यार्थियों को तीन शिफ्ट (बारी) में पढ़ा सकते हैं—छ बजे से बारह बजे तक प्रथम, बारह बजे से छ बजे शाम तक द्वितीय, और छ बजे से आधी रात तक तीसरी, इस प्रकार उतने ही यंत्रसाधनों और उन्हीं प्रयोगशालाओं के द्वारा हम तिगुने विद्यार्थियों को पढ़ा सकते हैं, अध्यापकों की तो कमी है ही नहीं। लेकिन हमारी मौजूदा शिक्षण-संस्थाओं के सामने ऐसा उपयोग तब न हो, जब कि कोई योजना हो।

खोजीराम—और मैं कहूँ महीप बाबू, हमारे सैकड़ों तरुण प्रायोगिक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके लौटे हैं, और उनके लिए कोई काम नहीं है।

महीप—मैं जानता हूँ, रुड़की में मुझे एक विद्यार्थी ने बतलाया था कि हमारे सामने भी प्रश्न है—शिक्षा समाप्त करके काम क्या करेंगे?

रामी—दामोदर, भखरा, कोसी, महानदी, रेहंद की इतनी बड़ी-बड़ी योजनाएँ जो हैं, फिर बेकार रहने का क्या सवाल है?

महीप—उक्त विद्यार्थी की बात से ही मालूम हो जाता है कि वह कागजी योजनाएं अनिश्चित काल की हैं, नहीं तो इंजीनियरों को बेकारी का डर क्यों? हमारे कर्णधार बस अपने सरकारी विभागों में अधिक-से-अधिक सचिवों, उपसचिवों तथा दूसरे अफसरों को भरने में लगे हैं, उन पर पानी की भाँति रुपये बहा रहे हैं, जो कि सारा व्यय अर्थशास्त्र के अनुसार अनुत्पादक बंध्या व्यय है।

युधिष्ठिर—यह तो स्पष्ट हो गया कि हमारे पास देश की आर्थिक उन्नति के लिए सभी साधन मौजूद हैं। यदि हम उनका अच्छी तरह से इस्तेमाल करें, तो अपने देश को बिना बाहर की भारी सहायता के भी उद्योग-प्रधान बना सकते हैं। इसके लिए सोवियत् रूस का उदा-

हरण हमारे सामने है। किसीने उसे फूटी कौड़ी भी कर्ज नहीं दी, बल्कि सभी बाधक होते रहे। किन्तु रूस के पास दृढ़ संकल्प था, प्राकृतिक संपत्ति थी, लोगों के भीतर प्रतिभा थी, काम करने वाले हाथ थे। अपना पेट काटकर अन्न, काठ या पेट्रोल से बदलके कुछ जरूरी मशीनें बाहर से मंगाईं, फिर सभी चीजें अपने घर में बनाने लगे। उन्होंने परमाणु-बम तक बनाके रख दिया। यदि बाहर की आशा पर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते, तो आज कहीं के न होते। उन्होंने बहुत कम विद्यार्थी बाहर भेजे। बड़ी-बड़ी तनख्वाह देकर विशेषज्ञ बुलाये; उनसे, सभी बातें सीखीं। हमें भी हजारों जर्मन-जापानी विशेषज्ञ मिल सकते हैं; हम भी वही काम कर सकते हैं, जो रूस ने किया। १९२९ ई० से जर्मनी के आक्रमण तक केवल १२ ही साल रूस को काम करने के लिए मिले थे, इसी बीच में वह अपने पैरों पर खड़ा हो गया। वह अपने बल पर उद्योग-प्रधान देश बन गया। हम भी वैसा कर सकते हैं।

सातवां अध्याय

वैयक्तिक पूंजी की सीमा हो

भगवानदास—कल हम लोगों ने बाहर का मुंह न देखके अपने बाहुबल से आगे बढ़ने की बात की थी। मुझे वह बहुत पसंद आई। पराये हाथ की चीज पराये के वश में है। क्या ठिकाना, दिलासा देते-ही-देते काम बिगड़ जाय। हमने एक चीज की तरफ ध्यान नहीं दिया। हमारे देश में अपने आदमियों के पास भी कम पूंजी नहीं है। मैं जानता हूँ, लड़ाई के दिनों में एक सेठ ने कितने ही करोड़ रुपये कमाये। यदि बही-खाते में लिखते, तो रुपये में दो पैसा चार पैसा मिलता, बाकी अंग्रेज सरकार ले जाती। साथ ही इतना रुपया बंक में रखके छिपाया नहीं जा सकता था, इसलिए उन्होंने चाँदी और सोना खूब खरीदा। राजस्थान की एक रियासत में उनका घर है, वहाँ उन्होंने घर के नीचे चाँदी को सिल्लियों को बिछाकर सीमेंट कर दिया।

महीप—वह बहुत होशियार था। कानपुर के एक सेठ ने तो लड़ाई के दिनों में लाखों मन कोयला नीचे बिछाकर ऊपर से फुलवारी लगवा दी थी; भंडाफोड़ होने पर बड़ी मुश्किल से रक्षा हुई। "सोना बहा जाय और कोयले पर छाप" इसीको कहते हैं।

रामी—महीप, तुम बीच-बीच में बात को बहका देना चाहते हो। भगवान भाई को कहने दो। यदि हमारे सेठों ने इस तरह चाँदी-सोना ले जाके दो-चार अरब जमा कर दिया है, तो इस वक्त वह हमारे काम आयगा; क्योंकि अब तो रियासत-बेरियासत का भेद नहीं रह गया है।

भगवानदास—लोगों को डर लगा हुआ है कि कहीं धन निकालने पर इन्कम-टैक्स का सवाल न उठाया जाय।

खोजीराम—उसकी चिन्ता मत करो भगवान भाई, इन्कम टैक्स पर हमारी सरकार जोर देने नहीं जा रही है।

महीप—सरकार को घोषित कर देना चाहिए, कि इन्कम टैक्स भी धर्मादा का टैक्स है, "जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला।" आज तक क्या इन्कम-टैक्स की गड़बड़ी के कारण किसी करोड़पति को सजा हुई है? और अब तो सरकार ने पूरा ध्यान रखा है, कि पूंजीवाले संतुष्ट और निर्भय हो जायं और पूंजी भले घर की नवोढ़ा की तरह सिकुड़ी-सिमटी न रहे।

भगवानदास—मुझे और कहना नहीं है, इतना ही कहना था, कि देश के आत्मावलम्बी होने में जो इतना धन बचाके रखा गया है, जिसके लिए चाहे कुछ ईमानदारी को छोड़ना ही पड़ा हो—उसे ईमानदारी करके हाथ से दे देना कौनसी बुद्धिमानी थी? ऐसा करना चाहिए, जिसमें तहखानों और फर्शों के नीचे बंद यह सारी पूँजी आकर कल-कारखानों के रूप में खड़ी हो जाय और देश की उपज बढ़े। ऐसा कोई भी कानून बनाना हानिकारक होगा, जिसमें पूँजी सकुचकर अन्तर्धान हो जाय।

महीप—हाँ, पूँजी को सकुचने नहीं देना चाहिए, और जिसमें पूँजी का कलेवर जैसे भी बढ़ता जाय, उसमें भी रुकावट नहीं डालनी चाहिए, क्योंकि अन्त में पूँजी पर ही उद्योगीकरण निर्भर करता है।

भगवानदास—यही मेरी भी राय है। मेरे भाईबंद बराबर डरते रहते हैं। कहते हैं, पूँजी तो जमा कर ली, लगाना भी चाहते हैं, लेकिन कहीं सरकार पूछ बैठे—कहां से पैसा मिला, तो सिर पर आफत आ जायगी।

महीप—आफत आने का डर नहीं है, सबके पास दो-दो प्रकार के बही-खाते हैं, एक इन्कमटैक्स को दिखाने के लिए और दूसरा अपने

धन को संभालने के लिए। चीजों के भी दो भाव हैं, बहुत मजबूरी हुई, तभी असली दाम पर चीजें दी जाती हैं, नहीं तो उसका ड्योढ़ा-दूना दाम लेकर कागज पर उतना ही चढ़ाया जाता है, जितना कानून से अनुमोदित है। जिस दिन कपड़े पर से कन्ट्रोल उठा था, उस समय तो मौज हो गई थी, तीन मास में सेठों ने एक अरब की पूंजी जमा कर ली। आपका कहना है—चाहे किसी तरह से भी जमा की गई हो, पूंजी का रूप लेने के बाद वह गंगा की तरह पवित्र, यमुना की भाँति निर्मल है। पूंजी जमा करने के लिए तब तो और प्रोत्साहन देना चाहिए, और जो दिये बिना भी हो रहा है।

भगवानदास—हम लोग समझाने की कोशिश कर रहे हैं, कि बहुत लालच करके अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी नहीं मारनी चाहिए। ज्यादा लालच करने पर, लाभ बढ़ाने पर देश में चीजों का दाम बेहद बढ़ जायगा, रुपया का मोल बिलकुल गिर जायगा। फिर जो हाहाकार देश में मचेगा, उससे त्राण नहीं मिल सकेगा। लेकिन जानते हैं, अच्छी बातों का असर देर में होता है, बुरी बातों का तुरन्त।

खोजीराम—भगवान भाई, तुम महात्मा मुखपात्री को ले आने वाले थे, वैसे महात्माओं के उपदेश का असर जरूर होगा। हमारे सेठ लोग बड़े धर्मभीरु होते हैं।

भगवानदास—मैंने आप लोगों से आज्ञा ले ली, आज मैं नहीं जा सका। देख रहे हैं, इस पानी-बूंदी के दिन में बाहर जाने का मन भी नहीं करता, और महात्मा नगवा के पास भुइंधरे में रहते हैं।

युधिष्ठिर—हमने महात्मा जी को लाने की अनुमति दे दी है, उनकी मर्जी जिस दिन हो आयें, किन्तु हम यह नहीं मानते कि चोर-बाजार के सेठ किसी महात्मा के उपदेश से करोड़ों के लाभ पर लात मारेंगे। करोड़ के लाभ में दो-चार लाख महात्मा जी के वचनानुसार वह दान-पुण्य में खर्च कर सकते हैं, यदि महात्मा करपात्री जी की तरह कोई दिव्य पुरुष विमान से आकर उतरे, तो उसको हवाई अड्डे पर

जाकर मालों से लाद सकते हैं, घर में आरती उतार सकते हैं, किन्तु यदि महात्मा चोरबाजारी और घूस-रिश्वत के विरुद्ध कहने लगे, तो कभी नहीं पटरी जमेगी।

भगवानदास—गोस्वामीजी ने ठीक कहा है—"जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।" जान पड़ता है, उस समय भी चोरबाजारी थी।

महीप—हां, गोस्वामीजी ने बड़ी पते की बात कही है। हमारे चोरबाजारी सेठों, दोहरा हिसाब रखने वाले करोड़पतियों और घूस के अखाड़े के मल्लों पर तो यह चौपाई पूरी तौर से घटती है।

भगवानदास—अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं महीप बाबू, यह नहीं समझना चाहिए कि पूँजीपतियों के दिल में दया-मया नहीं है।

युधिष्ठिर—मैं आपसे इस बारे में बिलकुल सहमत हूँ। मैं समझता हूं, व्यक्ति को सभी चीजों का दोषी ठहराना रोग के असली निदान को न जानने की कोशिश करना-सा है।

महीप—मैं भी दया-मया से इन्कार नहीं करता। आखिर हमारे देश के पूंजीपतियों में तो बड़ी संख्या ऐसों की है, जिन्हें मांस-मछली का नाम सुन कर भी मिचली आने लगती है, जो अपने हाथ से एक चींटी को भी नहीं मार सकते, फिर दया-मया पर संदेह कैसे उठ सकता है? लेकिन भगवान भाई, आपके राजस्थान ही की कहावत है ना—

जाणण हारा जाणियां वणियां तेरी वाण।
विण छाणे लोई पिवै, पाणी पीवै छाण॥

युधिष्ठिर—यह भी एकांगी बात है। यदि बरसते पानी में एक आदमी जाय, तो वह भीगे बिना नहीं रह सकता। काजल की कोठरी में जाकर बिना कालिख लगाये कोई लौट नहीं सकता। मैं समझता हूं, पूँजीपतियों, व्यापारियों में सभी गये-गुजरे नहीं हैं, लेकिन मजबूरी है। आजकल के व्यापार में जानते हैं हर जगह रुपये-पर-रुपया नफा न हो तो उसे करने के लिए कोई तैयार नहीं हो सकता। रुपये पर दो पैसा कमाके उसके सामने वही चिड़िया की समस्या

आयगी। "क्या खाऊँ क्या पिऊँ, क्या ले परदेस जाऊँ।" रुपये के माल पर चार आना तो एक ही जगह की रिश्वत में चला जाता है, फिर दो आने के नफे को लेकर आजकल कैसे कोई रोजगार कर सकता है?

भगवानदास—युधिष्ठिर भाई का कहना ठीक है। आज यदि चोरबाजारी के दर पर अपनी चीज नहीं बेचते हैं, तो सभी जगहों पर नफे में हिस्सेदार बैठे हैं, वह रास्ते में हर जगह रुकावट डालेंगे, बेचने के लिए चीज हाथ नहीं आयगी, उसे चोरबाजार वाला ले जायगा। फिर तो बरस-दो-बरस में टाट उलटना ही पड़ेगा। आज के युग में ईमानदारी के लिए क्या-क्या बीत रही है, इसे कहना मुश्किल है। मैं उनके भीतर रहता हूँ, बल्कि उन्हीं में से एक हूं। मैंने तो अपने लिए नियम रखा है—"थोड़ा खाना बनारस का रहना।"

रामी—मैंने एक और कहावत सुनी है—

चना चबेना गंगजल, जो पुरवै करतार।
काशी कभी न छोड़िये, विश्वनाथ दरबार॥

भगवानदास—सो तो मैंने अपने लिए निश्चय कर लिया है—कुछ भी हो, जो नियम बना लिया है, उस पर दृढ़ रहूँगा। कई हित-मित्रों की खरी-खोटी सुननी पड़ती है। कहते हैं—तुम दिवालिया होकर रहोगे। दिवालिया होना होगा तो बाबा मुखपात्री की शरण मौजूद है। वह भी मुझसे सहमत हैं, और कहते हैं—बच्चा, कुछ भी हो जाय, लेकिन सत से न डिगना। मेरे पूर्वजों ने कैसे पांच पीढ़ी में धन कमाया, यह मालूम होना मुश्किल है, किन्तु वह दूध के धुले नहीं थे, मुझे यह मानने में उजुर नहीं है।

युधिष्ठिर—भगवान भाई, आपकी बातें छिपी नहीं हैं। हम जानते हैं कि आप सत्य पर रहना चाहते हैं, और सत्य के खोजी हैं। यदि आप कहीं पर बहक जाते हैं, तो इसलिए कि आप जंगल में भूल जाते हैं, रास्ता नहीं पाते। मैं यह भी कहूंगा कि आपकी तरह

के और भी कितने ही पूँजीपति हो सकते हैं, जो सत्य या जो रूप ईमानदारी से समझते हैं, उससे डिगने के लिए तैयार नहीं हैं। कितने ही ऐसे भी हैं, जो अपनी इच्छा से मार्ग-भ्रष्ट नहीं हुए, बल्कि उन्होंने कोई दूसरा रास्ता नहीं देखा। वह व्यापार के भीतर रहना चाहते हैं, किन्तु सभी आदमी तो मुखपात्री या उनके शिष्य नहीं बन सकते? वस्तुतः व्यक्तियों को दोष देना अनुचित है। व्यक्ति समाज से ऊपर उठकर यदि अच्छा करता है, तो वह महापुरुष है, और समाज से नीचे गिर कर बुरा करता है, तो वह कुपुरुष है। किन्तु समाज के विरोध से जो असमर्थ हो डूब रहा है, उसे सभी बातों के लिए दोषी ठहराना अच्छा नहीं है।

महीप—मैं भी इसे मानता हूँ, यद्यपि कभी-कभी व्यक्ति के वास्तविक दोष को अधिक बढ़ा-चढ़ाके कह डालता हूँ। असल में व्यक्ति दोषी नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर जो जायगा, या डाल दिया गया है, उसके लिए वैसा होना ही पड़ता है। इसीलिए व्यक्ति के हृदय-परिवर्तन से सामाजिक क्रान्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। एक, दो या दस-बीस व्यक्ति भी अच्छे निकल आ सकते हैं, और सम्भव है, उनमें कुछ ऐसे भी हों, जो अपने सर्वस्व को किसी आदर्श के लिए न्योछावर कर दें, किन्तु उससे क्या उत्पीड़न और शोषण रुक सकता है? हमें व्यवस्था बदलनी है, उसके बाद हृदय स्वयं ही बदल जायगा।

युधिष्ठिर—हृदय बदलने के लिए भी प्रयत्न करना बुरा नहीं है, आखिर एक आदमी के अच्छे बनने का उसके आसपास पर कुछ तो असर होता है। हाँ, यह जरूर है कि महामारी में सारे नगर के गली-कूचे को कीटाणु-रहित करना पड़ता है। लेकिन हम फिर इधर-उधर बहक रहे हैं। वैयक्तिक पूँजी के द्वारा उद्योगीकरण में स्वावलम्बी होने की बात कर रहे थे।

भगवानदास—मैं मानता हूँ कि पूंजी के हरेक रुपये नहीं पैसे में

भी खून लगा रहता है, लेकिन जब हमें उसे अपने देश की संपत्ति को बढ़ाने और उसे सबल बनाने में लगाना है, तो यह देखना होगा कि कैसे अधिक-से-अधिक पूंजी व्यवसाय में लगाई जा सकती है। पूंजी के भड़कने के जितने भी कारण हो सकते हैं, भरसक उनको हटाने की कोशिश करनी चाहिए। हमारी सरकार ने विश्वास दिलाया है, कि बिना क्षतिपूर्ति के कोई कल-कारखाना राष्ट्रीय नहीं बनाया जायगा। इससे पूंजी को साहस होगा, कि वह कल-कारखानों में लगे। अभी हमारा देश समाजवादी देश नहीं है, जब हो जायगा, तब मैं समझता हूँ, बहुत-से अपने ज्ञान और अनुभव को समाजवादी निर्माण में लगा देंगे। लेकिन जब तक वह नहीं है, तब तक पूंजी को खामखा भड़काने की क्या आवश्यकता? अभी सरकार ने यह मानने के लिए पूंजीपतियों को तैयार करना चाहा, कि कारखानों में जो लाभ हो, उसमें मजूरों को भी भागीदार बनाना चाहिए। मैं समझता हूं, यह समय से पहले किया जा रहा है; समय तब आयगा, जब देश में समाजवाद की स्थापना हो जायगी। अभी तो मानना पड़ेगा कि पूंजी अन्तिम निर्णायक है। उसीके लिए आज हम अमेरिका की खुशामद कर रहे हैं, उसीके लिए तो बाहर से लाकर कल-कारखाना खोलने वालों के लिए हर तरह की रियायत कर रहे हैं।

महीप—अर्थात् जो खून पसीने को एक कर जोखम उठाके माल पैदा कर रहे हैं, वह केवल वेतनिक दास रहें? हम मानते हैं कि मजूर कारखाने का दास नहीं है, उसीके रक्त-मांस को गलाकर कारखाना चल रहा है, धन उत्पादित हो रहा है। अब अधिक दिनों तक पूंजीपति मजूरों की इस तरह अवहेलना नहीं कर सकते।

खोर्जाराम—हम अभी सशस्त्र क्रान्ति की बात नहीं कर रहे हैं, और न उसके बारे में कहना चाहते हैं, क्योंकि जब वह अनिवार्य हो जाती है, तो अपने आप आ जाती है, उसके संचालन के तरीके दूसरी जगह सीखे जाते हैं। हमें अभी यह समझके कहना है, कि हमारे देश

में पूंजीपति भी हैं, मजूर भी हैं, यन्त्र-विशेषज्ञ भी हैं, सबको कारखाने का भागीदार मानने पर ही काम ठीक से चल सकता है।

भगवानदास—बात तो बिलकुल युक्तियुक्त है, किन्तु औंधी खोपड़ियों को समझाये कौन ? वह कहते हैं, यदि हमें अपने काम में स्वतन्त्रता नहीं देते, तो हम पूंजी को अन्तर्धान कर देंगे। आप सब से छिपाने की आवश्यकता क्या, हममें बहुत-से ऐसे मिलेंगे, जो कुमनुष्य नहीं अपमनुष्य हैं। चाहे वह फलाहारी हों या आमिषाहारी; लेकिन स्वार्थ के लिए वह सब कुछ कर सकते हैं। जिन्होंने जीवन-भर सट्टेबाजी को, रिश्वत और चोरबाजारी को उसी तरह स्वीकार किया जिस तरह मछली पानी को, उनसे आप भले की आशा नहीं रख सकते। वह अपने को बड़ा समझदार समझते हैं, क्योंकि सट्टे में दाव लग गया, और फिर व्यापार भी सट्टे जैसे नफे के साथ चल निकला। पैसे देकर विशेषज्ञ खरीदे जा सकते हैं। कारखाना वह चला रहे हैं, सेठजी केवल लाभ-हानि का बही-खाता देखते हैं, किन्तु उन्हें सफल उद्योगपति कहा जाता है। ये लोग हैं, जो सारे अपने वर्ग को ले डूबेंगे, ये ह जो आज सौ सैकड़ा लाभ उठाते है, तो कल डेढ़सौ सैकड़े बिना सन्तोष नहीं कर सकते।

महीप—भगवान भाई, आप यह अपने भीतरी अनुभव से कह रहे हैं। आप भी उनके आचरण से असन्तुष्ट हैं और समझते हैं, कि यही लोग महान् अनिष्ट के लाने वाले होंगे। लेकिन वह इतने अंधे हैं कि चार कदम भी आगे नहीं देख सकते हैं।

भगवानदास—व्यक्ति नहीं व्यवस्था मानव के उत्थान-पतन का कारण होती है, मैं इस सत्य को अनुभव कर रहा हूं। उस व्यवस्था में पड़ा आदमी दुर्योधन के शब्दों में कह उठता है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि॥

युधिष्ठिर—चिरस्थापित व्यवस्था के सामने मानव निर्बल है, किंतु

साथ ही उस व्यवस्था के तोड़ने की भी उसमें शक्ति है। कभी-कभी मानव को बहुत ऊपर उठा देखा जाता है।

महीप—आप कह रहे हैं, वैयक्तिक पूंजी की देश के उद्योगीकरण में सहायता लेनी चाहिए। बहुत अच्छा, लेकिन हम क्या देखते हैं, हमारी सरकार ने कितने ही नये कपड़े के कारखानों के बनाने का निश्चय किया, पूंजीपतियों को निमन्त्रित किया, कि वह कारखाने खोलें, सरकार उन्हें कल-मशीन मंगाने के लिए विदेशी-विनिमय देगी। एक बड़े उद्योगपति ने मिल खोलने का जिम्मा लिया। वह डेढ़ वर्ष इधर-उधर करते रहे, फिर एक दिन सरकार को लिख दिया, कि हमसे यह काम नहीं हो सकता, कल-मशीनों का दाम बहुत बढ़ गया है। वैयक्तिक पूंजी कभी नहीं चाहेगी, कि देश को जितने कपड़े की आवश्यकता है, उतने कपड़ों को बनाने लायक मिलें बन जायं। मांग अधिक और चीज कम होती है, तभी चीज का दाम बढ़ाया जा सकता है, और लाभ अधिक होता है, यह बिलकुल स्पष्ट-सी बात है। इसीलिए पूंजीपति के भरोसे यदि देश का उद्योगीकरण करना हुआ, तो यह कभी नहीं होने का। पूंजीपति अवश्य उपज को इतना कम रखेंगे, जिसमें मांग अधिक होने से दाम बढ़े, और चीजें छिपाके चोरबाजारी का अवसर भी मिले।

रामी—जहां लाभ-शुभ की बात है, वहां व्यक्ति कुछ नहीं रह जाता, वह लाभ की बाढ़ में बह जाता है। निजी पूंजी में निजी नफा सब कुछ है, देश की आवश्यकताओं की ओर वहां ध्यान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वैयक्तिक पूंजी के व्यवसाय का लक्ष्य देश के सभी व्यक्तियों को सुखी बनाना नहीं है; उसे सबसे पहले देखना है, अपना लाभ और पूंजी की रक्षा।

महीप—यह तो साधारण कारखानों की बात हुई। सरकार बड़े-बड़े लोहे के कारखाने और दूसरे कितने ही धंधों को अपनी ओर से खोलने की बात कर रही है। मैं समझता हूँ, वैयक्तिक पूंजी के हाथ

में जब तक उस वस्तु के कितने ही कारखाने हैं, तब तक सरकारी कारखाने चलने नहीं पायंगे, सरकारी डाक नहीं चल पाती, यदि निजी डाक भी चलाई जाती। देखते नहीं कितने ही आई. सी. एस. समय से पहले पेंशन लेकर पूंजीपतियों के नौकर बन रहे हैं। जब वहाँ दो हजार-तीन हजार की जगह दस हजार मिलनेवाला है, ऊपर से लाभ में भी कुछ भाग, तो क्यों कोई सरकारी कुर्सी का मोह करेगा ? यदि निजी पूंजीपतियों के हाथ में लोहे के कारखाने रहे और सरकार ने अपना बड़ा कारखाना खोला, तो कोई योग्य विशेषज्ञ वहां रहने नहीं पायगा। पूंजीपति चार गुना-पांच गुना वेतन देकर उसे अपनी तरफ खींच लेंगे। वह इस बात की कोशिश करेंगे कि सरकारी कारखाना घाटे पर चलता रहे, ताकि उनके कारखाने को राष्ट्रीय बनाने का ख्याल छोड़ दिया जाय, बल्कि सरकारी कारखाने को भी आगे पूंजीपतियों के हाथ में सौंप दिया जाय।

भगवानदास—तो आप समझते हैं कि निजी पूंजी के हाथ में कोई उद्योग ही नहीं रहने पाये ?

महीप—मैं तो यही चाहता हूँ कि कल ही देश में समाजवाद स्थापित हो जाय, और सभी उत्पादन के साधन व्यक्ति नहीं राष्ट्र के हाथ में चले जायं; लेकिन जब तक ऐसा नहीं हो रहा है, तब तक के लिए तो निजी पूंजी माननी ही पड़ेगी, और उसके लिए अवसर भी बना रहेगा। यदि कुछ राष्ट्रीय और कुछ वैयक्तिक कारखाने रखने ही हों, तो कम-से-कम ऐसे कारखानों को ही राष्ट्रीय करना चाहिए जिसकी उपजवाले सारे कारखाने निजी पूंजी के हाथ में न हों। पीछे का कारखाना समाजवादी और पहले का पूंजीवादी होगा, तो इसका परिणाम बुरा होगा।

भगवानदास—अर्थात् एक चीज का कारखाना राष्ट्रीय बनाया जाय, तो उस चीज के सभी कारखानों को वैसा किया जाय, नहीं तो सभी

औद्योगिक अशांति

भगवानदास जी आज की गोष्ठी में आते समय बहुत उत्तेजित-से मालूम हो रहे थे, और पंचों के बैठने के साथ ही उन्होंने कहना शुरू किया—यदि हमारे देश में समाजवाद चालू हो जाता, तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं थी।

रामी—आपत्ति तो भगवान भाई, बेवकूफ करते हैं। जो चीज देश के अधिकांश लोगों की इच्छा के अनुसार स्वीकार कर ली गई, यदि उसका विरोध कुछ आदमी करते हैं या उसके लिए हाय-तोबा मचाते हैं, तो यह फजूल की बात है; आखिर सत्तर और अस्सी प्रतिशत लोगों का लाभ जिससे है और उन सब लोगों की इच्छा के अनुसार जो व्यवस्था स्वीकार की गई है, उसके बारे में समझ लेना चाहिए कि सबके भले में अपना भी भला।

महीप—यही तो लोग समझ नहीं पाते। इसीलिए कहना पड़ता है, जिसे खून का चसका लग गया, वह उसे छोड़ता नहीं।

युधिष्ठिर—ऐसे शब्दों के प्रयोग से महीप, आखिर क्या लाभ है? इससे सताये हुए लोगों को लाभ नहीं, और ख्वामखाह में कितनों का दिल दुखता है। यह तुम भी जानते हो, कि बहुत से लोग स्वभावतः भले हैं; लेकिन उसमें पैदा हो जाने के कारण अपने समाज या वर्ग से ऊपर नहीं उठ सकते।

महीप—मैं आपसे सहमत हूं और यह भी मानता हूं कि जवानी

का खून कभी-कभी नाहक गर्म हो उठता है। लेकिन यह तो युधिष्ठिर बाबू, देख ही रहे हैं कि जो लोग समाजवाद के अपने देश में स्थापित हो जाने पर गड़बड़ी पैदा करते हैं, वह लाभ में नहीं रहते।

युधिष्ठिर—बहुत अधिक संख्या लाभ में नहीं रहती। रूसी सामन्तों और महापूंजीपतियों में जिनका विदेशी बैंकों में रुपया रहा, दूसरे देशों में संपत्ति रही अथवा किसी तरह बहुमूल्य वस्तुओं के रूप में काफी धन निकाल ले जा सके, वही विदेश में जाकर आराम से रहे, और उनकी संख्या बहुत कम थी। पंचानवे प्रतिशत बाहर जाकर कष्ट में रहे, जिनमें पच्चीस-तीस प्रतिशत की अवस्था तो अत्यन्त दयनीय देखी गई।

भगवानदास—वह कौनसी ?

युधिष्ठिर—रूस की समाजवादी क्रांति का अन्तिम विरोध करने में असफल हो कितने ही पास-पड़ोस के देशों में भाग गए। कई हजार की संख्या में तो चीन के हरबिन, मुकदन, शंघाई आदि नगरों में चले गए। इनकी दशा कितनी बुरी थी, कहने की आवश्यकता नहीं। हज़ारों स्त्रियों को जीवन बनाये रखने के लिए शरीर तक बेचना पड़ा। इन रूसी झगड़ों ने कम-से-कम चीनवालों के दिल में तो यूरोपियनों की रत्ती-भर भी प्रतिष्ठा नहीं रहने दी। और अब उनकी और भी हालत बुरी है, उन्हींकी क्या पूर्वी यूरोप के भागे हुओं की अवस्था भी रूसियों जैसी है।

भगवानदास—सोवियत् क्रांति के बत्तीस साल बाद भी क्या वह किसी ठौर-ठिकाने नहीं लगे ?

युधिष्ठिर—ठौर-ठिकाने की बात पूछ रहे हो और दूसरी पीढ़ी के तैयार हो जाने पर ? द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब पूर्वी देशों में भी साम्यवाद की स्थापना हो गई, तो जो रूसी क्रांति के भगोड़े इस बीच में अपने मनोभाव को नहीं बदल सके, उन्हें वहां से भी निकलकर भागना पड़ा। चीन के शंघाई आदि नगरों के चीनी साम्यवादियों के हाथ

में जाने के बाद फिर वह अपना डंडा-कुंडा लेके भाग रहे हैं। उनमें से भारत भी पहुँचे हैं, किन्तु बहुत कम; कितने ही फिलीपीन, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया को भाग रहे हैं।

रामी—वह कहां तक भागते रहेंगे? समाजवाद की आग तो सभी जगह लगी हुई है। ऊपर से जिनके पास राजसत्ता है, वह लोगों की भूख और कपड़े की समस्या हल नहीं करना चाहते, या इच्छा रहने पर भी दूसरों के स्वार्थ के फेर में इतने पड़े हुए हैं, कि कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं।

महीर—मैं तो कहूंगा, वह बहुत कर पा रहे हैं। वह अपनी अकर्मण्यता से समाजवाद का आवाहन कर रहे हैं। निश्चय ही अगले दस वर्षों तक यही रफ्तार बढ़ती रही, तो भारत में समाजवाद अगत्या स्थापित हो जायगा। मैं तो कहूंगा कि उसका श्रेय समाजवादियों या साम्यवादियों को अधिक नहीं मिलना चाहिए।

खोजीराम—चीन की तरह। तब तो वहां भी समाजवाद की स्थापना के लिए माउ-से-तुङ्, चू-ते, चौ-अन्-लाई तथा उनके साथियों को नहीं देकर चाङ्कैशक को देना होगा।

महोप—तो क्या आप चाङ् को कुछ भी श्रेय देना नहीं चाहते? अमेरिका ने ढाई अरब डालर जो चीन को दिया, उसमें एक-आध अरब रखके सारे हथियार आदि चीनी कम्युनिस्टों के पास पहुंचे। क्या चाङ् ने सहायता न की होती तो अमेरिका के बने नवीनतम और अत्यन्त शक्तिशाली हथियार सात जनम में भी कम्युनिस्टों को नसीब होते?

युधिष्ठिर—हम कहां-से-कहां भाग रहे हैं। भगवानदासजी कोई बात कहना चाहते थे, उनकी भी नहीं बनने पाई। आप लोग उसे कहां-से-कहां उठा ले जा रहे हैं।

खोजीराम—मैं तो समझता हूं युधिष्ठिर भाई, घी का लड्डू टेढ़ा भी भला।

युधिष्ठिर—हम मानते हैं कि हमारी गोष्ठी को पूरी तौर से एक ही

बात में नियंत्रित नहीं रहना है। हम कुछ इधर-उधर भी चले जाते हैं, तो भी वह बेकार नहीं होता; तब भी हम किसी-न-किसी समस्या के बारे में ही विचार करते हैं। भगवान भाई कहीं अपनी बात को कहना ही न भूल जायं। भागने वालों की बात तो साफ ही है, कि प्रथम विश्व युद्ध में दुनिया के एक छठे भाग पर समाजवाद की स्थापना हुई, द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होते-होते पूर्वी यूरोप समाजवाद के झंडे के नीचे चला गया। और अब चीन जैसा विशाल देश—जो जन-संख्या में विश्व का सबसे बड़ा देश है—समाजवाद को स्वीकार कर चुका। कहां तक लोग विरोध करते हुए भागते चलेंगे! यूरोप, एसिया के जो भाग अभी पूंजीवाद के फेर में पड़े हैं, उनकी भी हालत अच्छी नहीं मालूम होती जान पड़ती। तेल और बत्ती समाप्त-से हुए; दीपक पर हवा के थपेड़े लग रहे हैं। आखिर भगोड़ों को कहां जाकर शरण मिलेगी ? दुनिया की भूमि नपी-तुली है, समाजवाद के फैलने का वेग भी १९१७ से १९४९ के बत्तीस सालों की प्रगति से नापा जा सकता है। विश्व की जन-संख्या का तो एक-तिहाई से अधिक भाग समाजवाद का अनुयायी हो गया। आखिर भगोड़े प्रशान्त महासागर में जाकर डूबेंगे या अटलांटिक में ? मुझे तो हाल के एक तिब्बती भद्र पुरुष की बात बड़ी अच्छी लगी किंतु मैं भगवान भाई की बात में विक्षेप नहीं करना चाहता।

भगवानदास—उसकी परवाह मत करिये युधिष्ठिर भाई, मैं अपनी बात पूछ के रहूंगा, लेकिन तिब्बत के भद्र पुरुष की बात जरूर कहें।

युधिष्ठिर—चीन में साम्यवादियों की विजय-पर-विजय देख के तिब्बत के हर्त्ता-कर्त्ता घबड़ा गए। उन्होंने एकान्तवास छोड़ा और साम्यवाद से त्राण पाने के लिए आकाश-पाताल सबका चक्कर काटा, लेकिन ढाई अरब की मार खाये अमेरिका को सुध-बुध कहां थी और किस आशा पर चाङ् की असफलता के बाद वह तिब्बती घोड़े-टट्टू पर घुड़-दौड़ में जीतने की आशा रखे। इंगलैंड तो स्वयं ही भिखारी है, वह

क्या मदद देगा। लेकिन जहां भी आशा थी, तिब्बत का शिष्टमंडल सब जगह पहुँचा। लेकिन मीठी बातों के अतिरिक्त कोई चीज हाथ न आई। नानकिङ् के पतन के बाद तो और भी घबड़ाहट हो उठी। एकाध धनियों ने भारत में अपने लिए ठौर-ठिकाना बनाना भी शुरू कर दिया। उक्त भद्रपुरुष से जब ठिकाना पूछा गया, तो उन्होंने कहा—क्रांति के कारण देश छोड़कर भागे अधिकांश लोगों की अवस्था देखकर तो यही अच्छा मालूम होता है, कि अपने ही देश में बने रहें।

महीप—अर्थात् देश के भीतर रहकर पासा पलटने की कोशिश करनी चाहिए।

युधिष्ठिर—वह भद्रपुरुष पासा पलटने की आशा नहीं करते थे। वह कह रहे थे—यदि साम्यवादी हमें आकर मार डालेंगे, तब भी कोई बात नहीं, कम-से-कम हम उस दुर्गति से तो बच जायंगे जो भगोड़ों को उठानी पड़ती है। और यदि हमसे शिक्षित होने के कारण कोई काम लेना चाहेंगे, तो हम ईमानदारी से काम करेंगे और प्रमाणित करेंगे कि देश के नव-निर्माण के हम भी इच्छुक हैं और अपनी शक्ति-भर नये कर्णधारों को उनके काम में मदद देने के लिए तैयार हैं।

महीप—ऐसे लोगों को, मैं समझता हूं, समाजवादी देश के काम करने का बहुत अवसर मिलेगा।

भगवानदास—मैं तो कहूंगा, यही भावना अच्छी है।

रामी—अच्छा भगवान भाई, आप अपनी बात तो बतलायें।

भगवानदास—यही कह रहा था—समाजवाद का झंडा गड़ जाय, तो हम भी विरोधी नहीं बनेंगे, बल्कि जो भी हमसे बन पड़ेगा, देश के नव-निर्माण का काम करेंगे। लेकिन आज भारत में समाजवाद तो नहीं चल रहा है। देश की अन्न और उद्योग बढ़ाने सम्बन्धी समस्याएं भयंकर हो उठी हैं। इस वक्त तो हम जितना ही अधिक अपने खेतों, कल-कारखानों, चाय-बगानों से उपजा सकें, जितनी ही अधिक घर के खर्च की वस्तुओं को उपजा सकें और जितनी अधिक वस्तुओं को बाहर

भेजकर डालर और पौंड जमा कर सकें, उतनी ही देश की रक्षा और भलाई होगी। यदि हमने कारखानों की उपज न बढ़ाई, तो न अपने देश के उद्योग की चीजें बना सकेंगे, और न बाहर भेजकर डालर पौंड जमाकर उससे दूसरे देशों से अन्न या मशीनें खरीद सकेंगे, जिसका परिणाम घातक होगा। अन्न बिना लोग मौत के मुंह में जायंगे, मशीनों बिना हम कारखाने नहीं बढ़ा सकेंगे। बिहार में हमारी एक चीनी की मिल है, जहां दूसरी मिलों से मजदूरों का बहुत ध्यान रखा जाता है। हम मजूरों को सबसे अधिक वेतन देते और अतिरिक्त लाभ के अनुसार उनको बोनस भी देते हैं; यहां तक कि ऊख की फसल बीत जाने पर जब मिल बंद रहती है, उस समय भी हम मजदूरों को आधा वेतन देते हैं। वहां अस्पताल का इन्तजाम है, रहने के लिए कितने ही क्वार्टर साफ-सुथरे बनवा दिये हैं और सोच रहे हैं यदि मिठाई और सीरे से स्पिरिट बनाने का भी काम पूरी तौर मे चल निकले, तो बारहों महीने मजदूरों को काम देंगे, उनके लिए स्थायी घर बनवा देंगे। रामी बहन हमारी मिल देख आई हैं, वह बतला सकती हैं कि हमारे यहां मजदूरों की कितनी पूछताछ है।

रामी—मैंने देखा है; और कई दूसरी मिलों को भी मैं देख चुकी हूं, निश्चय ही भगवान भाई की मिल के मजदूरों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया जाता है।

भगवानदास—तो भी हमारे मिल के मजदूरों ने हड़ताल कर दी है। मिल-मालिक भाई पहले ही से हमारे विरोधी थे, बन्धु-बान्धव भी बहुत डांटते थे। एक सम्बन्धी तो कह रहे थे—तुम पूरे बेवकूफ हो, एक चीनी की मिल के नफे पर लोगों ने तीन-तीन मिलें खड़ी कर लीं, एक कपड़े की मिल से चोरबाजारी द्वारा करोड़ों की पूंजी बढ़ाके लोग बड़े-बड़े कारखानेदार बन गए, अंग्रेजों की मिल खरीद ली; लेकिन तुम दस साल से वहीं हो। मैंने उन्हें वही "थोड़ा खाना बनारस का रहना" की कहावत सुना दी। मैं बहुत नफा नहीं चाहता, किन्तु यह हड़ताल

देखकर लज्जा आ रही है। मेरे प्रतिद्वन्द्वी भाई मुझे खूब ताना मार रहे हैं। यदि मैं मिल से अधिक नफा उठाके नये कारखाने खड़ा कर सकता, तो मैं बेवकूफ नहीं समझा जाता।

खोजीराम—कारखानों को और अधिक बढ़ाना, देश के उद्योग-धन्धे को और उन्नत करना यह तो देश के प्रति सबसे आवश्यक कर्त्तव्य है। सभी को अपनी शक्ति-भर इस काम में सहायता करनी चाहिए।

महीप—कारखाना बढ़ाने के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है, और पूंजी को हम मजदूरों का पेट काटकर जमा करते हैं, यह उनकी पसीने की कमाई है; किन्तु कपड़े के मिल का मालिक—जिसके भाई-बन्धों ने कन्ट्रोल के उठ जाने पर तीन महीने के भीतर एक अरब रुपया जमा कर लिया—यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं, कि पूंजीपति चोर-बाजार में कपड़े को बेचकर एक अरब अपने पाकेट में डाल लें।

भगवानदास—मैं इसे बुरा मानता हूं। इतना लोभ उन्हें अवश्य-मेव ले डूबेगा। किन्तु वह कहते हैं, कि अंग्रेजों ने दूसरे मुल्कों की लूट और अपने देश के मजूरों का वेतन कम रखके खूब नफा कमा पूंजी जमा की, और उससे अपने देश के उद्योग-धन्धे को बढ़ाया। भारत के पास साम्राज्य नहीं है, कि वहां के लोगों को लूटके पूंजी बढ़ाई जाय।

महीप—इसलिए पूंजीपति चाहते हैं कि घर में ही शिकार खेला जाय और मजूरों की कमाई से एक लाख का एक करोड़ बनाके और भारी पूंजी का मालिक बना जाय। लेकिन भगवान भाई, अब वह होनेवाली बात नहीं है। अंग्रेजों ने उस समय अपने अधीन देशों को लूटा, जबकि उन देशों में कोई स्वतन्त्रता के लिए नवचेतना नहीं आई थी। उन्होंने उस समय अपने यहां के मजदूरों की खाल उतारी, जब उनमें आत्म-चेतना और संगठन नहीं था, जबकि वह क्रीत दास-से अपने को समझते थे। आज मजदूरों में चेतना है। वह जानते हैं कि पूंजीपति जोंक छोड़कर और कुछ नहीं हैं। इस वक्त यदि आप उन्नीसवीं सदी

की तरह मनमानी पूंजी बढ़ाना चाहेंगे, तो संगठित मजदूर इसे बर्दाश्त नहीं करेंगे। वह समझने लगे हैं, कि फैक्टरी मालिक की नहीं बल्कि हमारे अपने खून-पसीने का परिणाम है।

भगवानदास—जो भी समझते हों, लेकिन उपज को बढ़ाना तो हरेक का कर्तव्य है।

महीप—भगवान भाई, रूस में भी कारखाने हैं और अमेरिका तथा हमारे देश में भी। रूस का मजूर दूसरे कारखाने के साथ उपज बढाने की होड़ लगाता है, जिससे वहां चीजों की उपज बहुत तेजी से बढ़ती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में सत्तर लाख आदमियों के मारे जाने पर भी रूस के किसानों ने युद्ध-समाप्ति के डेढ़ बरस के भीतर ही अनाज इतना पैदा कर लिया, कि वह अपने ही नहीं, दूसरे देशों को भी खिलाने लगे। उजड़े शहरों को वहां जितनी जल्दी से आबाद किया गया, वह वही कर सकते थे। वहां खेतों और कारखानों में क्यों होड़ लगती है? क्यों वहां हड़ताल करना बुरा समझा जाता है? इसीलिए कि वहां के मजूर जानते हैं, कि यहां तीन महीने में उनकी कमाई से एक अरब बनाकर कोई बैठ नहीं सकता। यदि हमारे यहां के मजूरों को भी यह मालूम हो, कि अपनी मजूरी का जो पैसा हम नही पा रहे हैं, वह किसी सेठ की नहीं देश की खातिर जमा हो रहा है, जिससे बढ़ते कमकर पुत्रों के काम के लिए और अधिक कारखाने खोले जायंगे, तो हमारे देश में भी औद्योगिक अशान्ति नही होती।

भगवानदास—भाई, वही कर लेना, लेकिन जब तक वह नहीं होता, तब तक हड़ताल करके उपज बन्द करने का अर्थ है, देश को अकाल के गाल में फेंकना।

युधिष्ठिर—देश को नुकसान पहुँचाना ठीक नहीं है, लेकिन नुकसान को रोकने के लिए क्या मजूर अपना काम जोर-शोर से करते जायं, पूंजीपति निडर हो पूंजी बटोरते जायं, एवं मजूरों की दशा दिन-पर-दिन गिरती जाय?

रामी— भगवान भाई, आप अपनी बात थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिये एक तरफ। देश-सेवा की आशा तो आप नहीं रख सकते, मजूरों को उनकी कमाई का पर्याप्त भाग देने की बात तो अलग। पूंजीपति सदा इसी ताक में रहते हैं, कि कैसे हमारी जेब से कम-से-कम पैसा बाहर निकले। यह विचार तो वह मन में आने ही नहीं देना चाहते, कि मजूर भी कारखाने के मालिक हैं।

भगवानदास— मैं तो मानने के लिए तैयार हूं और मैं समझता हूं, मजूरों को यह ख्याल होना चाहिए; लेकिन मालिक होने के साथ अपनी जिम्मेदारी का भी तो उन्हें ख्याल करना होगा।

महीप—आप भगवान भाई, जबानी जमा-खर्च को भुगतान समझते रहे हैं। वही कहावत है—"बहू का बहुत मान, किन्तु हांडी-चूल्हा छूने न पाये।" आपके जबानी कह देने से तो मजूर कारखाने के मालिक नहीं बन जाते। मालिक होने का प्रमाण यही है कि कारखाने के लाभ में मजूरों को भी भागीदार माना जाय। यह बात स्वीकार करने के लिए कहने पर बिड़ला साहब नेहरू सरकार को धमकी दे रहे हैं, कि तब अमेरिका एक पैसे की मदद नहीं देगा, हालांकि सरकारी पंचों ने यह राय दी है कि औद्योगिक शान्ति रखने के लिए यह जरूरी है। सेठ इसे नई बात बतलाते हैं, और कहते हैं कि ऐसे पूंजीपति रोजगार नहीं कर सकते।

खोजीराम—यह तो अमेरिका का नाम लेकर धमकी है। वह जानते हैं कि हमारी सरकार ने अमेरिकन बादल को देखकर घड़ा फोड़ दिया है।

महीप—यह तो मालूम हो गया न, कि पूंजीपति मजूरों को कारखानों में भागीदार स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। यही नहीं, जिसको नहीं तिसको नौकरी से निकाल देना अपनी शान समझते हैं। मजूरों की साधारण तकलीफों और मांगों को भी तब तक ठुकराते जाते हैं, जब तक मजूर एक होकर उनका मुकाबला नहीं करते।

भगवानदास—मुकाबला करने की क्या बात पूछते हैं, अब क्या

कहीं भी मजूर डरते हैं ? मजूर और किसान दोनों की वही बात है। किसान जमींदार को माता-पिता समझता था और वैसा ही आज्ञाकारी देखा जाता था, लेकिन अब ?

खोजीराम—लेकिन जमींदार किसान को सौतेला बेटा भी नहीं समझता था। एकतरफा भक्ति के दिन गये भगवान जी !

भगवानदास—पूंजीपतियों का भी दोष है, इससे मैं इन्कार नहीं करता, लेकिन यह जो समाजवादी साम्यवादी उन्हें भड़का रहे हैं, केवल अपने स्वार्थ के लिए भड़का रहे हैं, क्या यह अच्छी बात है ?

महीप—अपने स्वार्थ के लिए भड़का रहे हैं, इसका क्या अर्थ है ? क्या मजूरों का वेतन बढ़ने पर बढ़े रुपयों को वे अपनी पाकेट में रखना चाहते हैं ? इस तरह की स्वार्थ की बात, राजनीतिक विप्लव और उपद्रव की बात, अंग्रेज भी बहुत कहा करते थे, जब हमारे नेता स्वतंत्रता के लिए युद्ध छेड़े हुए थे।

भगवानदास—व्यक्तिगत स्वार्थ भले न हो। खैर इसे जाने दीजिए, यदि आप कहना चाहते हैं कि मजूरों के स्वार्थ के लिए लड़ रहे हैं, तो मजूरों के स्वार्थ का ख्याल केवल इन्हीं लोगों को नहीं है, राष्ट्रीय मजूरसंघ भी तो आखिर मजूरों की बड़ी सफलतापूर्वक सेवा कर रहा है।

महीप—मजूरों की सफलतापूर्वक कुसेवा कर रहा है। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि राष्ट्रीय-मजूर-संघ के सभी नेता कार्यकर्ता जान-बूझकर ऐसा कर रहे हैं। जान-बूझकर करें या न करें किन्तु यह संस्था पूंजीपतियों का पाँचवां दस्ता है, इसका काम मजूरों की संघशक्ति को नष्ट करना और झूठे दिलासे देकर मजूरों को भ्रम में रखना है।

भगवानदास—यदि अलग नई संस्था खोलने से ही आप राष्ट्रीय-मजूर-संघ के लोगों को दोषी ठहराते हैं, तो समाजवादी भाइयों ने भी तो पुराने मजूर-संघ से अलग अपनी मजूर-पंचायत कायम कर ली है।

महीप—मैं नहीं कह सकता कि वह ठीक किया गया। मैं यही चाहूंगा कि सभी मजूर संगठन किसी-न-किसी तरह एकताबद्ध हो

जायं; किन्तु मजूर पंचायत पर यह दोषारोपण नहीं किया जा सकता, कि वह पूंजीपतियों की सहायता करने के लिए हड़ताल तोड़ने तथा मजूरों को आपस में लड़ाने के लिए अपना संगठन कर रही है।

भगवानदास— आपकी दृष्टि में राष्ट्रीय मजूर-संघ का मजूर-हित से कोई संबन्ध नहीं है ?

महीप—आपका यह विचित्र प्रश्न है। कभी कोई हित कर देने वाला यदि असली हितू समझा जाता, तो बैरंगिया नाला का आपका जूता उठानेवाला ठग भी हितू समझा जायगा। देखना तो यह है कि इस संगठन का लक्ष्य मजूरों के विस्तृत तथा स्थायी हित की ओर है या नहीं। लेकिन यह मैं कहूँगा कि फूट डालने की यह रीति किसी देश में भी अधिक समय तक सफल नही हुई है। पूंजीवादी सरकार सिर्फ जेल और गोली से ही मजूरों की शक्ति नही तोड़ना चाहती, बल्कि उन्हींके भीतर से फूट डालने वालों की जमात भी बनाती है।

युधिष्ठिर—महीप, एक ओर तुमने स्वीकार किया, कि राष्ट्रीय-मजूर-संघ में ऐसे भी आदमी हो सकते हैं, जिनकी नीयत पर हमला नहीं किया जा सकता; लेकिन दूसरी ओर से तुम काला पोचारा फेरना चाहते हो।

महीप—यदि ऐसा भ्रम मेरे कहने से हुआ हो, तो मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ, कि मेरी यह मंशा नहीं है। हाँ, ऐसे भोले-भाले आदमी हो सकते हैं, जो भ्रम के कारण पूंजीपतियों के षड्यंत्र में शामिल हो गए।

भगवानदास—लेकिन महीप बाबू, आप तो बहुत पढ़-सुन चुके होंगे, हमारे प्रधान-मंत्री ने कहीं समाजवाद या साम्यवाद को भी बुरा-भला नहीं कहा है। वह तो देश में समाजवाद को लाना चाहते हैं। हमारे गांधीवादी सर्वोदयवाले भी साम्यवाद को मानते हैं और कहते हैं कि साम्यवादियों तथा सर्वोदयवादियों के उद्देश्य में कोई अंतर नही है, अंतर है केवल साधनों में।

महीप—प्रधान मंत्री के समाजवाद की बात आप क्यों कहते हैं? आप खामखाह गड़ा मुर्दा उखाड़ना चाहते हैं। हमें कथनी नहीं करनी चाहिए और करनी में प्रधान मंत्री ने अपनी भरसक समाजवाद को कोसों नीचे गाड़ दिया। समाजवादी नेहरू अब लुप्त इतिहास की बात रह गए। रही सर्वोदय समाज की बात, मैं उनके भावों का सम्मान करता हूँ, यद्यपि कभी-कभी उनकी आलोचना करने से भी बाज नहीं आता।

युधिष्ठिर—जितने ईमानदार तथा बहुजन हितैषी व्यक्ति हैं, उनके लिए कड़ी आलोचना की क्या आवश्यकता है। मैं समझता हूं, सर्वोदय समाजियों में गांधीजी के सबसे ईमानदार अनुयायी हैं। इसमें भी शक नहीं, कि वह साम्य-समाज की स्थापना चाहते हैं और जैसे-जैसे हमारे देश की अवस्था वैयक्तिक स्वार्थ के कारण भयंकर रूप धारण करती जायगी, वह अपने उद्देश्य के लिए अधीर होते जायंगे। किंतु उनको भ्रम है कि साम्यवादी हिंसावाद पर विश्वास रखते हैं। हिंसा उसे कहेंगे, जो आक्रमण के लिए की जाय। आत्मरक्षा के लिए अगर कोई आदमी तलवार का सहारा लेता है, तो दोषी नहीं है। प्राण-संकट से बचने के लिए यदि कोई आततायी को जान से मार दे, तो कानून भी उसे हत्यारा नहीं कहेगा। साम्यवादी आक्रमण के लिए नहीं आत्म-रक्षा के लिए हिंसा को स्वीकार करते हैं। आक्रमणकारियों को निःशस्त्र कर दीजिए, उनके पास हथियारबन्द गुरखे रखने के लिए पैसा हो, तब कह सकते हैं, कि हम पूरी जनतंत्रिकता को व्यवहार में ला रहे हैं, इस-लिए किसीको यदि देश में क्रांति करनी है, तो शान्ति के पथ से करे।

रामी—यह कहाँ होने वाला है, प्रेस, पैसा, प्रभाव तो दिन-पर-दिन और भी चंद आदमियों के हाथ में चला आ रहा है।

खोजीराम—शक्ति का इतना अधिक एक जगह जमा होना, और वह भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए, बहुत बुरी बात है।

महीप—लेकिन उसी मात्रा में अधिक लोगों का कंगाल हो जाना,

भारी संख्या में मजूरों का कल-कारखानों के पास एक जगह जमा हो जाना भी हो रहा है, जो पूंजीवादी शासन के लिए खतरे की चीज है।

भगवानदास—हाँ, यह दोनों खतरे की चीजें हैं। हम तो समझते हैं, मजूरों और मिलमालिकों को मिलाके रखने से ही काम ठीक से चलेगा, और मिलाने का काम राष्ट्रीय-मजूर-संघ कर रहा है।

महीप—क्योंकि उसका उद्देश्य है—"ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना, जो कि उसके प्रत्येक सदस्य के सर्वतोमुखी विकास के रास्ते में बाधा डालने से मुक्त है, जो मानव व्यक्तित्व को हर प्रकार से उसके हरएक रूप में वृद्धि करने को उत्साहित करती है और आर्थिक कार्यों में लाभ की वांछा के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शोषण तथा असमानता को और किसी रूप में भी शक्ति के समाज-विरोधी केन्द्रीकरण को क्रमशः चरम सीमा तक हटाने को तैयार है।"

भगवानदास—आखिर आप लोग भी तो यही बात कह रहे हैं।

महीप—कहने और करने में बहुत अंतर है। यदि यह करने वाले होते, तो पूंजीपतियों का आशीर्वाद उन्हें न मिलता, न उनके पत्र कालम-के-कालम उनकी प्रशंसा में रंगते।

खोजीराम—मैं तो समझता हूँ, यह केवल कमकर-वर्ग में फूट डाल के उसे निर्बल करने की चाल है। दूसरे मजूर संगठन जब तक कुछ शक्तिशाली हैं, तब तक उनकी कुछ पूछ भी रहेगी, नहीं तो इनको भी धता बता दिया जायगा और फिर पूंजीपतियों की नंगी तानाशाही स्थापित हो जायगी।

युधिष्ठिर—यह सब हो सकता है, किन्तु भूख और चरम दरिद्रता की समस्या कभी उन्हें चैन लेने नहीं देगी।

नवां अध्याय

आहार की समस्या

आज वर्षा बंद थी, आकाश में कहीं-कहीं सफेद बादल दिखाई पड़ते थे, जो निरुद्देश्य-से इधर-से-उधर सरक रहे थे। ऊपर, जान पड़ता है, वर्षा जोर की हुई थी, क्योंकि गंगा की धार दूर तक फैली थी। आज की गोष्ठी में पांच की जगह छ आदमी थे; छठे कौन थे इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

आरम्भिक अभिवादन के बाद छओं जने पक्की छत के ऊपर कालीन पर बैठे। युधिष्ठिर ने गोष्ठी आरम्भ करते हुए कहा—आज हमें आहार की समस्या पर विचार करना है, आहार की लोग अवहेलना करते हैं, मैं समझता हूं वह इतना अवहेलनीय नहीं है। उसके ऊपर जीवन का आधार है। मैं समझता हूं, शायद प्राचीन काल में अन्न की अवहेलना की गुंजाइश थी; उस समय अन्न बहुत था, खाने वाले कम थे, इसीलिए भोजन की चिंता नहीं थी। स्वामीजी शायद बतला सकेंगे कि क्यों हमारे यहां अन्न को निकृष्ट समझा गया।

मुखपात्री—नहीं, प्राचीन काल में जिस वक्त उपनिषद् के ऋषि भारत में विचर रहे थे, कहा जाता था, "अन्नं वै ब्रह्म।"

रामी—अन्न को ब्रह्म कहते थे और ब्रह्म से बढ़कर कोई चीज नहीं।

मुखपात्री—यह भी उस वक्त विधान किया गया था, "अन्नं बहु कुर्वीत।"

भगवानदास—"अन्न बहुत उपजावो", यह नारा बहुत पुराना मालूम होता है।

मुखपात्री—वह लोग अतिथि के बड़े सेवक थे। जिसके घर से अतिथि बिना तृप्त हुए चला जाता था, समझते थे उसका जीवन-भर का पुण्य चला गया[1]। अन्न बिना अतिथि की सेवा कैसे हो सकती है ?

महीप—पहले "अन्न बहुत उपजावो" कहना जबानी नहीं था। लोग बहुत अन्न उपजाते थे और इस भूमि पर कोई भूखा नहीं रहता था। पिछली लड़ाई के समय अंग्रेजों ने 'अन्न बहुत उपजावो" का नारा लगवाया, करोड़ों रुपये प्रचार में खर्च किये गए, लेकिन नारे का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्न जब बहुत महंगा हो गया, तो किसान कोशिश करके अन्न उपजाने लगे। आजकल अन्न के लिए "त्राहि, त्राहि" हो रही है। अन्न की बहुत कमी है। आदमी पीछे कितने अन्न की आवश्यकता होती है, इसे तो हमारे डाक्टर साहब बतलायेंगे।

खोजीराम—आदमी-आदमी के लिए एक ही परिमाण की शक्ति आवश्यक नहीं होती। जो अधिक शारीरिक मेहनत करता है, उसे अन्न की आवश्यकता अधिक है। जो मेहनत कम करता है, उसे कम शक्ति की आवश्यकता होती है। भारी बोझा उठाके पहाड़ पर चलने वाले आदमी को उसके शरीर के छोटे-बड़े होने के अनुसार साढ़े तीन हजार से चार हजार कलोरी तक चाहिए।

भगवानदास—कलोरी क्या चीज है ?

खोजीराम—कलोरी[2] को यही समझिए कि सेर भर घी में ७१३६ (७०९२) कलोरी शक्ति होती है, और घी में सबसे अधिक ताकत होती है।

---

१. "अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।"

२. जितनी शक्ति में एक ग्राम जल एक डिग्री सेंटीग्रेड गरम हो जाता है।

मुखपात्री—"आयुर्वै घृत।" अच्छा तो जो शरीर से ज्यादा मेहनत नहीं करता, उसको कितनी शक्ति की आवश्यकता है ?

खोजीरम—दो हजार कलोरी की आवश्यकता तो होगी ही, वैसे किसीने १७५० कलोरी भी कहा है।

मुखपात्री—तब तो आदमी पाव-सवापाव घी खाकर २४ घंटे के लिए छुट्टी पा सकता है।

खोजीराम—लेकिन उस आहार का क्या लाभ जिससे शक्ति नहीं मिलती। उस पेट्रोल से क्या लाभ जो टैंक के टूटने से चू जाता है।

मुखपात्री—तो क्या हम जो खाते हैं, सब शक्ति नहीं बनता ?

खोजीराम—जिस आहार में जितनी अधिक शक्ति है, उसको पचाने में भी उतनी ही मेहनत लगती है, जैसे घी, चर्बी, बादाम, यह सभी चीजें मिश्रित करके एवं अधिक परिश्रम के साथ हजम होती हैं। प्रति सेर (दो पौंड) कितनी कलोरी कुछ खाद्यों में है, इसे बताता हूँ—

खाद्य	कलोरी	पूड़ी	४१६०.
सोया-बीन	३८०८.	चीनी	३६१६.
चना	३३६०.	खीरा	६६.
मटर (बड़ी)	३६१६.	कटहल	७६८.
मसूर दाल	३२३२.	आम	७६८.
बाजरी	३३६०.	नारंगी	३८४.
मक्का	३०७२.	अनन्नास	३८४.
चावल (अरवा)	३४५६.	शकरकंद (लाल)	१०८८.
चावल (उसना)	३६४८.	शकरकंद (सफेद)	८६४.
तपियोका	३२६४.	आलू	८६४.
गेहूं (आटा)	३२६४.	गाजर	३२०.
गुड़	३२००.	मूंगफली (तेल)	८०६४.
रोटी	३२००.	सरसों (तेल)	७६६४.
भात	३४६४.	मक्खन	६६१२.

घी	७१३६.	,, (मुर्गा)	१०८०.
दूध (भैंस)	६६०.	,, (भेड़)	१३४४.
,, (गाय)	५७६.	,, (सूअर)	१६६६.
,, (बकरी)	६४०.	मछली (मीठे जलकी मोटी)	१७६०.
,, (मानुषी)	८७६.	,, (,, ,, पतली)	७०४.
,, (भेड़)	६६०,	अंडा (मुर्गी)	१३४४.
मांस (बकरा)	११५२.		

रामी—अधिक कलोरी वाली चीजों को देखकर तो लालच होता है, कि क्यों न दो सेर की जगह पाव-भर खा लिया जाय, किन्तु उनके हजम करने में दिक्कत होती है, यह सुनकर मन हिचकता है।

महीप—मन ही हिचकता है या कभी खाकर भी देखा है ?

रामी—खाकर देखा है, तभी तो मन हिचकता है।

खोजीराम—केवल अधिक कलोरी खाने से फायदा नहीं, फिर या तो हम हजम नहीं कर पाते, या बेकार मोटे होते जाते हैं। हमारे खाने में मटर जैसे प्रोटीन देने वाले आहार की आवश्यकता है; चर्बी जैसे स्निग्ध पदार्थ की भी आवश्यकता है; कार्बोहाइड्रेट अधिक देने वाले आहार की भी आवश्यकता है। फिर भीतर से शरीर के यन्त्र की वृद्धि और रक्षा करने में सबसे अधिक आवश्यक वस्तु हैं ए, बी, सी, डी, इ विटामिन। लेकिन मोटामोटी देखने पर सबसे पहले कलोरी का ही ख्याल आता है। हमारे देश के लोगों के आहार का औसत लगाने पर यही कहना पड़ेगा, कि यहां प्रति व्यक्ति को २५०० कलोरी की आवश्यकता होगी। लेकिन यह औसत की बात है, अधिक मेहनत करने वाले को ३००० कलोरी, हलके शारीरिक श्रम और मामूली व्यायाम करने वाले को ३५०० कलोरी, अधिक परिश्रम करने वाले को ४००० कलोरी की आवश्यकता है।

महीप—यदि हम गेहूं को ले लें और अपने देश की जनसंख्या ३२ करोड़ मान लें, तो प्रत्येक व्यक्ति को साल-भर में ६ मन १३ सेर

गेहूं की आवश्यकता होगी अर्थात् साढ़े चार आदमी पर एक टन अनाज की जरूरत।

भगवानदास—हिसाब सीधा रखने के लिए टन पीछे पांच आदमी कर लीजिए, तो साल में हमारे देश को ६ करोड़ ४० लाख टन अनाज की आवश्यकता होगी। लड़ाई के समय से ही "अधिक अन्न उपजाओ" की बात चल रही है, उससे कितना अनाज बढ़ गया?

युधिष्ठिर—अनाज बढ़ने की बात कर रहे हैं? चावल को ही ले लीजिए। १९४५ मे ७०,००० टन चावल बाहर से मंगाया गया, अगले साल १,४४,००० और १९४७ में ४,४४,००० टन और पिछले साल ८,००,००० मँगाया गया। इसके अतिरिक्त २०,००,००० टन चावल घर में पैदा हुआ।

मुखपात्री—अनाज तो बहुत महंगा है, बाहर से इतना अनाज मंगाने पर हम कहाँ से दाम चुका सकेंगे?

युधिष्ठिर—१९४८ में १२० करोड़ रुपये का अनाज मंगाना पड़ा। तौल में १९४४ में १५ लाख टन, १९४६ में २५ लाख टन बाहर से मंगाया गया था। १९४८ में कुल मिलाकर २८,००,००० टन आया था, १९४९ में ४०,००,००० टन की आवश्यकता समझी गई।

भगवानदास—जान पड़ता है अनाज के टोटे का कहीं अन्त ही नहीं होना चाहता।

महीप—इतना ही नहीं भगवान भाई, हर साल ५० लाख खाने-वाले नये मुँह हमारे देश में पैदा हो जाते हैं।

मुखपात्री—क्या कहा? पचास लाख बच्चे हर साल हमारे यहां पैदा होते हैं?

महीप—बच्चे नहीं पैदा होते, स्वामीजी, सालभर में जितने लोग मरते हैं और जितने पैदा होते हैं उनका जोड़-बाकी करके भी रोकड़-बाकी पचास लाख हर साल बढ़ जाते हैं। आदमी की बढ़ती साधारण ब्याज के हिसाब से नहीं चलती। यह सूद-दर-सूद या चक्रवृद्धि का

ब्याज है, अर्थात् इस पचास लाख पर भी अगले साल ७५ हजार और बढ़ जायंगे और ५० लाख तो बढ़ेंगे ही।

भगवानदास—अर्थात दस बरस बाद १९५९ तक ६ करोड़ मुँह और बढ़ जायंगे, जिसका अर्थ है १,२०,००,००० टन अनाज की और आवश्यकता। भाई, मेरा तो इससे माथा गरम हो रहा है। बहुत हल्ला-गुल्ला करके साल-भर में एक लाख एकड़ जमीन नई खेती के लिए तैयार की गई, जिसका अर्थ है....

महीप—२५ हजार टन अनाज अर्थात ५० लाख नये खानेवाले मुँह में से सिर्फ सवालाख के लिए खाने का इन्तजाम।

मुखपात्री—यह तो बाढ आ रही है, इसे कैसे रोका जाय?

महीप—इसी बेतहासा बाढ के कारण तो स्वामीजी, मेरा विश्वास भगवान् से उठ गया।

मुखपात्री—क्या कहते हो नारायण? तुम परमात्मा में विश्वास नहीं रखते?

युधिष्ठिर—भगवान् की बात न उठाइये स्वामीजी, नहीं तो महीप उसी पर सारा समय बिता देगा।

महीप—भगवान् पर मेरा रत्ती-भर भी विश्वास नहीं है, किन्तु आप सब पर विश्वास है।

मुखपात्री—जब हमारे भगवान् ही पर विश्वास नहीं तो हम जैसे भगवान् के सेवकों पर क्या विश्वास होगा?

महीप—नहीं, परिहास नहीं कर रहा हूं, स्वामीजी, मेरा बिलकुल विश्वास है, यदि हमारे साधु-महात्मा कोशिश करें, तो भगवान् जिस नैया को डुबाना चाहते हैं, वह पार लग जाय। बस अधिक नहीं, हर साल केवल २५ लाख स्त्रियों और २५ लाख पुरुषों को साधु बना लें।

मुखपात्री—हमने इस दृष्टि से तो कभी साधुओं के बारे में नहीं सोचा था, लेकिन अब मैं समझता हूं, इतनी भयंकर जन-वृद्धि हमारे देश के लिए काल है।

महीप—यही समझिए धर्मावतार, कि २००० ईसवी तक भारत में एक अरब आदमी हो जायंगे, आज से तिगुने से भी ज्यादा।

भगवानदास—इसका क्या कोई उपाय नहीं है?

महीप—उपाय दो ही हैं, या तो सन्तान कम पैदा हो या लोग मरें ज्यादा; लेकिन, हमारे यहां हैजा, प्लेग, इन्फ्लुएंजा जैसे यमराज के सारे बड़े-बड़े वीरों ने कोशिश करके हार मान ली; जब पचास लाख हर साल बढ़ना ठहरा, तो साधारण मृत्यु के ऊपर से यदि तीस लाख हैजा-प्लेग के भी न्योछावर हो गए, तो उसमें कौन दिवाला निकलने वाला है?

रामी—साधु-साधुनियों की तो महीप, तुमने एक नई उपयोगिता बतला दी।

महीप—और मैं विधवा-विवाह का भी घोर विरोधी हूं।

भगवानदास—शाबाश, महीप भाई, तुम धीरे-धीरे हमारे ऋषियों के रास्ते पर लौट रहे हो, उन्होंने कुछ सोचकर ही विधवा-विवाह का प्रतिषेध किया था।

युधिष्ठिर—प्रतिषेध किया था, लेकिन हमारे देश के ३२ करोड़ में ८ ही करोड़ उसे मानते हैं, सब मानते तो कोई बात थी।

भगवानदास—जोई माने सोई, धर्म के रास्ते पर यदि एक आदमी भी डटा रहे तो भी बहुत है।

महीप—मैं तो चाहता हूं, कि कानून बनाके अपने देश की सभी जातों में विधवा-विवाह बंद कर दिया जाय। जिसका एक बार ब्याह हो गया, उसका फिर दुबारा ब्याह नहीं होना चाहिए और तरुण विधवाओं पर तो और भी कड़ाई होनी चाहिए।

खोजीराम—तो तुम ५० से ऊपर की विधवा के ब्याह करने के विरोधी तो नहीं हो?

महीप—नहीं, बिलकुल नहीं, ५० के बाद बंधन खोल देना चाहिए।

मुखपात्रीजी ने मुस्कराते हुए कहा—भाई, तुम बड़े मज़ाकी आदमी हो। लेकिन मुझे तो यह जन-वृद्धि एक भयंकर आफत-सी मुंह बाये सामने दिखाई पड़ रही है। आखिर हर साल ५० लाख ही मुंह बढ़ें, तो भी तो १० लाख टन अनाज की आवश्यकता बढ़ जायगी।

महीप—जिसके लिए पचास लाख एकड़ हर साल नये खेत बढ़ाये जायं, तो किसी तरह काम चलेगा।

मुखपात्री—लेकिन धरती तो एक अंगुल भी नहीं बढ़ रही है। पहाड़ों तक पर जितने जंगल थे, लोगों ने सब काटके खेत बना लिया।

महीप—अंदाज लगाया गया है, यदि सभी प्रान्तों में जितनी जमीन परती पड़ी हुई है, सबका खेत बना लिया जाय, तो एक-चौथाई और खेत निकल आयगा। लेकिन यह निश्चित है कि जिस तेजी के साथ भगवानदासजी के भगवान् बच्चों को भेजने में मुस्तैदी दिखा रहे हैं, उससे यमराज के प्रयत्न की भांति आदमी का भी सारा प्रयत्न निष्फल होगा। खाने वालों की वृद्धि का मुकाबला अन्न नहीं कर सकता। ऊपर से हमारे नेता "अधिक अन्न उपजावो" के बारे में जैसी बच्चों की सी बातें कह रहे हैं, उसे सुनकर तो देह में आग लग जाती है।

भगवानदास—नेताओं को चार सुनाये बिना तुम्हारे पेट में पानी नहीं पचेगा। वह बेचारे तो पूरी कोशिश कर रहे हैं। हमारे प्रधान मंत्री ने २६ जून को रेडियो पर कहा था कि १६५१ के बाद हम बाहर से अन्न मंगाना बंद कर देंगे।

महीप—भगवान भाई, तुम बहुत भोले हो, मैंने जब उस भाषण को पढ़ा, तो पसीना होने लगा। १६५१ तक एक करोड़ और नये मुंह आ जायंगे अर्थात् प्रतिवर्ष २० लाख टन अनाज की आवश्यकता और बढ़ जायगी, इस साल का ४० लाख टन वाला टोटा तो रहेगा ही। अन्न बंद करने का मतलब होगा, ६० लाख टन अनाज का

घाटा। एक करोड़ एकड़ नया खेत कहां से तैयार हो जायगा ? यह तो सीधा लोगों को भूखा मारने की तैयारी है और आप इस पर खुश हो रहे हैं।

भगवानदास—नहीं, महीप जी, प्रधानमंत्री ने रास्ता भी बतलाया है, कहा है कि लोगों को शकरकंद, आलू, तपियोका खूब खाना चाहिए। इस प्रकार सचमुच कई लाख टन अन्न का घाटा पूरा हो जायगा।

मुखपात्री—भगवानजी, महीप बाबू ठीक कह रहे हैं। जान पड़ता है तुम्हें तपियोका ने भूल-भुलैयां में डाल दिया है।

महीप—इन्हीं को भूल-भुलैयां में नहीं डाला है, स्वामीजी, नेहरूजी को भी किसी मेनन ने भूल-भुलैयां में डाल दिया है।

खोजीराम—मेनन का क्यों नाम लेते हो ?

महीप—मेननों का नाम मैं बुरी नीयत से नहीं ले रहा हूं। जहाँ कहीं भी हमारी नैया लड़खड़ाती है, वहाँ मेनन ही हस्तावलम्ब देकर उसे बचाते हैं। तपियोका मेननों के देश मालाबार में होता है। नेहरूजी ने तपियोका को देखा होगा, इसमें संदेह है, और चखा होगा, इसकी तो आशा नहीं करनी चाहिए।

भगवानदास—सचमुच भाई, मुझे तो यह सिद्धों की कोई जड़ी-बूटी मालूम हुई, समझने लगा खाने की देर है और हमारी सारी अन्न-समस्या हल हो जायगी। यह तपियोका क्या बला है ?

महीप—अरारोट की तरह का एक मोटा लंबा-सा कंद है, समझ लीजिए शकरकंद की तरह धरती से निकलने वाला कुछ अधिक लंबा मोटा कंद है; लेकिन शकरकंद की तरह मीठा नहीं, उसमें थोड़ी कड़-वाहट भी होती है। दिल्ली में वह डेढ़-दो रुपया सेर उसी समय बिक रहा था, जिस समय नेहरूजी रेडियो पर भाषण दे रहे थे। कितना सस्ता ! मालाबार के गरीब लोग खाते हैं।

मुखपात्री—इसीलिए मैं कहने जा रहा था, शकरकंद, आलू और

तपियोका हमारे आहार की कमी को तब न पूरा करेंगे, यदि अभी तक लोग इन चीजों को बाहर फेंकते रहे हैं।

महीप—इसीलिए तो स्वामीजी, भाषण पढ़कर मेरी देह जल गई। इन लोगों के मस्तिष्क में आखिर कुछ पीली मज्जा है भी या नहीं।

युधिष्ठिर—अपार्लामेंटरी शब्द! ऐसा कहने से महीप, तुम्हें क्या लाभ होता है?

महीप—क्षमा माँगता हूं, लेकिन इतना तो आप देखेंगे, कि जिस आदमी ने अन्न की कमी को पूरा करने के लिए शकरकंद और तपियोका का नाम लिया उसको रेडियो पर भाषण करने से पहले जान लेना चाहिए था, कि हमारे गांव के गरीब शकरकंद और तपियोका खा जाते हैं या नहीं। इन्हीं को नहीं, कितनी ही जंगल में पत्तियां, जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं, जिनमें जहर न होने पर लोग कड़ुवाहट की परवाह न करके उबाल के पानी फेंककर खा जाते हैं। इन सबके खाने के बाद जो अनाज की कमी होती है, उसी के कुछ अंश को आप बाहर से अन्न मंगा कर दे रहे हैं। प्रधान मंत्री ने तो तपियोका तक ही कहकर रहने दिया, किंतु उनके खाद्य-मंत्री तो "बड़े मियां तो बड़े मियां छोटे मियां सुभानुल्ला।"

मुखपात्री—खाद्य मंत्री?

महीप—हां, खाद्य मंत्री श्री जयरामदास दौलतराम ने सबसे पहले दहाड़ा था कि १९५१ से हम बाहर से अन्न मंगाना बंद कर देंगे। जब खरीदने के लिए पैसा नहीं रहेगा, तो स्वयं ही अन्न आना बंद हो जायगा। लेकिन कैसे-कैसे आदमी चुन-चुनकर हमारे भाग्य की बागडोर पकड़ने के लिए बिठाये गए हैं!

रामी—आखिर क्या बात है? जयरामदास दौलतराम जी तो बड़े सीधे-सादे आदमी हैं, उनसे क्यों चिढ़?

महीप—वह सीधे-सादे आदमी हैं ठीक, और हमें उनसे चिढ़ना नहीं है। हम तो अपने भाग्य के लिए झंख रहे हैं। श्रीमान् ने सागर

विश्वविद्यालय के उत्सव में भाषण देते हुए कहा था—आपके जूट उत्पादन से हमें बड़ी खुशी है। हम इसकी कोशिश कर रहे हैं, कि यहाँ पर एक जूट अनुसंधान प्रतिष्ठान खोल दिया जाय।

भगवानदास—क्या कहा भाई महीप ? सागर में जूट? उस पहाड़ी, सूखी जमीन में जूट कहां से होगा ? मैं सागर गया हूं। मुझे विश्वास नहीं है कि उन्होंने ऐसा कहा होगा।

महीप—आपकी बात क्या, मुझे ही अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था, जब मैं उन शब्दों को सुन रहा था। वह दीक्षान्त भाषण था। वहाँ पर मंत्री जी के मुँह से जब ये शब्द निकल रहे थे, तो किसी को अपने कानों पर विश्वास नहीं पड़ रहा था।

रामी—बहुत आश्चर्य है। जूट बंगाल में होता है और वहां भी ऐसी जगह जहाँ बरसात के पीछे तक छाती-भर पानी लगा रहता है, जूट के भीतर से लोग नाव ले जाते हैं। यह मंत्रीजी को क्या सूझी थी ?

युधिष्ठिर—खैरियत नहीं है। आहार की वैसी भयंकर समस्या और उसको हल करने का काम ऐसे अनाड़ियों के हाथ में पड़ गया है। लेकिन मैं समझता हूँ, यदि अनाड़ीपन को छोड़कर अकल से काम लिया जाय, तो हमारी समस्या हल हो सकती है।

महीप—और सुनिये, गवर्नर-जनरल राजगोपालाचारी ने ६ जुलाई (१९४९) को अपने रेडियो-भाषण में क्या कहा[1]—"यदि हम अधिक अन्न नहीं उपजायेंगे तो अकाल और विप्लव को निमंत्रण देंगे, जो जन-संख्या को कम कर देगा।....प्रकृति निष्ठुर अंकेक्षक है, जो स्वतः काम करती है।....आजकल हम बाहर से कारखाने की चीजें तथा काफी परिमाण में खाद्य-सामग्री भी मंगा रहे हैं। इसका दाम चुकाने के लिए स्वयं अधिक माल उपजाकर बाहर भेजने की जगह हम इंगलैंड में युद्ध के समय जमा हुए बैंक के पैसे पर निर्भर करते हैं। लेकिन यह सदा चलता नहीं रहेगा....। हमारे मजूर-वर्ग का जीवन-

१ 'स्टेट्समैन' (कलकत्ता ८-७-४९)

तल ऊंचा हो गया है; उसे ऊंचा जाना चाहिए था, और यह बहुत अच्छा हुआ, जो ऊपर गया। किसान और खेतिहर-ग्रामीण-मजूर, जो पहले रागी (मंडुवा), मक्की या बाजरे पर गुजारा करते थे और त्योहार या किसी विशेष समय ही चावल खाते थे, अब वह आमतौर से चावल खाते हैं और बिना उसे खाये उनको चैन नहीं आता।...इस सबके कारण चावल की हमारे यहाँ कमी है। हम आसानी से चावल की खेती को बढा नहीं सकते, क्योंकि उसके लिए बांध और नहर की आवश्यकता होगी, जिस पर भारी व्यय होगा और उन्हें तुरंत तैयार भी नहीं किया जा सकेगा; लेकिन बिना सिंचाई के प्रबंध के हम अधिक बाजरा, मटर या कंद पैदा कर सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि रागी, कोदो, बाजरा और मक्के के अधिक खाने का फैशन चलाया जाय। जब तक कि तथाकथित उच्चवर्ग वैसा न करे, तब तक फैशन चलाया नहीं जा सकता। वह जो-जो करते हैं, उसी की दूसरे नकल करते हैं। जेल जाने, अछूतों के साथ मिलने-जुलने, चर्खा कातने और गांधी-टोपी पहनने की भांति बाजरा खाने को भी देश-भक्तिपूर्ण महा-फैशन बनाना चाहिए तभी हम आज के चावल के भार को हल्का कर सकते हैं।" देखा न कितना ज्ञानपूर्ण उपदेश है ! अब गांव के मजूर भी चावल खाये बिना नहीं रह रहे हैं।

खोजीराम— और बाजरा-कोदो-मक्का तो अभी तक फेंका जाता था, और अब उनके खाने से टोटे के टनों की पूर्ति होगी।

मुखपात्री - लेकिन १९५१ में अनाज बाहर से मंगाना बंद करने की जो बात कही जा रही है, उसे क्या समझ कर कह रहे हैं ?

युधिष्ठिर—कुछ नहीं समझ के कह रहे हैं। विलायत से लाल-बुझक्कड़ बुलाया गया। उसने लड़ाई के दिनों में इंगलैंड की आहार-व्यवस्था संभाली थी। वहाँ समस्या क्या थी ? अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया सब जगह से अनाज, मांस, मछली से भरे जहाज आ रहे थे। बस उसे कड़े राशन के साथ सबको बांट देना था। उसी लाल-

बुझक्कड़ ने बतला दिया, कि तीन काम करो तो हिंदुस्तान की आहार-समस्या हल हो जायगी।

भगवानदास—कौनसे तीन काम लाल बुझक्कड़ ने बतलाये ?

युधिष्ठिर—पहला काम यह कि आहार की समस्या को युद्धकाल के समान संकट की समस्या घोषित कर दो।

महीप—आज सात वर्षों से जो अन्न के लिए हर गांव हर घर मे "त्राहि-त्राहि" मची हुई है, यह संकटकाल की घोषणा नहीं है ?

भगवानदास—और दूसरा उपाय क्या बतलाया ?

युधिष्ठिर—खाद्य-विभाग को केन्द्र से लेकर प्रांतों और राज्यों तक एक संगठन में संगठित कर दो और इसके लिए केन्द्र, प्रान्त और सभी जगह एक-एक कमिश्नर नियुक्त कर दो। मध्यप्रांत के भूतपूर्व मंत्री श्री र० क० पाटिल केन्द्र के प्रथम खाद्य-कमिश्नर नियुक्त भी कर दिये गए।

महीप—अर्थात्, तीन-चार हजार मासिक पाने वाले कमिश्नर, और उससे कुछ कम पानेवाले सहायक कमिश्नर, उपकमिश्नर और लिखनी-चन्दों को बहाल कर दो; जैसा कि भारत-सरकार ने पिछले दो वर्षों में अपने हर विभाग में मोटी-मोटी तनख्वाह वालों को बढ़ा के किया।

भगवानदास—यह दोनों बातें तो सचमुच ही बेकार मालूम होती हैं—"सूत न कपास, जुलाहे से लट्ठम-लट्ठा" ! आखिर सेर-दो सेर अनाज बढाने की भी कोई बात कही या नहीं ?

युधिष्ठिर—बात यही कही, कि किसानों का स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

महीप—प्रधान-मंत्री ने यदि हिन्दी में भाषण दिया होता, तो स्वैच्छिक सहयोग में अनुप्रास का माधुर्य अवश्य है। स्वैच्छिक सह-योग डंडे के बल पर अनाज जमा करके लिया जो जा रहा है। मैं अनाज संग्रह करने का विरोधी नहीं हूं। यदि किसान अपने खाने से अधिक अनाज बखार में रखता है, तो उसे ले लेना चाहिए, साथ ही

यह भी देखना चाहिए, कि उसे चोरबाजार की दर से चीजों को खरी-दना न पड़े। कोई किसान अनाज घर में नहीं रखेगा, यदि उसे माकूल दाम पर अपने काम की चीजें मिलती रहें और माकूल दाम पर उसका अनाज खरीदा जाता रहे। शहरों के चोरबाजारियों पर आपकी चलती नहीं और आप किसानों पर टूट पड़ते हैं।

मुखपात्री—सचमुच ही यह तो लाल-बुझक्कड़ वाली ही बात है—"चक्की बाँध के पैर में कहुं हरिन न कूदा होय" हम लोगों ने तो आज "अन्न ब्रह्म" के बारे में केवल निराशा ही निराशा की बात सुनी, लेकिन कहीं प्रकाश की एक किरण भी दिखलाई पड़ रही है, या साधुओं, हैजा, प्लेग और अकाल ही का भरोसा है।

महीप—प्रकाश की किरण का क्या टोटा—"वचने का दरिद्रता ?" मई में दिल्ली में भारत के खाद्य-मंत्री जुटे थे, जिस पर कलकत्ता के दैनिक "नेशन" (६.५.४६) ने लिखा था "व्याख्यानबाजी, श्लाघा और छूमंतरी योजनाएं....अत्यंत महंगे खाद्य परमार्शदाता लार्ड बायड-ओर ने खाद्यमंत्रियों से कहा, कि १६५१ तक पर्याप्त खाद्य उपजा लेना बिलकुल ठीक है। यह छूमंतर वाला देश अगले दो सालों में उसे अच्छी तरह पूरा कर सकता है। कुछ समीक्षक कह रहे थे, ये योजनाएं जैसी तैयारी की गई हैं, वह केवल जादू से ही पूरी की जा सकती हैं।....योजना बहुत सुन्दर है, दो वर्ष में घर के भीतर पर्याप्त अन्न, फिर बाहर से अनाज आना बंद, जीवन खर्च की कमी, कपास में देश की आत्म-निर्भरता।....खाद्यमंत्री लोग जुटे, बोले और बिखर गए। अब इधर भारत-सरकार के खाद्य-विभाग के पास बंबई और मध्यप्रांत से अकाल की आतंकोत्पादक खबरें आ रही हैं। वहां अन्न का ही अभाव और फसल की ही पूरी तौर से बरबादी नहीं हुई है, बल्कि भूख और बीमारी से भारी संख्या में ढोर मर गए। बहुतेरे इलाकों में नर-नारी मुश्किल से एक जून के भोजन से जी रहे हैं। अकाल-अवस्था की इन खबरों को समाचार-पत्रों और समाचार-एजंसियों ने दबा दिया

है।....लार्ड बॉयड-ओर बहुत भले आदमी हैं। क्या उन्होंने भारत की "शांतिवादी" सरकार की प्रशंसा नहीं की? क्या उन्होंने सुझाव नहीं रखा, कि भारत को विश्व-युक्त-सरकार की स्थापना में नेतृत्व करना चाहिए—यह लोगों का पेट भरने से कहीं अधिक महान् कार्य होगा।"

भगवानदास—यह पेट भरना कितनी बड़ी समस्या है? डेढ़ दो-रुपये सेर का तपियोका खाओ। खैर! और कोई भी पेट में भरने की चीज है?

महीप—है क्यों नहीं! अभी पाँच हजार टन प्रतिदिन मछली मारी जाती थी अब उसे दस हजार टन करने जा रहे हैं।

भगवानदास—राम! राम! महात्माजी के अनुयायी यह क्या करने जा रहे हैं?

महीप—कुछ नहीं, सिर्फ अठारह लाख टन की जगह अब साल में छत्तीस लाख टन मछली मारी जायगी। अठारह लाख टन अन्न का घाटा तो पूरा होगा।

खोजीराम—यह भी कागजी योजना तो नहीं है?

महीप—दो करोड़ रुपये की योजना बनी है। अनुसंधान-स्टेशन स्थापित हो रहे हैं। उथले, गहरे समुद्रों तक में मछवाही की जायगी, और तालाब-नदी की तो बात ही क्या?

युधिष्ठिर—अच्छा, आज अब यहीं तक रहें, "हरि अनंत हरिकथा अनंता" के समान ही पेट की भी माया है।

दसवां अध्याय

कृषि-सुधार

शाम के पांच बज रहे थे। फिर गंगा-किनारे की उसी बड़ी हवेली की छत पर पंच लोग जमा हुए। स्वामी मुखपात्री के चेहरे को देखने ही से मालूम होता था, कि गोष्ठी उन्हें बहुत पसंद आई, और पहले दिन जो अजनबीपन प्रकट होता था, उसका अब कहीं पता नहीं था। आज बल्कि उन्होंने ही बात आरंभ की—मैं गोष्ठी के बारे में सुनकर कौतूहलवश यहां आया था। मैं जानता हूं, कितने ही लोग मेरे यहां आने को पसंद नहीं करेंगे। इसे वे आवश्यकता से अधिक सांसारिक समझते थे। मुझे पता लगा कि यहां इस गोष्ठी में सभी सत्य के खोजी हैं। महीप की कड़वी-मीठी बातें भी एकाधबार कुछ असमधुर-सी मालूम हुईं, लेकिन मैं समझ गया कि इस तरुण में भी बड़े निःस्वार्थभाव से सत्य की जिज्ञासा मौजूद है। यदि कभी वह गरम हो उठते हैं, तो इसका अर्थ किसी के प्रति द्वेष-भाव नहीं है, बल्कि खतरे से भरी परिस्थिति को देखकर भी संरक्षकों की उपेक्षा उन्हें असह्य मालूम होती है। मैं बाहर की बातों में समय नहीं लेना चाहता। जिज्ञासा के कारण मैं कुछ अधिक बोल देता हूँ, नहीं तो मैं उसकी आवश्यकता नहीं समझता। जन-वृद्धि भयंकर गति से हो रही है, अन्न की समस्या का हल अभी तक दीख नहीं पड़ रहा है। मैं यही चाहता हूं कि आप सब अन्न ब्रह्म को प्रसन्न करने का कोई रास्ता निकालें।

युधिष्ठिर—कोई नया रास्ता निकालने का सवाल नहीं है। रास्ते

निकले हुए हैं। दूसरे देशों में कैसे लोगों ने इस समस्या को हल किया? हमारे देश में सात मन एकड़ औसत तरीके से गेहूं होना बहुत समझा जाता है, शायद जिले का हिसाब लेने पर इतना भी नहीं पहुँचेगा। अर्थात् एक टन के लिए चार एकड़ की हमें आवश्यकता है। चार एकड़ की पैदावार में पांच आदमी किसी तरह खा सकते हैं। पांच आदमी का औसतोर से परिवार होता है। आप गांव में देखें तो मुश्किल से दस घर होंगे, जिनके पास चार एकड़ से अधिक जमीन होगी। उनके चारों एकड़ सात मन पैदा नहीं कर सकते; ६० फीसदी परिवार अपनी जमीन से पेट भरने के लिए अन्न नहीं पैदा कर सकते।

मुखपात्री—यह सच बात है, मैं अपने अनुभव से समझता हूं। सौ में से तीस घर तो ऐसे मिलेंगे, जिनके पास कोई खेत है ही नहीं, और साठ परिवार अपने खेत से पेट नहीं भर सकते। इस पर से हम हर गांव में देखते हैं, कि आज से साठ बरस पहले जहां एक घर था, वहां पांच[1] घर होगए, और कितने तो सात-सात आठ-आठ भी हो गए। जिन गांवों में परती, ऊसर या जंगल था, वहां काट के कुछ खेत बना लिया गया, लोगों को कुछ आसरा मिला। लेकिन, जिन गांवों में पिछली सदी के अंत तक सारे ऊसर या जंगल कटके आबाद हो चुके थे, उनकी हालत बहुत बुरी है। मुझे तो दिखाई पड़ता है, कि हमारे लोग दलदल में धँसते ही चले जा रहे हैं। सवाल इतना ही है, जितने मुँह हैं, उनको अन्न कैसे दिया जाय।

महीप—"जिन पेट दियो, तिन अन्न न देहैं।"

मुखपात्री—तुम्हारे परिहास को मैं बुरा नहीं मान सकता। तुम भगवान् को नहीं मानते, तो मैं किसी को जबर्दस्ती भगवान् मनवाने की बात भी पसंद नहीं करता। अपनी-अपनी श्रद्धा होती है। तुम्हारा

---

१ कलिम्पोङ् में साधारण परिवार प्राणधर परिवार को ले लीजिये। उनके पांच लड़के और दो लड़कियां थीं, आज पोते २१ और पोतियां १६ हैं। तीसरी पीढ़ी में दो से ४० हो गए।

कहना है, भगवान् ने मुँह तो चीर दिया है, फिर खाना भी देंगे। लेकिन मैं समझता हूँ, भगवान् ने आदमी को बुद्धि और हाथ-पैर भी दिये हैं, इसलिए स्वयं रास्ता निकालना चाहिए। युधिष्ठिर जी बतलायें कि कैसे वृद्धि को रोका जाय और कैसे खाना दिया जाय। बाढ़ आँखों के सामने ही बढ़ती आ रही है।

भगवानदास—हां धर्मावतार! कल की बात सुनकर मैं भी भयभीत हो चला। मेरे कोई संतान नहीं है, अभी मेरी पत्नी २४ बरस की है। माँ और सब लोग तंग कर रहे हैं, कोई कहते हैं दूसरा ब्याह कर लो। और तो और, पत्नी भी कहती है कि निर्वंश होना अच्छा नहीं है। लेकिन कल की बात सुनकर मैंने अपने भाग्य को सराहा। मैं अब कोशिश करूँगा कि कोई संतान हो ही नहीं। किसी भी बिना माँ-बाप के होनहार बच्चे को लेकर अपना बना लेंगे।

खोजीराम—चिकित्सा-विज्ञान में ऐसे साधन मौजूद हैं जिससे संतान को रोका जा सकता है। इंगलेंड में अभी पांच साल तक गवेषणा करके राजकीय-कमीशन ने रिपोर्ट दी है, बतलाया है कि २.२% ही संख्या की वृद्धि है।

भगवानदास—दो तो माँ-बाप ही हुए, उसका मतलब हुआ कि पांच आदमी पर एक की वृद्धि, सो भी कितने सालों के बाद हुई है?

खोजीराम—इस शताब्दी में इंगलैंड की जन-संख्या में बहुत कम वृद्धि हुई है, वहां बढ़ाने की कोशिश हो रही है। लेकिन मैं यह इसलिए कहना चाहता था, कि चूंकि सभी साक्षर और शिक्षित हैं, वह अच्छे खाते-पीते हैं, यदि दो से चार बच्चे पैदा होते हैं, तो उनकी आमदनी प्रति व्यक्ति कम हो जाती है, जिससे जीवन-तल को ऊपर नहीं रख सकते। इसीलिए वह प्रयत्न करते हैं, कि संतान सीमा से अधिक न होने पाये।

महीप—अर्थात् मनुष्य के सामने भगवान् की एक भी नहीं चलती। यदि मनुष्य साक्षर और शिक्षित हो जाय, खाने-पीने का तल ऊँचा हो,

तो वह भी अधिक संतान पसंद नहीं करेगा। बहुत तो एक लड़का और एक लड़की काफी समझेगा।

युधिष्ठिर—मैं समझता हूं कि अभी इतनी जनवृद्धि के बाद भी यदि हम अकल से काम लें, तो हम अपने यहां अच्छे खाने-पीने, रहन-सहन के जीवन तल के साथ रह सकते हैं। जिसकी इच्छा हो, वह संतति-निरोध करे, किन्तु इस शताब्दी तक जितनी हमारी संख्या बढ़ सकती है, उसके लिए हम सभी चीजें पर्याप्त परिमाण में पैदा कर सकते हैं।

रामी—जहां तक मशीन की चीजों का संबंध है, उसके बारे में संदेह नहीं है। हम अपनी आवश्यकता से अधिक कपड़ा बना सकते हैं, कपास की उपज बढ़ाई जा सकती है और काम करने वालों की संख्या को भी। किंतु अन्न बड़ी समस्या रह जाती है।

युधिष्ठिर—अन्न की कमी का एक कारण तो यह है, कि खेतों की उपज दूसरे देशों से छठे-पांचवें और चौथे ही हिस्से-भर है।

भगवानदास—अर्थात् जहां दूसरे ४२ मन गेहूं पैदा करते हैं, वहां हम सात मन औसत गेहूं घर लाते हैं; जहां दूसरे ३५ मन चावल पैदा करते हैं, वहां हमारी औसत पांच मन की होती है। हमारे यहां भी ४००० पौंड अर्थात् ५० मन के करीब धान एक एकड़ में पैदा किया गया है।

युधिष्ठिर—दूसरे लोग जादू-मंतर नहीं करते। बस, खेती में खाद, पानी, जोताई और अच्छे बीज का प्रबन्ध करते हैं, साइंस (विज्ञान) की सहायता लेते हैं, हाथ और बुद्धि दोनों चलाते हैं, उसीका परिणाम है, कि हमसे पांच-गुना से सात-गुना तक अन्न पैदा करते हैं। खाद्य-विभाग के सचिव पंजाबी ने कहा है, कि यदि हम केवल १० प्रतिशत पैदावार बढ़ा दें, तो हमारे ही नहीं बढ़ने वाले मुखों के लिए भी देश में अन्न पर्याप्त हो जायगा। यदि हम सिंचाई का इन्तजाम करें, खाद का इन्तजाम करें, तो पाँच-गुना अधिक अन्न पैदा हो सकता है। फिर अनाज का क्यों घाटा रहेगा?

रामी—क्या हमारे पास इन सब बातों के साधन हैं ?

युधिष्ठिर—सारे साधन हैं, बल्कि यूरोप के देशों से अधिक हैं। हमारे यहाँ की प्रकृति हमारे प्रति कठोर नहीं है, जितनी यूरोप के अधिक भाग की है। वहां अक्तूबर से मार्च के अन्त तक कोई फ़सल नहीं हो सकती। बरफ पड़ जाती है, खेत ढँक जाते हैं। जब बरफ पिघलती है, तभी काम होता है। हमारे यहां तो हर खेत में तीन फसलें आसानी से हो सकती हैं। धान के खेत में भी अगहन में धान काट लेने के बाद आषाढ़ तक छ महीने वह सूखा पड़ा रहता है। क्या उसे जोत-कर खाद दे सिंचाई करके हम दो फसल और नहीं पैदा कर सकते हैं ? जापान में बर्फ पड़ती है, तो भी बीच के थोड़े-से समय से फायदा उठा-कर मैंने किसानों को धान के खेत में स्ट्राबरी और तरकारियां पैदा करते देखा है। हमारे यहां भी धान के खेतों में जाड़ों में कोई तरकारी बोई जा सकती है; फिर प्याज या चीना की खेती हो सकती है। जो धान के खेत नहीं हैं, जिनमें गेहूं-जौ बोया जाता है, उनमें तो पानी का अच्छा प्रबन्ध होने पर पांच फसल पैदा कर सकते हैं। हर हालत में अपनी फसल को आज से दुगुनी कर सकते हैं, और यदि दूसरे देशों के अनु-सार ही हम भी पैदा करने लगें, तो आज से पांच-गुना अधिक अन्न होगा। यदि तीन भी मान लें तो फसल के दूने के हिसाब से छ-गुना अधिक पैदा कर सकते हैं।

भगवानदास—और हमारे यहां खेती की भूमि कितनी है ?

युधिष्ठिर—कांग्रेस सभापति श्री सीतारामय्या के भाषण के अनु-सार—(१) अन्न उपजाने वाली सारी भूमि १६ करोड़ एकड़ है, जिसमें (क) सिंचाई वाली ५ करोड़ और (ख) कवज़ राम-भरोसे अर्थात् वर्षा से फसल पैदा करने वाली भूमि १० करोड़ एकड़ है। (२) सिंचाई आदि की बहुविध योजनाएं १५ वर्षों में २.७० करोड़ एकड़ और देंगी, जोकि तब तक बढ़ी जन-संख्या के लिए पर्याप्त होगी। दूसरी तरह विचार करते हुए उन्होंने कहा—(१) जोती भूमि

हमारे यहां प्रति-व्यक्ति '६ (२/५) एकड़ है। (२) कम-से-कम आवश्यक कलोरी प्रतिदिन प्रति पुरुष १७५० चाहिए, जिसे करीब एक एकड़ की वार्षिक उपज से निकाला जा सकता है।

भगवानदास—तो निराश होने की आवश्यकता नहीं, जब हमारे पास प्राकृतिक साधन मौजूद हैं।

युधिष्ठिर—रमय्या जी ने यह भी बतलाया—मलेरिया के कारण हमारे पास दो लाख वर्गमील अथवा १२ करोड़ एकड़ भूमि बेकार पड़ी है।

भगवानदास—किस कोने में है यह जमीन, हमें तो गोचरभूमि के लिए भी भूमि दिखलाई नहीं पड़ती।

युधिष्ठिर—(१) पूर्वीघाट में गंजाम से विजगापटम तक के जिलों में ६०,००० वर्गमील भूमि पड़ी है, फिर (२) पश्चिमीघाट और (३) हिमालय की तराई में। इन जंगलों में ५० से १०० इंच तक वर्षा होती है, किन्तु मलेरिया के कारण वहाँ प्रति वर्गमील ५० से १०० व्यक्ति रहते हैं, जबकि सीतामढ़ी सबडिवीजन में १३०० प्रति वर्गमील २८ साल पहले थे। हमें २५ या ३० करोड़ एकड़ खेत चाहिए, जिसमें १६ करोड़ एकड़ जोत मौजूद है; दामोदर आदि योजनाओं के १५ साल में पूरा होने पर २.७ करोड़ एकड़ और निकल आयंगे।

महीप—और तब तक सात करोड़ मुँह जो और बढ़ जायंगे ?

युधिष्ठिर— मैं डाक्टर रमैया की बात कर रहा हूँ। १८.७ करोड़ एकड़ भूमि तो पक्की ठहरी, मलेरिया-भूमि से १२ करोड़ एकड़ निकाले जा सकते हैं। ३०.७ करोड़ एकड़ खेत, खाने वाले ३० करोड़, प्रतिमुख एक एकड़। "लेखा-जोखा थाहें लड़का मुये काहे।"

भगवानदास—तो मामला फिर खटाई में ?

युधिष्ठिर—नहीं फसलों की संख्या दुगुनी करनी होगी, उपज तिगुनी और फिर बेकार जमीन को आबाद करना; सब मिलाकर हम आज से आठ-गुना अधिक अन्न पैदा कर सकते हैं।

भगवानदास—और पंजाबी ने केवल १० प्रतिशत उपज बढ़ाने से बेड़ा पार बतलाया था। यह भी तपियोका और लाल बुझक्कड़ की बात तो नहीं है?

महीप—नहीं, न लाल बुझक्कड़ के बताये रास्ते से काम बनेगा और न तपियोका के खाने के आविष्कार को मान लेने से ही।

भगवानदास—यदि आज से हम सात-गुना अधिक पैदा कर सकें, तो अवश्य हम भारत के एक अरब मुखों को भी अन्न का टोटा नहीं होने देंगे। मैं समझता हूं, शिक्षा और दाने-कपड़े का प्रबन्ध हो जाय तो आदमी संतान के लिए हाहाकार नहीं करेगा। कैसी बेवकूफी है, कहते हैं संतान नहीं रहे तो नाम नहीं चलेगा? लेकिन मैं ही आपके सामने हूँ, अपने परदादा का नाम नहीं जानता, न परदादी का, सात पीढ़ी की तो बात ही मत पूछिये।

रामो—यदि लिखा-पढ़ी रहे, तो शायद सात पीढ़ीवाले दादा का नाम मालूम भी हो जाय, किन्तु दादी का तो कभी नहीं मालूम हो सकता।

युधिष्ठिर—लेकिन सवाल है, कि सात-गुना अधिक अन्न कैसे पैदा किया जाय?

महीप—हमारे प्रधानमंत्री और खाद्य-मंत्री दोनों ने जब १९५१ से भारत की सीमा के भीतर अन्न का घुसना रोक देने की भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली है, तो सात-गुना अन्न बढ़ाने का कोई उपाय सोचा ही होगा?

भगवानदास—महीप भाई, तुम क्यों उन बेचारों के ऊपर हर वक्त दो वाण चलाने के लिए तैयार हो जाते हो? अपनी शक्ति की सीमा होती है, वे भी अपनी शक्ति-भर कुछ करना चाहते हैं।

महीप—करना चाहते तो भगवान भाई, मुझे कभी दुख नहीं होता। अगर कहा होता कि १९५१ में दामोदर, कोसी, महानदी, कृष्णा, नर्मदा, भखरा के बाँध और नहर की विशाल योजनाएं पूरी हो जायंगी, बिजली घर-घर पहुंचने लगेगी, पानी करोड़ों एकड़ खेतों में बहने लगेगा, तो मैं

कभी रुष्ट नहीं होता। इन छ योजनाओं की नहीं अगर तीन योजनाओं के बारे में भी कहा जाता, तो मुझे कुछ कहना नहीं था। मेरे देह में तो आग इसलिए लगी, कि जिस गति से कागजी कार्रवाई की जा रही है, उससे १९५१ तक एक में भी शतांश काम नहीं हो सकेगा। और इस पर भी ये लोग अन्न की कमी को जबानी कहके हटा देना चाहते हैं।

युधिष्ठिर—अन्न अधिक उपजाना, किसी लाल बुझक्कड़ के महान् परामर्श से नहीं हो सकता। हमें कोशिश करनी है, कि धरती के भीतर जो गंगा बह रही है, उसे बिजली के ट्यूबवेल को लगाकर किसानों के खेतों के लिए अत्यन्त सुलभ कर देना है। आज से सौ-पचास वर्ष पहले यह समस्या हो सकती थी, जबकि कूँए में चुल्लू भर पानी उलीच करके खेत सींचते थे। आज तो ६ या १२ इंच मोटा पाइप धरती में गाड़ दीजिये, बिजली का इंजन लगा दीजिये, और बीस-बीस एकड़ जमीन सींच लीजिये। हर दो-दो सौ गज पर ऐसे ट्यूब भारत के बहुत-से भागों में लगाये जा सकते हैं। हम धरती के भीतर बहती गंगा का उपयोग आसानी से कर सकते हैं।

भगवानदास—जहाँ पहाड़ है, जैसे सागर, दमोह वहाँ कैसे सिंचाई की समस्या हल हो सकती है ?

युधिष्ठिर—पहाड़ी जमीन ऊँची-नीची होती है। हमारे देश में प्रायः सभी जगह वर्षा खूब होती है। हम वर्षा के पानी को नदियों की बाढ़ बनके समुद्र में क्यों जाने दें। ऊँची जगह पहाड़ियों को घेर-घेर के नाला-नदियों के लाये वर्षा के पानी को जमा कर बड़े-बड़े "समुन्दर" बना सकते हैं। ऊँचे होने की वजह से इनसे पनबिजली भी खूब बनाई जा सकती है, सिंचाई का अच्छा इन्तजाम हो सकता है।

भगवानदास—तब तो मारवाड़ के रेगिस्तान को छोड़ सभी जगह इस समस्या को हल कर सकते हैं।

युधिष्ठिर—मारवाड़ के मैदान में हमें देखना होगा, कि हम उससे क्या लाभ उठा सकते हैं; लूनी नदी में परीक्षा हो रही है। कूँए यदि

हजार फीट पर भी पानी दे सकें, तो हमें खोदने से बाज नहीं आना चाहिए। पानी जितना जमा कर सकते हैं, नदियों के पानी को घेरके सरोवर बना सिंचाई कर सकते हैं, सब करना होगा। साथ ही, रूस में रेगिस्तानों में वृक्ष लगाने के सफल तजर्बे हुए हैं—वहाँ हर तरह के नहीं खास तरह के वृक्ष लग सकते हैं, जिनका कम पानी में गुजारा हो सकता है। लगे हुए वृक्ष कुछ पानी को सोखकर अपने पास जमा करेंगे। तरबूज, खरबूज यहाँ तक कि अंगूर को भी रूसवालों ने अपने रेगिस्तानों में सफलतापूर्वक खाइयों में उगाया है। हम भी उसे कर सकते हैं। फिर क्या मालूम है, हमारे रेगिस्तानों के भीतर कहीं पेट्रोल न निकल आये। तुर्कमानिया (सोवियन) में रेगिस्तान में गंधक की बहुत बड़ी खान निकल आई है।

मुखपात्री—सिंचाई का हमारे यहाँ सुभीता है। नहर बांध बनाने के लिए हमारे पास करोड़ों हाथ हैं, इञ्जीनियरों का थोड़ा-सा ध्यान देने पर हमें दुःख नहीं होगा। सीमेंट बाहर से मंगाने की आवश्यकता नहीं। मशीन और विशेषज्ञ हम कितने ही बना और तैयार कर सकते हैं, और कितने ही बाहर से अपनी चाय-जूट के बदले मंगा सकते हैं।

युधिष्ठिर—खाद भी हमारे यहाँ खनिज-तत्वों से यथेच्छ बनाई जा सकती है। जिप्सम् से रसायनिक खाद बनाने का एक कारखाना बिहार में तैयार किया जा रहा है, इसे पश्चिमी-पंजाब के जिप्सम् के भरोसे तैयार करने का निश्चय हुआ, अब वह जिप्सम् पाकिस्तान में चला गया। लछमण-झूला (देहरादून) के पास भी जिप्सम् है। चाहिए था, कि फैक्टरी वहीं खोली जाती, किंतु एकदम विदेशी कंपनियों के हाथ में खेलना घाटे का सौदा होता है। अस्तु। रसायनिक खाद के हमारे पास बहुत जखीरे देश के भिन्न-भिन्न भागों में मौजूद हैं। हम सिंदरी जैसे अनेक कारखाने खोल सकते हैं।

महीप—और हम अपने गोबर को भी तो खाद के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।

जिन देशों ने इस तत्व को स्वीकार कर लिया, वह सुखी हैं। लेकिन विज्ञान का कृषि में उपयोग आजकल के किसानों के ढंग पर नहीं हो सकता। चार एकड़ और दो एकड़ के खेतों में—सो भी दसियों जगह बिखरे हुए—कैसे कृषि-विज्ञान का उपयोग कर सकते हैं? कैसे वह नवीन हथियारों का इस्तेमाल कर सकते हैं? इसलिए हमें खेती को साझे की खेती में परिणत करना होगा।

भगवानदास—साझे की खेती लोग पसंद करेंगे?

युधिष्ठिर—यदि आप सात-आठ गुना अधिक पैदा करके दिखा दें, तो वह साझे की खेती के पक्षपाती हो जायंगे। उन्हें हवाई-सहयोग की बात कहके सहयोग करने वाला नहीं बना सकते, लेकिन यदि आप ऐसा करके दिखलायें, जिसमें आमदनी सात-आठ गुना हो जाय, तो किसान उसे खुशी से स्वीकार करेंगे। ऊख से किसानों ने बहुत फायदा देखा, चीनी की मिलों के बनने के बाद अधिक दाम में ऊख बिक जाती है, इसलिए सब छोड़-छाड़कर किसानों ने ऊख पर ध्यान दिया। लाभ दिखाइये, फिर किसानों से बढ़कर नई चीज को मानने वाला कोई नहीं होगा। यदि उन्हें मालूम हुआ, कि साझी खेती से नफा है, तो वह बड़ी खुशी से उसे स्वीकार कर लेंगे।

भगवानदास—साझे की खेती से किसान भड़केंगे जरूर, और आप लेक्चर के भरोसे उन्हें अपने मत में नहीं ला सकते। साझे की खेती जहाँ शुरू की जाय, तो सरकार को चाहिए कि कृषि-मशीन, (ट्रेक्टर आदि), सिंचाई-पम्प तथा दूसरी चीजों को सबसे पहले साझे की खेती वालों को दी जाय, ताकि वह लोगों को दिखला सकें, कि साझे की खेती में अधिक लाभ है। साझे की खेती में मेंड़ों को तोड़ दिया जायगा। बड़े-बड़े खेतों की सूरत में चकबंदी कर दी जायगी। वैज्ञानिक कहते हैं, कि हमारी मेंड़ों को हटा देने पर चूहे आदि जानवर जितना अन्न बरबाद करते हैं, उससे चौथाई अन्न बचाया जा सकता है। फिर

साझे की खेती में मेंड़ का झगड़ा नहीं रहेगा, न खेत के लिए लड़ाइयाँ चलने पायेंगी।

भगवानदास—लेकिन साझे की खेती में मजूरी कैसे मिलेगी? खेत के छोटे जमींदारों की क्या हालत होगी?

युधिष्ठिर—मजूरी काम के मुताबिक मिलेगी। हरेक काम का एक नाप रखना होगा। जो नाप के बराबर काम कर दे, उसे एक दिन गिनना चाहिए, यदि दूना कर दे तो एक ही दिन में दो दिन की हाजिरी करनी चाहिए और नाप का आधा काम करने वाले की हाजिरी में आधा दिन माना जाय।

मुखपात्री—यह साफ हो गया। जो अच्छा काम करेगा, उसे अच्छा पैसा मिलेगा, जो कम काम करेगा उसे कम।

युधिष्ठिर—और छोटे जमींदारों या खेत के जोतने वाले मालिकों को आज की आमदनी पर खेती के खर्च को काटके उतना वार्षिक दे देने पर छोटे-मोटे जमींदार भी नाराज़ नहीं होंगे।

महीप—यदि सौ में एकाध नाराज हों तो उनकी नाराजगी की परवाह नहीं करनी पड़ेगी।

युधिष्ठिर—खेती को हम यदि साझे की कर देते हैं, तो उसमें विज्ञान और कृषि के नवीनतम हथियारों का इस्तेमाल अच्छी तरह कर सकते हैं, फिर उपज के आज से दस गुनी बढ़ जाने में कोई संदेह नहीं है। साथ ही खाली बैठे दिनों के लिए गाँव-गाँव में छोटे-मोटे गृह-उद्योग कायम कर दिये जा सकते हैं, जिसमें इफ्रात की बिजली के भी सहायक हो जाने पर ग्रामोद्योग चमक उठेगा।

मुखपात्री—कल तो मैं निराश हो गया था। समझता था, अन्न और जन-वृद्धि की समस्या देश को डुबाकर रहेगी। लेकिन आज मालूम हुआ, कि निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

युधिष्ठिर—कमर बाँध के खड़े हो जाने की आवश्यकता है। आगे सब काम हो जायगा। फिर जन-वृद्धि हमारे लिए डर की बात नहीं

होगी। जितने ही नये मुख पैदा होंगे, वह सयाने होकर देश का धन बढ़ायेंगे।

भगवानदास—यदि उन्होंने भी ऐसे ही आँख मूँद रखा, और कुछ करना नहीं चाहा ?

युधिष्ठिर—तो लाल भवानी आके खा जायगी। जानते हैं न, चीन में लाल भवानी आ गई। अन्न की सारी समस्या हमारे हाथों से हल होने लायक है, लेकिन थोथे लम्बे-चौड़े लेक्चर से कुछ होने वाला नहीं है। गाँव की कृषि और गृहोद्योग के द्वारा आर्थिक-व्यवस्था को बेहतर बनाना होगा और जैसा कि आज हमने बतलाया, ऐसे तरीके हैं, जो हमारे हाथ में हैं, जिनसे उपज बढ़ सकती है। अच्छा, आज गोष्ठी यहीं पर समाप्त होती है।

ग्यारहवां अध्याय

सर्वोदय और रामराज्य

गंगा-किनारे छत पर आज छओं पंच विराजमान थे। जान पड़ता है, भगवानदास और मुखपात्री जी ने निश्चय कर लिया था, कि आज भारतवर्ष के सुझाये रास्ते से अपनी आधुनिक समस्याओं को हल करने के रास्ते के बारे में बात करनी होगी। भगवानदास जी ने ही बात आरंभ की—हमारे आगे बढ़ने में बहुत-सी रुकावटें हैं। हम और भी दूसरे हल सोच रहे हैं, लेकिन हमारे भारत ने भी अपने लम्बे इतिहास में समस्याओं के हल करने का उपाय सोचा है। मैं यह नहीं कहता, कि भारत के दिमाग की सोची बात होने से हम "तातस्य कूपोयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिवन्ति", का अनुकरण करें।

खोजीराम—अपने पूर्वजों की सोची हुई, अपनी जन्मभूमि में बरती हुई बात का ध्यान सबसे पहले करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। महीप जी को भी इसमें कोई उज्र नहीं होगा।

महीप—नहीं, बिलकुल नहीं। अपने से प्रेम किसको नहीं होता?

भगवानदास—गांधीवाद-परम-निष्णात श्री शंकररावदेव ने १३ मार्च (१९४९ ई०) को महाराष्ट्र के प्रधान कांग्रेस कार्यकर्ताओं के कैम्प में भाषण देते हुए कहा था—"स्वतंत्रता के बाद हमने सामाजिक-आर्थिक समानता की स्थापना की शपथ ली थी। कांग्रेसजनों का कर्तव्य है कि अपनी नैतिक आवश्यकताओं से अधिक संपत्ति न जमा करने की प्रतिज्ञा करें, और किसी रूप या आकार में जात-पांत को न स्वीकार

करें, न मानें। इस प्रकार अपनी शपथ पर दृढ़ रहते हुए हम काफी नैतिक-बल जमा कर सकते हैं, जिससे एक नई अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था—सर्वोदय-समाज—स्थापित कर सकते हैं।" सर्वोदय-समाज का अर्थ ही है, सबकी उन्नति करने वाला समाज।

खोजीराम—सबके उदय की इच्छा रखना बुरा नहीं है, लेकिन कितनों के स्वार्थ दूसरों से टकराते हैं, इसलिए व्यवहार में, मैं समझता हूं, सर्वोदय-समाज नहीं, बल्कि बुद्ध का बहुजनोदय समाज ही ठीक उतर सकता है।

मुखपात्री—आस्तिक होते हुए भी मैं बुद्ध का सम्मान करता हूं। आपने बुद्ध का नाम लेकर भगवानदास का मुंह बंद करना चाहा है।

खोजीराम—बिलकुल नहीं, बुद्ध ने अपने शिष्यों को दुनिया में जाने के लिए सर्वप्रथम उपदेश हमारी इसी पुरानी काशी नगरी के छोर पर अवस्थित सारनाथ में दिया था—"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय।" बुद्ध बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय की जगह सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय कह सकते थे; लेकिन वह जानते थे, कि चोरों-डाकुओं के हित-सुख की बात कहने से बहुजनों का अनिष्ट होगा। उन्होंने "प्रियं ब्रूयात्" के धोखे में असत्य का बोलना पसंद नहीं किया।

भगवानदास—क्या यह अच्छा नहीं है, कि हम मनुष्यमात्र में आर्थिक और सामाजिक एकता स्थापित करें?

खोजीराम—मनुष्यमात्र में आर्थिक एकता स्थापित करना और सर्वोदय बिलकुल एक दूसरे से उलटे हैं। समानता स्थापित करने के लिए उन लोगों के साथ अप्रिय आचरण करना होगा, जोकि आर्थिक और सामाजिक विषमता के पोषक हैं, बल्कि जिनका अस्तित्व ही उसी विषमता पर कायम है। सर्वोदय से बहुजनोदय अधिक व्याव-हारिक और ईमानदारी की बात मालूम पड़ती है।

भगवानदास—तो सत्य अहिंसा के पुजारियों की नीयत पर आपको

विश्वास नहीं है। आप समझते हैं, कि वह धोखा देने के लिए ऐसा कहते हैं ?

खोजीराम—मैं उनकी नीयत पर कभी आक्षेप नहीं करता, लेकिन नीयत का समझना मुश्किल है। हां, यह कह सकता हूं, कि वह जिस शब्द को इस्तेमाल कर रहे हैं, उसके अर्थ को समझ नहीं पाते। शायद सर्वोदय से उनका अर्थ बहुजनोदय है, क्योंकि चोर की चांदनी का समर्थन वह कभी नहीं करेंगे। आप कह सकते हैं, चोर की चोरी छुड़ाने के लिए उसे जेल भेजकर हम उसका भी हित चाहते हैं।

महीप—आप कह सकते हैं कि हम दूसरे जन्म में उनका हित चाहते हैं, उनके परलोक को बनाना चाहते हैं, किन्तु इससे आप सिर्फ बात को गोल-मटोल रखना चाहते हैं।

भगवानदास—गोल-मटोल क्यों कहते हैं? "सर्वोदय के मौलिक सिद्धान्त का आधार है—सभी आदमी समान हैं। मानव के पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम द्वारा नियन्त्रित होने चाहिएं, न कि शक्ति द्वारा। इस सिद्धान्त का राजनीतिक क्षेत्र में प्रयोग करने पर वह जनतन्त्रता का रूप लेता है। आप सर्वोदय समाज को केवल जनतान्त्रिक संस्थाओं द्वारा ही स्थापित कर सकते हैं, क्योंकि जनतन्त्रता मनुष्य के बीच समानता के ही सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करती, बल्कि यह भी विश्वास करती है, कि वास्तविक मानव-प्रगति की ओर ले जाने वाला कोई भी परिवर्तन सिर्फ शिक्षा और मनुष्य के परिवर्तन द्वारा ही लाया जा सकता है।" शंकरदेवजी ने बात को कितना स्पष्ट कर दिया? इस पर भी आप गोल-मटोल होने की बात करते हैं।

महीप—भगवान भाई, वहीं पर आपके ऋषि शंकरदेवजी ने यह भी स्वीकार किया है—"दूसरे आदमियों के साथ हमारा जीवन और सम्बन्ध प्रेम की अपेक्षा लोभ द्वारा, सेवा की अपेक्षा अधिकतर शक्ति द्वारा प्रभावित होता है। विशेष कर देश, सम्प्रदाय, जाति या वर्ग के नाम से हम मनुष्य-मनुष्य के भीतर दीवार खड़ी कर देते हैं और फिर

लड़ते है।" मनुष्य किन बातों से अधिक प्रभावित होता है, उसे खुले तौर से कहके शंकरदेव फिर गोल-मटोल बोलने लगते हैं—"हम भूल जाते हैं, कि मनुष्य इन सबसे ऊपर है, यह सब मनुष्य के लिए है, किन्तु मनुष्य उनके लिए नहीं है।" थोड़ा अँधेरे में जाकर फिर वह प्रकाश में आते हैं—"मनुष्य के शक्ति-सम्बन्धी लोभ और राग के भेद सब तरह के शोषण और उत्पीड़न की ओर ले जाते हैं, जिसका परिणाम हिंसात्मक संघर्ष और युद्ध होते हैं।"

भगवानदास—आप अँधेरे और प्रकाश की बात क्यों करते हैं? मनुष्य की निर्बलताओं के बारे में शंकरदेवजी ने बतलाया है, उससे कौन इन्कार कर सकता है? निर्बलताओं को हटाना होगा, तभी मनुष्य ऊपर उठेगा।

महीप—फिर आप वेदान्त और रहस्यवाद की बात करने लगे। आर्थिक और सामाजिक समानता को आखिर आप कैसे लाना चाहते हैं। उपदेश और हृदय परिवर्तन से लाना चाहते हैं, यह कहना आसान है। केवल सर्वोदयवादियों ने ही यह नुस्खा नहीं बतलाया, पहले भी बुद्ध, महावीर, ईसा जैसे महान् पुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपने उपदेश और आचरण द्वारा हृदय परिवर्तन कितना कर पाया? पिछले ढाई हजार वर्षों के प्रयत्न से तो इससे कोई अन्तर नहीं आया। यदि आप ढाई हजार वर्ष और भी प्रयत्न करना चाहते हैं, तो कीजिये; हम आपका रास्ता नहीं छेंकते, लेकिन ढाई हजार वर्ष के प्रयत्न से जिस नुस्खे को सफल होते नहीं देखा जा सका, उस पर और विश्वास करना अनेक पीढ़ियों को भयंकर उत्पीड़न और शोषण की चक्की में पिसने के लिए छोड़ देना है। यह मत समझिये कि गाँधीजी के महान् आदर्श को हम सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। मानव-मात्र में बन्धुता गाँधी जी का सिद्धान्त है, जिसे हम मानते हैं। जात-पांत के भेद-भाव से हम भी उसी तरह नफरत करते हैं, जैसे गाँधीजी। गाँधीजी उत्पीड़ित मानवता का कल्याण चाहते थे, इसका अर्थ यह नहीं कि वह

किसीको हानि पहुंचाना चाहते थे। गाँधीजी चाहे "सर्व" शब्द का प्रयोग करते हों, किन्तु उनके सामने सदा बहुजन का हित रहता था, नहीं तो खूनी दरिन्दे के मुँह से उसका शिकार क्यों छीनते?

मुखपात्री—आप हमारे भारत के विचारकों की बात की कदर नहीं करना चाहते।

महीप—स्वामीजी, मैं आपकी बातों को बहुत ध्यान से सुनूंगा, चाहे वह मेरी राय के अनुकूल हों या प्रतिकूल। यह इसीलिए, कि मैं समझता हूं, आपने हमारे पुराने विचारकों के विचारों को गम्भीरता-पूर्वक पढ़ा है, समझने की कोशिश की है, और आचरण करने का भी ख्याल रखा है। लेकिन जब जीवन-भर पश्चिमी-पत्तल का जूठन चाटने वाले आजकल के शिक्षित अपने पूर्वजों की बातों को अटकल-पच्चू जहाँ-तहाँ से सुनके व्यासगद्दी पर बैठकर धर्मोपदेश करने लगते हैं, तो शरीर में आग लग जाती है, केवल उनकी अनधिकार चेष्टा देखकर—"कौआ चले हंस की चाल"।

खोजीराम—बड़ा व्यंग कर रहे हो महीप जी, आखिर कौन ऐसा अनधिकारी ऋषियों की गद्दी पर जा बैठा?

महीप—मत पूछिये डाक्टर साहब, आप यदि डाक्टरी-विद्या, शल्य-चिकित्सा के बारे में कुछ कहें, तो हम उसे बहुत ध्यान से सुनेंगे, क्योंकि हम जानते हैं, आपने इस विद्या का अवगाहन किया है। लखनऊ विश्व-विद्यालय के राजनीति के अध्यापक डाक्टर शर्मा अपने विषय में और उसकी भाषा में कुछ कहते, तो वह हमारे सुनने की बात थी; किन्तु ७ जनवरी (१९४९ ई०) को नागपुर में राजनीति-विज्ञान-सम्मेलन में बोलते हुए आपने अपने को समझ लिया कि हम साक्षात् व्यासजी अथवा नैमिषारण्य के पौराणिक सूतजी की गद्दी के अधिकारी हैं। भारतीय संविधान की स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता पर संतुष्ट हो आप कर्तव्य, सम्मान और दिव्यता को भी सृजनात्मक नागरिकता के लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाते हैं। डाक्टर साहब ने इन तीनों

शब्दों के लिए ड्यूटी (कर्तव्य या धर्म), डिग्निटी (सम्मान), डिविनिटी (दिव्यता) जैसे अनुप्रासबद्ध शब्दों का प्रयोग किया है। जीवन-भर राजनीति-विज्ञान को पढ़ाते हुए डाक्टर शर्मा, ज्ञान पड़ता है, अब चौथेपन की ड्यूटी की बात सोच रहे हैं, इसलिए इस बात का खेद प्रकट करते हैं कि हमारे संविधान निर्माता अपने पूर्वजों की संस्कृति के मौलिक सिद्धान्तों की अवहेलना कर रहे हैं। उनके विचार में ऐसा प्रयत्न न सन्तोषजनक हो सकता है न चिरस्थायी। वह सुझाव देते हैं कि हमारा नया संविधान यदि सारतः गाँधीवादी दर्शन को लिये होता, तो अच्छा होता।

रामी—सचमुच ही श्रीमती शर्मा को सजग कर देना चाहिए, डाक्टर साहब वानप्रस्थ या संन्यास की तैयारी में हैं। विधान को वह पृथ्वी से ऊपर उठाना चाहते हैं।

महीप—हाँ, क्योंकि वह गाँधीजी के दर्शन को रामराज्य का आदर्श बतलाते हुए उसे अव्यवहारिक उटोपिया नहीं मानते। उनका कहना है—यह पूर्ण सामाजिक दर्शन है, जो कि भारतीय-सभ्यता के आदर्श की कसौटी पर बहुत बार कसके स्थापित किया गया है। डाक्टर साहब का कहना है कि यदि हमारे नेताओं में हिम्मत, दूरंदेशी और निश्चय करने की शक्ति हो, तो हमारी बहुसंख्यक उलझी हुई समस्याओं का सन्तोषजनक हल निकल आ सकता है।

खोजीराम—शाबाश डाक्टर साहब, शर्मावंश का आदर्श तो जरूर आपने हमारे सामने रखा, चाहे वैज्ञानिक डाक्टरों के वंश से भले ही बहुत दूर चले गए हों। गांधीजी का नाम कितनों को उबार रहा है, फिर आप नाम-प्रताप से क्यों वंचित रहें ?

भगवानदास—रामराज्य गांधीजी का दर्शन है और रामराज्य ही सर्वोदय है, जिससे मानवमात्र की समानता अभीष्ट है।

महीप—और डाक्टर साहब श्रीमुख से कह रहे हैं, कि यह हमारी सारी उलझी गुत्थियों के सुलझाने की रामबाण औषधि है। तो फिर

हमारे नेतृत्व को क्यों नहीं ऐसी औषधि दोनों हाथों लेकर सिर पर चढ़ानी चाहिए, अथवा हिम्मत, दूरंदेशी और दृढ़ निश्चय का अभाव होने पर उन्हें चाहिए कि गुत्थियों को सुलझाने के लिए बहुत महंगे अंग्रेज या अमेरिकन परामर्शदाताओं को छोड़, डाक्टर साहब की शरण में जायं, सारा भार उन्हें सौंप के अलग हो जायं। लखनऊ की राजनीति शास्त्र की गद्दी से उठकर जो व्यास की गद्दी पर बैठ सकता है, उसके लिए नेताओं की गद्दी संभालना भार नहीं होगा।

रामी—हमने तो रामायण में पढ़ा था, "दैविक दैहिक भौतिक तापा। रामराज्य काहू नहिं व्यापा॥" उधर पुराने रामायण की कथाओं में पढ़ा था, कि एक शूद्र ने केवल यह अपराध किया था, कि वह भगवान् की तपस्या कर रहा था, जिस पर राम ने जाकर उसका सिर काट लिया। कहीं ऐसा रामराज्य आज मत चला आये, नहीं तो अम्बेदकर और जगजीवनराम को तो पहले से ही कोई उपाय कर लेना होगा, नहीं तो खैरियत नहीं। लेकिन हमारे डाक्टर साहब कौनसे रामराज्य को मानते हैं?

महीप—"एक ऐसा राज्य जिसमें प्रत्येक नागरिक अपनी उन्नति और सुख के लिए पूर्णतम अवकाश और अवसर पाये।"

खोजीराम—आदमी-आदमी में भेदभाव नहीं, किसी के स्वार्थ में बाधा डालने की आवश्यकता नहीं, सबको निराबाध अपनी उन्नति और सुख के लिए मौका दिया जा रहा है। घास को भी पूरा अवकाश दिया जा रहा है, और घोड़े को भी। घरवाले को कहा जा रहा है, "जागते रहना", और चोर को "जा चुरा"; क्योंकि हरेक नागरिक को जो पूर्णतम अवकाश और अवसर देना है।

महीप—डाक्टर शर्मा गांधीजी की दुहाई देते हैं, फिर भीष्म, शुक्र और कौटिल्य जैसे राजनीति-धुरंधरों के बतलाये रास्ते का निर्देश करते हैं। वह बतलाना चाहते हैं, कि इतिहास की भौतिक-व्याख्या एक एकांगी धारणा, अथवा दुराग्रह मात्र है। राज्य के क्रिया-कलाप को

मनुष्य के भौतिक संतोष तक ही सीमित मानने को वह बुरा मानते हैं, और चाहते हैं कि राज्य मनुष्य को आध्यात्मिक तत्त्व के साक्षात्कार कराने में भी सहायक हो। अर्थात् अब सरकार को ८४ हजार ऋषियों की तपोभूमि नैमिषारण्य जैसे सैकड़ों पावनस्थान भारत के प्रत्येक भाग में स्थापित करने होंगे, जिसमें कि नागरिकों को अध्यात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो। उनका कहना है—जो राज्य इन बातों की उपेक्षा करता है, वह अपने लक्ष्यभूत कर्तव्य से पतित हो जाता है; क्योंकि मनुष्य केवल घुमंतू, मिलंतू और काम-करन्तू भूखा पशु नहीं है, "वह केवल मुँह और पेट नहीं है, वह कुछ और भी है।"

मुखपात्री—सचमुच ही शर्मा अब हम लोगों की रोजी पर हाथ मारना चाहता है।

खोजीराम—बुरा तो नहीं है, यदि शर्मा को स्वामीजी के आसन पर बैठा दिया जाय और स्वामीजी को उनके आसन पर। मैं समझता हूँ, स्वामीजी भीष्म, शुक्र और कौटिल्य की बातें जितनी स्पष्टता तथा ईमानदारी से विद्यार्थियों को पढ़ा सकेंगे, उससे विद्यार्थियों को शर्मा का वियोग असह्य नहीं होगा।

युधिष्ठिर—सच कह रहे हो। शर्मा ने बहुत मुँह और पेट की बात अब तक की होगी, उसका प्रायश्चित भी हो जायगा।

भगवानदास—शर्मा की बातें हमारे लिए नई तो नहीं होतीं, यदि वह भीष्म, शुक्र, कौटिल्य के पास में ले जाकर हमें छोड़ आते, किंतु राजनीति-विज्ञान-सम्मेलन कोई हरिकीर्त्तन-सम्मेलन तो नहीं है। उन्होंने कुछ अपने विषय की भी तो बात बतलाई होगी?

महीप—अपने विषय की बातें नहीं बतलाईं, ऐसा तो नहीं कह सकते, लेकिन अब वह जान पड़ता है, साधन चतुष्टय-संपन्न हैं और केवल अध्यात्म-तत्त्व का साक्षात्कार ही उनका लक्ष्य रह गया है—"धर्म (ड्यूटी) सम्मान (डिग्निटी) द्वारा दिव्यता (डिविनिटी) की ओर ले जाता है।"

रामी—यहाँ न केवल आध्यात्मिकता ही कूट-कूट कर भरी है, बल्कि अनुप्रास की भी गजब की छटा है।

महीप—वाण भी तो शर्मा ही के वंश में पैदा हुए थे। और सुनिए—"मनुष्य पूंजीपति के हाथ का हथियार मात्र या कम्युनिस्ट का जागरू मात्र नहीं है।" कितनी समदर्शिता है। पूंजीपति और कम्युनिस्ट—किसीके लिए जरा भी पक्षपात नहीं है—"उसके जीवन का एक दैवी उद्देश्य है। वह उस उद्देश्य को उसी क्षण पूरा कर सकता है, जबकि वह अपनी सत्ता की चेतना का बोध कर ले। वह मानवजाति के सम्मान के गर्भ में स्रोत-रूप है, जिसके भीतर से सदा मानववाद की धारा बहती रहेगी, यदि वह सिर्फ यह जान ले, कि उसकी आत्मा सर्वोच्च शक्ति, सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है।"

खोजीराम—सचमुच ही शर्मा को उस कांग्रेस का सभापति बनाके लोगों ने भूल कर दी। उन्हें हृषीकेश के स्वामी शिवानन्द की गद्दी पर बैठाना चाहिए था।

मुखपात्री—वह क्या बैठेगा, जिसे यह भी ज्ञात नहीं कि आत्मा सृष्टि नहीं अमर है।

महीप—रामराज्य पर राजनीतिक-सम्मेलन के सभापति को खूब विस्तार के साथ बोलना चाहिए था। शर्माजी के उपदेशानुसार राम-राज्य राज्य-संबंधी गांधीवादी विचारधारा है। वह यह भी बतलाते हैं, कि गांधीजी भारतवर्ष में रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे—"इस शब्द का अर्थ अधिकांश लोग ठीक से समझते हैं, किंतु कुछ थोड़े लोग जान-बूझकर इसकी उलटी व्याख्या करते हैं।" इन थोड़े लोगों पर शर्माजी ने कई लात लगाये हैं। रामराज्य के शब्दार्थ को बतलाते हुए डाक्टर शर्मा का उपदेश है—"रामराज्य ऐसे प्रकार का राज्य है, जो परंपरा के अनुसार अयोध्या के राजा राम के शासन-काल में प्रचलित था, जिसमें सभी नागरिक सुखी और समृद्ध थे। उस राज्य की व्याख्या राम ने स्वयं लक्ष्मण से की है— 'लोक में धर्म, अर्थ और काम ही

समृद्धि के साधन हैं, जिनमें अर्थ और काम धर्म के साधन हैं।" इस प्रकार धर्म रामराज्य की जान है। और धर्म का रूप क्या था, इसको यदि परम्परा द्वारा सुने गए अयोध्या के रामराज्य के संबंध में जानना हो, तो इसके लिए शम्बूक शूद्र और राम के खड्ग की बात याद कर लीजिये।

रामी—शर्मा और शंकरदेवजी में किसकी व्याख्या प्रामाणिक मानी जाय?

महीप—अपनी-अपनी श्रद्धा की बात है। शर्माजी शम्बूक के वध-वाली परम्परा के माननेवाले जीव हैं, ब्राह्मण-क्षत्री-लाला के सनातन रामराज्य की रक्षा का भार उनके ऊपर आ पड़ा है। शंकरदेव बेचारे गांधी-परम्परा के समर्थक हैं, इसलिए आर्थिक-सामाजिक विषमता और जात-पांत के भेद-भाव को फूटी-आँखों भी देखना नहीं चाहते। शंकर-देव जनतंत्रता को मानते हैं, लेकिन चौथेपन में धर्म के अंधभक्त शर्माजी तीन कौड़ी के मोल पर भी जनतंत्रता को हाथ से छूने के लिए तैयार नहीं हैं।

मुखपात्री—भाई, रामराज्य की तो संतों-महात्माओं में चर्चा बहुत होती रहती है, किंतु जो व्याख्या यहाँ मैंने सुनी, उससे अच्छी व्याख्या तो और जगह सुनी जा सकती है। लेकिन जिन समस्याओं पर आप सब विचार कर रहे हैं, उनमें से एक का भी समाधान इनसे नहीं होता। अन्न का सवाल रामराज्य की रटन से पूरा नहीं होगा, जन-वृद्धि के सवाल को रोकना होता, तो रामराज्य के जप से उसे हो जाना चाहिए था। मुझे तो समझ में आता है, कि नाहक बेजगह "राम-राज्य", "आत्मसाक्षात्कार" आदि की रट लगाई जा रही है।

युधिष्ठिर—सच पूछिए तो रामराज्य में न जनतन्त्रता का कहीं नाम है और न सर्वोदय का। जान पड़ता है, राजाओं और उनके पिट्ठुओं ने राजतन्त्री शासन की महिमा बढ़ाने के लिए यह कल्पना की, जिसके चक्कर में उत्पीड़ित जनता के परम मित्र गांधीजी भी पड़

गए, और कितने ही उनके ईमानदार अनुयायी भी उसीकी रटन में हैं। आज के कितने ही स्वार्थी जीव जैसे गाँधी का नाम ले अपना काम साध रहे हैं, वैसे ही असली औषधि से ध्यान हटाने के लिए लोगों ने रामराज्य की महिमा गानी शुरू की है। रामराज्य कभी व्यावहारिक न था और न रहेगा।

भगवानदास—लेकिन यदि सबकी भलाई वाले, अथवा आपके विचारानुसार बहुजन के हित-सुख के लिए जो राज्य-व्यवस्था हो, उसे रामराज्य कहा जाय, तो क्या हरज?

महीप—यदि झूठ कहने में कोई हरज नहीं है, तो कहा जाय।

भगवानदास—झूठ क्यों?

महीप—क्योंकि अपने समय में इसका जो अर्थ समझा जाता था, उससे उलटा अर्थ निकालने की कोशिश की जा रही है।

रामी—लेकिन कहा तो गया है—"उलटा नाम जपै जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥"

युधिष्ठिर—अब समय बीत चुका है, और राम की महिमा राम भी नहीं गा सकते, तो रामराज्य की महिमा हम क्या गा सकेंगे! इतना अवश्य है कि रामराज्य से हमारी राजनीतिक गुत्थियों के सुलझने की कोई आशा नहीं हो सकती, वह जनतन्त्रता नहीं एकतंत्रता पर आधारित था, बहुजन के हित-सुख के लिए नहीं, बल्कि मुट्ठी-भर लोगों के हित-सुख के लिए था। सर्वोदय वालों से हमें इतना ही कहना है, कि "सर्व" शब्द में बहुत निकृष्ट स्वार्थों के फूलने-फलने का मौका देना उनके आदर्श को गिरा देगा।

बारहवां अध्याय

जनतंत्रता

भगवानदास ने कहा—महीप भाई! वैसे तो बहुत "छी मानुस" "छी मानुस" किया करते हो, लेकिन दुनिया के लोगों की राय भी तो देखनी चाहिए।

महीप—दुनिया के लोगों की कौनसी राय देखी है, भगवान भाई, जिसके लिए आज आपने बड़ा सन्तोष प्रगट करते हुए यह कहा?

भगवानदास—हमारी राजदूता विजयलक्ष्मी जी ने अमेरिका में बतलाया, कि भारतवर्ष जनतान्त्रिक जगत् में एक बड़ी शक्ति लेकर अवतीर्ण हुआ है। अमेरिका के लोगों ने उनके वचन का बड़ा स्वागत किया।

महीप—बड़े स्वागत का प्रमाण तो यही है, कि हमारे यहां के पत्रों में सब जगह यह समाचार छपा है।

भगवानदास—हमारे यहां क्यों अमेरिका के तीस-तीस पेजों के और रोज चालीस-चालीस लाख छपने वाले पत्रों में भी यह बातें छपी होंगी।

महीप—छपी होंगी इसका क्या प्रमाण? हमारे अखबारों को स्वयं चाहे पसन्द हो या न हो, समाचार-एजेन्सी रूटर और पीटिआई जो भी बाहर से तार भेज दें उसे छापना पड़ता है।

भगवानदास—छापना क्यों पड़ता है? क्या पत्र-सम्पादक सम्पादकीय कुर्सी पर बैठकर अपने कर्तव्य को भूल जायंगे?

रामी—कर्तव्य को भूलना आसान है, किन्तु पेट को भूलना नहीं।

जान पड़ता है भगवान भाई, आप पत्रों को पढ़ते-भर ही हैं, यह नहीं जानते कि उनकी कुञ्जी किसके पास है।

भगवानदास—अपने बनारस के "आज", "संसार", "सन्मार्ग" तीनों अखबारों को हम मंगाते हैं। धर्म की दृष्टि से हमारी अधिक सहानुभूति "सन्मार्ग" के प्रति है, लेकिन "आज" और "संसार" में भी हम बड़ी निर्भीकता के साथ देश हित की बातें छपती देखते हैं।

महीप—यह भी जानते हैं, कि यह या इनके भाई-बन्द प्रयाग, कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई आदि के जितने बड़े-बड़े दैनिक हैं, सब करोड़पतियों के हाथ में हैं। एक अच्छा दैनिक-पत्र निकालने के लिए कम-से-कम दस लाख रुपया चाहिए। भला दैनिक-पत्र करोड़पति छोड़कर दूसरा कैसे निकाल सकता है? फिर सिर्फ एक पत्र निकालने से अधिक खर्च पड़ता है। अब तो एक-एक मालिक के एक-एक दर्जन दैनिक-साप्ताहिक निकलते चले जा रहे हैं।

रामी—एक-एक दर्जन?

महीप—एक-एक दर्जन ही समझिए। बिड़ला के दिल्ली, प्रयाग और पटना से तीन अंग्रेजी और तीन हिन्दी के दैनिक निकल रहे हैं। "विश्वमित्र" कलकत्ता, पटना, कानपुर, दिल्ली, बम्बई से निकल रहा है। छोटे-मोटे मिलाकर बिड़ला के एक दर्जन पत्र होंगे। डालमिया और गोयनका ने भी कई पत्र निकाले हैं।

मुखपात्री—देश के स्वतंत्र होने का यह लाभ तो है? कहां एक पत्र निकालना मुश्किल था, और कहां "सन्मार्ग" का तीन-तीन स्थानों से निकलना।

भगवानदास—करपात्रीजी महाराज की कृपा से हम लोगों को "सन्मार्ग" मिला है, जो कलकत्ता, बनारस और दिल्ली तीनों जगह से निकल रहा है। वैसे दुनिया देखने से तो जान पड़ता है, वह रसातल जा रही है, किंतु सन्मार्ग को देखकर मन हरा हो जाता है।

महीप—सन्मार्ग को हम बुरा नहीं कहते। कई पत्रों से वह अच्छा है

और विविध भाँति के समाचार भी देता है। हमें तो कलकतिया "सन्मार्ग" को आठ बड़े-बड़े पृष्ठों में छपा देखकर बहुत सन्तोष हुआ। जैसा लोग उसे पुराण-पंथी समझते हैं, वैसी उसकी छपाई-सफाई नहीं है। उसकी अनुदारता या क्रांति-विरोध की शिकायत करते हैं, किंतु यह निश्चय जानिये, यदि क्रांति अखबारों के भरोसे चलती तो उसका सभी जगह दीवाला निकलता। जनतंत्रता की जिम्मेदारी यदि पत्रों पर होती, अथवा बड़ी-बड़ी संख्या में छपने वाले पत्र अपनी जन-प्रियता के प्रमाण होते, तो इंगलैंड में मजूर-पार्टी वाले किसी चुनाव को नहीं जीत पाते, क्योंकि वहां ६० फीसदी पत्र विरोधी टोरियों के हाथ में हैं।

भगवानदास—यदि जनप्रिय न होते, तो इतनी संख्या में छपते क्यों?

महीप - बिड़ला के पत्र ऐसे ही समाचारों और विचारों को छापेंगे, जिन पर उनके मालिक की अलिखित छाप है। मान लो, कोई दूसरा टुटपूंजिया आदमी अस्सी या नब्बे हजार किसी तरह जमा करके एक और गरम पत्र निकालता है, तो क्या लोग बिड़ला के पत्र को छोड़कर उसके पत्र को लेंगे? गरम विचारवाला पत्र भी अपने छओं पृष्ठों के सभी कालमों में गरम विचार ही नहीं भर सकता, उसे तरह-तरह की खबरें भी देनी पड़ेंगी; जिनमें करोड़पतियों की समाचार-एजेंसियों के ठण्ढे विचार भी आयंगे। ऐसी कुछ बातें तो आप बिड़ला के पत्रों में भी पायंगे। वहां भी मर्यादा के भीतर किसी गरम लेखक की भी कोई चीज छप जाती है। जहां बड़ी पूंजी और बड़े साधनों से निकलने वाले पत्र अच्छे वेतनवाले सम्पादक और संवाददाता रख सकते हैं, उनकी बांह समाचार जुटाने में बहुत दूर तक पहुँच सकती है, वहां टुट-पूंजिया पत्र इधर-उधर की बासी-जूठी खबरों को नमक-मिर्च लगाकर छापेगा और भरसक मुफ्त में लेखों को लेने की कोशिश करेगा।

युधिष्ठिर—अर्थात् सब काम मांग-जांच के करेगा और घाटा बर्दाश्त करने की शक्ति नहीं रखेगा, इसलिए उसकी टांग सदा लड़खड़ाती रहेगी।

फिर ग्राहक बेचारे ऐसे पत्र पर क्यों विश्वास करेंगे ? कोई धर्म कमाने के लिए तो दैनिक पत्र नहीं पढ़ता। सभी उसमें ताजी खबरों और देश-विदेश की बातों को देखना चाहते हैं।

रामी—आजकल तो पत्र पढ़ना अमल-सा हो गया है। शहर में रहते हुए सबेरे यदि पत्र नहीं मिलता तो आदमी की वही हालत होती है, जो अफीम बिना अफीमची की।

भगवानदास—पत्र और विमान मोहिनी के अवतार हैं।

खोजीराम—मुश्किल यही है कि दोनों पुरुषवाची। विष्णु ने पुरुष होकर स्त्री का रूप लिया था; हो सकता है, इन दोनों ने पहले जन्म में स्त्री होकर अब पुरुष का जन्म लिया हो। और भगवान भाई का कहना भी ठीक है, यदि ये मोहिनी अवतार न होते, तो करपात्री महाराज जैसे महान् विरक्त पुरुष कैसे इन पर मुग्ध हो जाते ? उनके करों से तीन-तीन पत्र "सन्मार्ग" के नाम पर निकल रहे हैं। उनकी चरणधूलि अब विमानों को छोड़कर और किसीको नहीं मिल रही है। हमारे बूढ़े सनातन धर्म ने कितने नवीनतम भाव को स्वीकार किया है।

महीप—इसलिए समाचार-पत्रों का आकार-प्रकार और ग्राहक-संख्या जनप्रियता का प्रमाण नहीं है, और न वह जनतंत्रता के वाहन हैं। मैं तो कहूंगा, वह प्रकाश फैलाने के लिए नहीं, बल्कि अंधकार से दुनिया को ढाँकने के लिए जनमे हैं। लोगों को सचमुच समाचार-पत्र पढ़ने का अमल हो गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तो समाचार-पत्रों को ऐसे लोगों के हाथों में भी देखते हैं, जो कभी दो पैसा भी अखबार के लिए नहीं खर्च करते थे।

रामी—और अब छ पैसा दो आना खर्चते हैं। हिन्दी के 'सन्मार्ग' का दो आना दाम होते हुए भी वह हाथों-हाथ बिकता है। मेरे जैसे जात-पांत-विरोधी लोगों को वह केवल पतित कहता है, शोषित जातियों को भी फूटी-आंखों नहीं देख सकता, तो भी लोग उसे लेके पढ़ते हैं। दूसरा जमाना होता, तो रोज दो आने का अखबार लेके पढ़ना कितना

भारी मालूम होता।

महीप—भगवान भाई, यह न समझिए कि मतभेद होने के कारण मैं "सन्मार्ग" को अधिक दोषी ठहराना चाहता हूँ। मैं तो बल्कि चाहता हूँ, कि "सन्मार्ग" अपने आठ पृष्ठों में 'अमृतबाजार-पत्रिका" या "स्टेट्समैन" के बराबर पाठ्य-सामग्री दे। यदि उतनी पाठ्य-सामग्री देता, तो मैं समझता हूं, हिन्दी अखबारों को ऐसा रास्ता दिखलाता, जिससे वह पाठ्य-सामग्री देने में अंग्रेजी पत्रों के कान काटते।

मुखपात्री—अंग्रेजी पत्रों के तुम भी विरोधी हो महीप बाबू?

महीप—मुझे अपने देश में अब अंग्रेजी में पत्रों को निकलते देखकर लज्जा आती है।

युधिष्ठिर—ठीक कहते हो महीप, किसी भी स्वतन्त्र देश में नहीं देखा जाता, कि विदेशी भाषा में सबसे अच्छे पत्र निकलते हों। अंग्रेजों की गुलामी के ये चिन्ह तब तक नहीं मिटेंगे, जब तक अंग्रेजी में पत्र निकलेंगे। मैं चाहता हूँ, हिन्दी के पत्र ही पढ़े जायं, किन्तु क्या किया जाय? छ पैसे के हिन्दी पत्रों में उसकी एक-चौथाई भी पाठ्य-सामग्री नहीं रहती, जितनी आठ पैसे के अंग्रेजी अखबारों में। 'सन्मार्ग' पृष्ठों में अंग्रेजी पत्र के बराबर आठ पृष्ठ का होने पर भी उसकी एक-तिहाई सामग्री भी नहीं देता, जितनी अंग्रेजी पत्रों में होती है।

भगवानदास—जब हिन्दी पत्रों में कागज पूरा लगाते है, तब तो चाहिए कि उतनी ही सामग्री भी दें। मैं इसके बारे में मिश्रजी और केड़िया जी से कहूंगा।

महीप—सिर्फ उनके कहने से काम नहीं चलेगा, हमारे पत्रों में अंग्रेजी पत्रों से कम पाठ्य-सामग्री होने का एक कारण पृष्ठों की कमी भी है जिसे 'सन्मार्ग' ने हल कर दिया। दूसरा कारण है, हमारा हिन्दी का टाइप अंग्रेजी के ऐसा छोटे आकार का नहीं है और छोटे आकार का बनाने पर टाइप टूटता बहुत है। हमारे एक मित्र की सलाह

से ऊपर नीचे की मात्राओं को बगल में रखके प्रयाग के फौंड्री वाले ने नये टाइप बनाये हैं।

खोजीराम—अगल-बगल में मात्रा रखके? तब तो पढ़ने में नये अक्षर-से मालूम होंगे।

महीप—किसी मात्रा या अक्षर के आकार में हेर-फेर नहीं किया गया, केवल ऊपर-नीचे की जगह उन्हें अगल-बगल में रख दिया गया है। दस पृष्ठ पढ़ने में कुछ नवीनता-सी मालूम होगी। पीछे लोग मजे से उसी तरह पढ़ेंगे, जैसे ऊपर-नीचे मात्रा वाले टाइप को।

भगवानदास—यह तो एक नये प्रकार के टाइप बनाने की परीक्षा हुई। उससे पाठ्य-सामग्री में क्या अन्तर होगा?

महीप—बहुत अन्तर होगा। अगल-बगल में मात्रा लगा देने से जो टाइप बारह प्वाइन्ट की जगह घेरता था, वह सात प्वाइन्ट में आ जाता है। अथवा यह कहिये "सन्मार्ग" की बारह पंक्तियां जितना कागज घेरती हैं, वह अब सात पंक्तियों के बराबर घेरेंगी। साथ ही ऊपर-नीचे मात्रा न लटकने के कारण टाइप टूटेंगे नहीं, क्योंकि सभी टाइप अपने बल पर खड़े रहेंगे। तीन प्वाइन्ट का ढला टाइप भी छ प्वाइन्ट के बराबर बड़ा देखने में मालूम होगा। मात्राओं के टूटने का भी डर नहीं रहेगा। फिर अंग्रेजी पत्रों में जो छोटे-से-छोटे टाइप लगते हैं, उनसे भी छोटा टाइप किन्तु देखने में दूना मोटा हमारे पास हो जायगा।

भगवानदास—देखने में दूना कैसे मालूम होगा?

महीप—अंग्रेजी के टाइप जैसे ("एफ", "जे") भी चाहे अपने बल पर भले ही खड़े हों, किन्तु हमारी मात्राओं की तरह ऊपर और नीचे बढ़े रहते हैं, जिससे जगह अधिक घेरते और छोटा करने पर पतले बन जाते हैं। हमारे नये टाइप में यह दोष नहीं है।

भगवानदास—यदि ऐसा है, तो उस टाइप में कुछ चीजें छपकर आनी चाहिएं।

महीप—युधिष्ठिर भाई की एक पुस्तक उसी में छपने जा रही है।

देखने में उतने मोटे टाइप में छपी पुस्तक दो सौ पृष्ठ की जगह एक सौ बीस पृष्ठ में छपके मिलेगी। इस तरह के छोटे टाइपों के प्रयोग से 'सन्मार्ग' चाहे तो अंग्रेजी के दैनिकों से ज्यादा पाठ्य-सामग्री हिन्दी पाठकों को दे सकता है।

रामी—तब तो निश्चय ही लोग ऐसे पत्र को लेंगे, क्योंकि उसमें तिगुनी पाठ्य-सामग्री मिलेगी।

महीप—लेकिन फिर 'सन्मार्ग' के मालिकों को सिर-दर्द होने लगेंगे, जब सुनेंगे कि सम्पादकीय विभाग में दूने आदमियों की जरूरत पड़ेगी, नौकरों की तनख्वाह पर दूना खर्चा करना होगा।

युधिष्ठिर—लेकिन कभी तो हमें यह करना ही होगा, हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों से अंग्रेजी के पत्रों को खतम करना होगा। हम चाहते हैं करपात्री जी के लगाये इस बिरवे से यह फल भी हमें प्राप्त हो और हिन्दी के पत्र उतनी पाठ्य-सामग्री देने लगें, जितनी अंग्रेजी के पत्र देते हैं। खैर, हम विषय से दूर चले गए।

रामी—समाचार-पत्र अमल के कारण ही अनिवार्य से हो गए हैं और पाठकों में उनके लेने में केवल गरम और नरम विचारों का ही ध्यान नहीं रहता, बल्कि विविध-सामग्री देश-देशांतर की खबरें आदि पाठकों को आकृष्ट करती हैं। जो लोग समाचार-पत्रों की जन-तंत्रता का राग अलापते हैं, वह यह जानते हुए भी ऐसा करते हैं, कि जनतन्त्रता नाम की चीज करोड़पति मालिकों के समाचार-पत्रों से कोसों दूर है। रही भारत के प्रचंड जनतान्त्रिक होने का ढंढोरा, उसे वाम-पंथियों से पूछ लीजिए। मैं समझता हूं, उन्हें इसकी शिकायत न होनी चाहिए, यदि सद्योजाता जनतन्त्रता उन्हें भारी मालूम होती हो।

महीप—भारी क्यों मालूम होनी चाहिए? प्रेम का आरंभ है—"इब्तिदाये इश्क है, रोता है क्या?" जनतन्त्रता हमेशा रही है और हमेशा नहीं भी रही है। जिस वर्ग के हाथ में राज-शक्ति रही, उसके

लिए जनतन्त्रता, हर प्रकार की स्वतन्त्रता मौजूद है, और प्रतिद्वन्द्वी शक्ति-भ्रष्ट के लिए कभी जनतन्त्रता, विचार स्वतन्त्रता, लेखन-स्वतन्त्रता, भाषण-स्वतन्त्रता नसीब नहीं रही। जिस वक्त अमेरिका के लोग स्वतंत्रता की बात करते हैं, उस वक्त समझ लेते हैं, कि उनके देशवासियों में आठ में से एक नीग्रो अस्तित्व ही नहीं रखते। अमेरिका में नीग्रो को साधारण होटल में ठहरने का अधिकार नहीं। दक्षिणी रियासतों में श्वेताङ्गों के घर में भी आगे से घुसने का उन्हें अधिकार नहीं, उन्हें पीछे के द्वार से प्रवेश करना होता है; तो भी जनतंत्रता पर बड़े-बड़े व्याख्यान झाड़ने वाला कोई अमेरिकन ख्याल भी नहीं करता, कि वह वस्तु-स्थिति का अपलाप कर रहा है।

भगवानदास---अच्छा भारत में जनतंत्रता नहीं है तो क्या रूस में जनतन्त्रता है ?

महीप—मैंने तो पहले ही कह दिया, कि प्रभुताशाली वर्ग के लिए जनतन्त्रता और उससे सम्बन्धित सारी स्वतन्त्रताएं हैं। जैसे करोड़पतियों के लिए शासित देशों में उनके प्रतिद्वन्द्वियों के लिए जनतन्त्रता के उपभोग का कोई अवसर नहीं मिल सकता, उसी प्रकार रूस में जिनके लिए शासन हो रहा है, उन मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवी कमकरों के लिए जनतन्त्रता है, और उनके हित के विरोधियों के लिए विचार-भाषण-लेखन की स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। दोनों जगह स्वतन्त्रता की अपनी-अपनी सीमाएं हैं। रूस की जनतन्त्रता की सीमा के भीतर ९५ प्रतिशत से ऊपर जनता आती है, दूसरे देशों में ५,६ प्रतिशत का आना भी मुश्किल है।

खोजीराम—हमारे यहां भी अंग्रेजों के समय बहुत जनतन्त्रता की बातें होती थीं, किंतु अब तो जान पड़ता है, बोलने वाले भी बदल गए हैं। ग्राम पंचायतों का हमारे प्रांत में वयस्क मताधिकार के अनुसार जो चुनाव हुआ है, उसके परिणाम को देखकर तो अब हमारे बड़े-बड़े लोग घबड़ा उठे हैं। सोच रहे हैं, इक्कीस साल से अधिक उम्र

के स्त्री-पुरुषों को वोट का अधिकार दे देने पर तो वह सब गुड़-गोबर कर देंगे।

महीप—इसीसे मालूम होता है, कि उन्हें जनतन्त्रता से कितना प्रेम है। संविधान में राष्ट्रपति तथा प्रांतपतियों के चुनावों या उनको दिये अधिकारों को देखने से मालूम होगा, कि जनतंत्रता से हमारे कर्णधार कितने दूर हैं। इससे हर जगह उन्हें भय-ही-भय दिखलाई देता है।

मुखपात्री—क्या आपको भय नहीं मालूम होता?

महीप—मुझे क्यों मालूम होगा, मैं बहुजन के हित, बहुजन के राज्य का पक्षपाती हूं। जो अल्पजन के हित और राज्य के पोषक हैं, उनको जरूर घबड़ाहट होगी। लेकिन "दमड़ी की हंडिया गई, और कुत्ते की जात पहचानी गई"; हमारे जनतन्त्रता के बड़े-बड़े समर्थकों की कलई तो खुल गई। अब तो मालूम होता है, वह जनतन्त्रता के नाम से ब्राह्मण-क्षत्री-लालों का राज्य कायम रखना चाहते हैं।

युधिष्ठिर—ब्राह्मण-क्षत्री-लालों की बात किसी दूसरे समय के लिए छोड़, आज अपने को जनतन्त्रता तक ही सीमित रखिये।

महीप—हमारे देश में जनतन्त्रता कहाँ है, जिसका ढिंढोरा हमारी राजदूता पातालपुरी में पीट रही हैं। यहां अभी भी बड़े-बड़े नेता जात-पांत के शिकार हैं। जात की लकीर को जरा भी हटाना नहीं चाहते। जात-पांत, यह न समझिये, केवल निराकार ऊँच-नीच भावना का ही समर्थन करती है। नहीं, इस जात-पांत ने ऐसा धन का बँटवारा कर दिया है, कि बड़ी जातियों के पास, जिनकी संख्या पचीस सैकड़ा से अधिक नहीं है, सारी रियासतें, जमींदारियाँ ही नहीं रही हैं; बल्कि उन्हींके पास साहूकारा और वाणिज्य-व्यापार है, उन्हींके हाथों में सारे कारखाने, उन्हींके हाथों में बड़ी-छोटी सरकारी नौकरियां हैं—महामन्त्री से कलक्टर तक सब बड़ी जातों के आदमी हैं। ७५ प्रतिशत जनता केवल सामाजिक तौर से ही हीन नहीं समझी जाती, बल्कि उसके अर्थागम के सारे रास्ते रुके हुए हैं। आज कुछ मन्दिरों को अछूतों के

लिए खोल देने से आप समझते हैं, जनतन्त्रता का द्वार खोल दिया गया। वस्तुतः वह कोई महत्व नहीं रखता। यदि धन और विद्या में ७५ प्रतिशत लोगों को समान होने का अधिकार मिले, तो हम जरूर कहेंगे, कि आप जनतन्त्रता की तरफ आगे बढ रहे हैं।

भगवानदास—विद्या में समान अधिकार तो सभी मानते हैं।

महीप—सभी मानते हैं इससे काम नहीं चलता। क्या मानने मात्र से गाँव के पैसे-पैसे के लिए मुहताज घुरहू चमार का लड़का प्रतिभाशाली होने पर भी कालेज की पढाई समाप्त कर सकेगा? आप जानते हैं, विद्या का द्वार केवल उसीके लिए खुला है, जिसके पास धन है।

भगवानदास—धन में समानता, तब तो जनतन्त्रता के लिए सबसे आवश्यक बात हुई।

युधिष्ठिर—विद्या और व्यवसाय में सबको एक समान आगे बढ़ने का अवसर मिले, तब तो कहा जा सकता है, कि हम जनतन्त्रता की ओर बढ़े हैं, नहीं तो देवता भी मर्त्यलोक के लोगों से दूर रहते हुए अपनी मौज में जनतन्त्रता के गीत गा सकते हैं।

नौकरशाही अंधेर

आज वर्षा पड़ रही थी, इसलिए पंचों की बैठक छत पर न हो, दालान में हो रही थी। भगवानदास की सलाह को मान लेने का किसी को खेद नहीं हुआ, क्योंकि नीची-बाग में निगाहें जैसी पड़ रही थीं, उससे डर था कि उनकी बैठक अपने तक ही सीमित न रहेगी। बनारस के पत्र वाले भी इस फिकर में थे कि गोष्ठी की बातें अपने पत्रों में छापें। एकाध बार उन्होंने मनगढ़न्त बातें अपने पत्रों में सिर्फ इसीलिए छापीं, कि गोष्ठीवाले खंडन के लिए भी कुछ लिखें, लेकिन किसीने जवाब नहीं दिया। भगवानदास की कोठी के भीतर कोई उनके पास नहीं पहुँच सकता था। छओं पंचों में किसीको नौकरशाहों से बहुत ज्यादा परेशान होने का मौका नहीं मिला था, क्योंकि नौकरशाहों से उन्हें अव्वल तो काम नहीं था, और यदि वह मिलते भी थे, तो परिचित मित्र के तौर पर। उस दिन रामी कहीं से पुराने पत्र की कापी लाकर उसके बारे में बोलने लगी—जनवरी में यहीं बनारस में हमारे प्रांत के समाजवादी दल का सम्मेलन हुआ था, उसकी प्रधाना श्रीमती अरुणा आसफअली थीं, जो श्री भगवानदासजी के शास्त्र के अनुसार आधुनिक पंचकन्याओं में गिनी जा चुकी हैं। उन्होंने नौकरशाही के बारे में खरी-खरी बातें कही थीं। उनके वाक्य थे[1]—"पंडित नेहरू और सरदार पटेल दोनों ही के हृदय में निःसंदेह जनता के हित की भावना है, लेकिन वह

१. "अमृतबाजार पत्रिका" (कलकत्ता) ६-१-४६।

शायद अपनी इच्छा के विरुद्ध ही सही, उसी नौकरशाही यंत्र के नियंत्रण में हैं, जिसकी एक समय उन्होंने घोर निन्दा की थी। शासनारूढ़ दल के लिए यह अनिवार्य है, कि अपनी आज्ञाओं को कार्यरूप में परिणत करने के लिए नौकरशाही पर निर्भर रहें। लेकिन साथ ही यह अत्यंत आवश्यक है, कि वह नौकरशाही ऐसी काली भेड़ों से न भरी हो, जिन्होंने कि अपने जीवन में दास मनोवृत्ति के सिवा कोई खूबी नहीं दिखलाई। नौकरशाही सिर्फ पैसे के लिए काम करती है, उसे जनता के हितों का ध्यान शायद ही होता है।"

भगवानदास—पंचकन्या ने बात तो पक्की कही है, चाहे वह किसी को बुरी लगे। लेकिन लोग कह सकते हैं—अरुणाजी सरकार की समालोचना करने में आजकल कोई अंकुश नहीं रखतीं।

महीप—यदि अरुणाजी की बात आप पक्षपातपूर्ण समझते हैं, तो पूर्वी पंजाब के हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश श्री स० र० दास की बात के बारे में तो आप ऐसा नहीं कह सकते। दिल्ली के एक पत्र को कड़ी आलोचना करते देख वहां के चीफ कमिश्नर ने पत्र की जमानत जब्त कर ली थी। पत्र-स्वामी ने हाईकोर्ट में अपील की, जिसको तीन न्यायाधीशों की पूरी बेंच ने सुना। न्यायाधीशों ने चीफ कमिश्नर की आज्ञा को रद्द करते हुए अपने निर्णय में नौकरशाही के बारे में लिखा[१]—"देश की परिस्थिति में जो परिवर्तन और (लोगों में) नये भाव आये हैं, जान पड़ता है, उनके कारण प्रबन्धकों (नौकरशाहों) के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनके दिमाग में पुरानी अहंमन्यता और मनमानी की बातें अब भी घर किये हुए हैं। सद्यःप्राप्त हमारी स्वतंत्रता ने उनकी दृष्टि को विस्तृत नहीं किया, और वह अब भी किसी उचित टिप्पणी या आलोचना को दबा देने के लिए तैयार हैं। पीड़ित व्यक्ति जब त्राण पाने के लिए दिल खोलकर प्रार्थना करता है, तो उसे

१. "अमृतबाजार पत्रिका" (कलकत्ता) १६-४-४६।

राजद्रोह-कानून के सस्ते हथियार से दबा दिया जाता है।"

खोजीराम—मुझे इन दोनों उद्धरणों में कोई अत्युक्ति नहीं दीख पड़ती। हमारे देश के पिछले दो वर्षों के इन स्वतन्त्रता के दिनों में जो सबसे कम परिवर्तित हुए हैं, वह हैं यही नौकरशाह, सरकारी कर्मचारी, जिन्होंने जीवन-भर अंग्रेजों की खुशामद की। जो सदा उनका यश गाते और उनके हुक्म पर अपने भाइयों पर हर तरह के अत्याचार करते रहे, वह आज भी फल-फूल रहे हैं। बलिया में पंजाब के मार्शल ला के दिनों को और भयंकर रूप में दोहराने वाले अफसर आज भी मूंछ पर ताव दे रहे हैं।

महीप—अब हमारे मंत्री लोगों के दरबार में भी वह उसी तरह से हाजिरी देते हैं, जैसे अंग्रेजों के दरबार में किया करते थे, फिर प्रभु क्यों न प्रसन्न हो जायं।

युधिष्ठिर—मंत्री लोग अपने इन अफसरों के हाथों में खेलते हैं, वह अपने सेक्रेटरियों के हाथ की कठपुतली हैं, इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं। अधिकांश मंत्रियों को काम के लिए कोई योग्यता न रखने के कारण पद-पद पर अन्धे की तरह अपने सेक्रेटरियों की अंगुली पकड़ के चलना पड़ता है। वह भी उनकी कमजोरियों से परिचित हैं।

रामी—मुझे तो नौकरशाहों के बारे में एक मित्र की राय पसंद आई। आज की नौकरशाही को उन्होंने कार्यक्षमता के अभाव के सहित बृटिश नौकरशाही के साथ बराबर किया; आज की नौकरशाही = बृटिश नौकरशाही—कार्यक्षमता। सुदुर्लभ लाखों की मिक्रोफिलम की मशीनों को दिल्ली में मंगवाकर किस तरह बरसात में चौपट किया गया, यह नौकरशाही की कार्यक्षमता का बड़ा प्रमाण है। पाकिस्तान के बंटवारे के समय जो पचासों लाखों की मशीनें मिली थीं, वह दो साल से विलिंगटन हवाई अड्डे (दिल्ली) में बाहर फेंकी रहकर बरबाद हो गईं। सुनिये कोई वाममार्गी नहीं बिड़ला का पत्र (हिन्दुस्तान टाइम्स संध्या समाचार ४-८-४९) की तिलमिलाहट पैदा करने वाली पंक्तियां—

शीर्षक है "लाखों मूल्य की मशीनें अब कबाड़। दो सरकारी विभागों में उत्तरदायिता का विवाद।" और फिर—"विमानयात्री और उधर से निकलने वाले साधारण लोग भी यह देखकर आश्चर्य करते होंगे कि क्यों हाते के एक विशेषता रखने वाले कोने को कबाड़ रखने के लिए छोड़ दिया गया। वह इतने समय से वहां है, कि हवाई अड्डे पर प्रायः आने-जाने वालों का उधर ध्यान भी नहीं जाता। वह समझते हैं कि वह भी उस भूभाग का अंश है। नगर में चीजों को जिस तरह रखा जा रहा है, दिल्ली के लोग परिचित हैं, और अन्न, मशीन तथा कोई सामान भी इस तरह आकाश के नीचे रखा देखने पर उन्हें आश्चर्य नहीं होगा। पाकिस्तान भागे लोगों की कई हजार मोटरें आज भी एक हाते में पड़ी सड़ रही हैं। हवाई अड्डे का यह ढेर कबाड़ नहीं प्रकाश के साधन, किरणों की मशीनें और प्रकाशवर्षक महाप्रदीपों के पाये आदि हैं। सैनिक उड़ान विभाग ने एक नजर डाली, और कह दिया वह उनके काम का नहीं है। इसलिए उसे राजकीय भारतीय विमान-सेना को दे दिया गया। उन्हें भी इन चीजों की आवश्यकता नहीं थी.... यह दो साल पहले की बात है। तबसे सरकार के दोनों विभागों की लम्बी बहस चल रही है कि कौन शिशु को उठायगा। उधर दोनों विभागों के कार्यालयों में फाइलें मोटी होती गईं और इधर मशीनें भी धूल और कीचड़ जमा करती गईं, तथा अंत में हाल की बरसात ने सबको स्वाहा कर दिया। कोई नहीं कह सकता, कि दो वर्ष पहले इस सामान का कितना दाम था। वह लाखों का रहा होगा, किन्तु अब कुछ हजारों का भी नहीं है। अब सुना जा रहा है, कि उसे नीलाम कर दिया जायगा। साधु संकल्प, किंतु दो बरसातों और दो गर्मियों तक खुले मैदान में पड़े कबाड़ को कौन खरीदेगा? यदि इसे कबाड़ के भाव बेचा जायगा, तो सार्वजनिक कोष के इस घाटे को कौन पूरा करेगा?"

खोजीराम—सचमुच ही देखकर आश्चर्य होता है। पहले तो यही

अफसर इतने अयोग्य न थे, न उनमें इतना ढीला-ढालापन दिखलाई पड़ता था। अब जहाँ देखिये वहां कोई समय पर नहीं होता। एक आदमी को किसी दफ्तर में पूर्वपरामर्श के अनुसार रख लिया गया। उसने छ महीना काम किया। अब भी उसकी नियुक्ति का पत्र नहीं आया। तार देने पर भी बात वहीं-की-वहीं रही। सभी अफसर और सभी आफिस अपने को काम में व्यस्त दिखलाते हैं, और काम की हालत यह है।

महीप—इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि हमारे मंत्री भी तो दिल्ली के बादशाहों और लखनऊ के नवाबों का कान काटना चाहते हैं। जो उनके दरबार में पहुंच जाता है, खुशामद करने में दक्ष है, या हित-मित्र, सगे-सम्बन्धी का कोई नाता रखता है, उसके सात खून माफ हैं, उसे सबसे पहले तरक्की मिल जाती है। दूसरी ओर काम करके मरने वाले की कोई पूछ नहीं है, बल्कि चुगली लग गई, तो कूँए में गिरना पड़ता है। जब पद-वृद्धि और पदह्रास का यह तरीका है, तो क्यों कोई अधिक मेहनत उठायगा? पंजाब के सचिवालय में वहां के महामंत्री सच्चर ने जाकर देखा, कि अफसर लोग घंटे-घटे-भर देर करके आते हैं। "परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई" की कहावत थी। जब मंत्री महामंत्री सब अपने ही आदमी हों और सभी जगह वही आरामतलबी और शिथिलता रहे, तो काम क्यों किया जाय?

युधिष्ठिर—मैं नहीं समझता, सभी अंग्रेज बहादुर काम में तत्परता रखते थे। उन्हें भी शिकार और सैर का बहुत शौक था, लेकिन कम-से-कम अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से वह काम लेना जानते थे और वैयक्तिक नाते-रिश्ते की बात न होने से कितनी ही हद तक वह काम को देखकर ही पदवृद्धि करते थे।

खोजीराम—हमारे बहुत-से अफसर तो, यदि किसीका भय-संकोच नहीं हुआ, तो घर पर बैठे-बैठे ही दस-बीस कागजों पर हस्ताक्षर करके समझ लेते हैं, कि आज का काम खतम हो गया। एक तरफ काम की

यह बात है, और दूसरी तरफ नौकरों की संख्या बढ़ाने में हमारे आज के शासक आंख मूँद के काम कर रहे हैं। खर्च अंधाधुंध नहीं आमदनी के अनुसार करना जरूरी है। भारत-सरकार ने खर्च-घटाव-समिति बनाई। समिति ने सरकारी नौकरियों के प्रतिवर्ष के एक अरब पैंतालीस करोड़ के खर्च में कुल तीन करोड़ दस लाख के घटाने की सिफारिश की। केन्द्रीय सरकार के सचिवालय के नौकरों में जिस तरह अंधाधुंध वृद्धि हुई, उसका ब्योरा देखिये—

कर्मचारी	१६३६ ई०		१६४६ ई०		सिफारिश
सेक्रेटरी	६	—	१६	—	१६
संयुक्त सेक्रेटरी	८	—	४०	—	३६
डिप्टी सेक्रेटरी	१२	—	८६	—	७६
अतिरिक्त सेक्रेटरी	०	—	५	—	२
अन्तर सहायक सेक्रेटरी	१६	—	४४	—	
सुपरिटेण्डेंट	६८	—	२६४	—	२६५
सहायक पदस्थ	८	—	१४८	—	८३
सहायक	४६३	—	२२१०	—	१६३२
क्लर्क	६४१	—	२५४८	—	२०३८

महीप—यह गरीब जनता के पसीने की कमाई में आँख मूँदकर आग लगाना है।

खोजीराम—आग लगाना मत कहिये, सब अपने-अपने लोगों को भरने के लिए तैयार हैं; समझते हैं, कि एक मर्तबे नौकरी पर नियुक्त कर देने के बाद फिर कौन निकालने वाला है?

रामी—लेकिन ६४१ क्लर्क की जगह २५४८ अर्थात चौगुने क्लर्क काम क्या करते हैं?

खोजीराम—एक बड़ा काम यही है—यदि क्लर्कों की पल्टन न होगी, तो अफसरों के लिए काम क्या रहेगा? जब कागज काला करना, रिपोर्ट और हस्ताक्षर-भर ही काम है, तो चाहे जितने अफसर बढ़ाते

जाइए। तारीफ तो यह है, कि जहां पहले नौ सेक्रेटरी थे, अब उनकी जगह १६ हो गए हैं; और जानते ही हैं, सेक्रेटरी सबसे मोटी तनख्वाह पानेवाले हैं। खर्च-घटाव-समिति ने १६ सेक्रेटरियों में से एक को भी कम करने की सिफारिश नहीं की। समिति स्वयं भक्खाड़ सेक्रेटरियों के रोब में थी, वह भला कैसे उनके खिलाफ कलम चलाती?

युधिष्ठिर—क्लर्क और सेक्रेटरी की ही बात क्यों ले रहे हैं, माथे पर ही क्यों नहीं देखते? गवर्नर जनरल का वेतन कितने ही समय तक वही चलता रहा, जो कि अंग्रेज वाइसरायों को मिलता था। जब कड़ी आलोचना हुई, तो प्रधान मंत्री ने यह कहकर उसका औचित्य ठहराया कि पद-मर्यादा के लिए वह आवश्यक है। वेतन जब कम भी हुआ, तो उससे यह न समझें कि आज के गवर्नर जनरल की अपनी गोशालायें, अपनी घोड़शाल, अपने मोटरखाने, अपने मालियों और शरीर-रक्षकों की पल्टन का खर्च कम हो गया है। अब भी गवर्नर जनरल का मकान वही विशाल प्रासाद है, अब बल्कि बाग-बगीचों के संभालने के लिए पहले से कई गुना अधिक खर्च है; यद्यपि अब प्रासाद में बहुत जगह मकड़ी के जाले भी दिखलाई पड़ते हैं, सिर्फ चमगीदड़ियों की देर है। कहीं-कहीं कालिख भी लगी है, क्योंकि नौकरों के रहने पर भी काम की ढिलाई जो हर जगह है। यदि कमी हुई है, तो शायद शूकर-शाला की। अब उसकी जरूरत नहीं रही, क्योंकि राजगोपालाचारी घासाहारी हैं।

रामी—वाइसराय का अपना विशाल अन्तःपुर था—रानियों के लिए नहीं, बल्कि पशुओं, मनुष्यों और वस्तुओं के लिए। सैकड़ों गायें रहती थीं, यद्यपि वाइसराय, वाइसराइन के लिए एक-दो गायें काफी थीं। मैं समझती हूँ, उसमें अभी कमी नहीं की गई होगी।

महीप—नहीं, कमी क्यों? प्रधानमंत्री के कथनानुसार गवर्नर जनरल की पद-मर्यादा के लिए वह आवश्यक है।

महीप—रामी बहिन, अभी एक छोटा-सा लेख डाक्टर जे० सी०

कुमारप्पा ने इस भयंकर फजूलखर्ची को क्रांति का लक्षण कहते हुए लिखा है।[1]

रामी—सुनाओ तो।

महीप—अच्छा लीजिये—"अंग्रेज तो यहां से चले गए हैं, पर ऐसा मालूम होता है, कि वे एक ऐसी परंपरा छोड़ गए हैं, जिसने हममें से चन्द लोगों के जीवन में घर कर लिया है।....दिल्ली शहर खुद गरीबों के बूते पर की जाने वाली तड़क-भड़क के प्रदर्शन का एक खास उदाहरण है। वहाँ वाइसराय की कोठी पुराने जमाने के मुगलों के ऐश्वर्य को भी मात करने वाली है। उसमें रहने के कुल ८६ कमरे और ५६ गुसलखाने हैं। ये कमरे इक्के-दुक्के नहीं, परन्तु बम्बई के फ्लैट जैसे हैं और उनमें स हरएक में मध्यवर्गीय कुटुम्ब बड़ी आसानी से रह सकता है। पुराने जमाने में जब दिल्ली में राजसी ठाठ वाले होटल नहीं थे, तब इंगलैंड के अमीर-उमराव आदि मेहमानों को ठहराने के लिए वाइसराय की कोठी एक होटल का भी काम देती थी। पर आज गरीबों से वसूल किये टैक्सों के बूते पर उसी रफ्तार को चालू रखने की हमें कोई जरूरत नहीं दीख पड़ती....

"इस कोठी में कुल ३१२ नौकर और ६० फराश हैं, जिनका मासिक वेतन २५,०००रु० याने सालाना तीन लाख रुपया होता है। उनके 'अदना' मालिक वाइसराय का वेतन भी इनकमटेक्स और सुपरटैक्स (यदि लगता होता) मिलाकर मासिक १५,००० रुपया के करीब होता है। नौकरों की भड़कीली पोशाकों के लिए सालाना ४०,००० रुपया खर्च होते हैं।

"इस कोठी के बगीचे का क्षेत्रफल २६० वर्ग एकड़ है और वह 'तमाम दुनिया में अपना सानी नहीं रखता', ऐसी कोठी के अधिकारी डींग मारते हैं। पर यह सब संभव होने के लिए उस बगीचे में २६३ वनस्पति-विशेषज्ञ और माली रखने पड़ते हैं। इनका सालाना खर्च

---

१ "नया समाज" जुलाई १६४६, "क्रांति के लक्षण"।

तीन लाख रुपये से अधिक होता है। कोठी का तमाम घर-खर्च सालाना साढ़े चार लाख रुपये से ऊपर जाता है। कोठी की मरम्मत के लिए हर साल करीब बारह लाख रुपये और फर्नीचर-दुरुस्ती या टूट-फूट के लिए हर साल एक लाख रुपये खर्च होते हैं। पूरे सामान और फिटिंग की लागत पचास लाख रुपये है।

"ये खर्च परंपरागत चले आए हों, सो बात नहीं है। अंग्रेज वाइ-सरायों के जमाने में भी ये खर्च इतने अधिक नहीं बढ़े थे। सन् १६३८ में बगीचे का खर्च ५७,००० रु० से कुछ अधिक था, पर आज का खर्च तो इससे पंचगुना है। उसी प्रकार १६३८-३९ में घर खर्च एक लाख अस्सी हजार रुपये था, और आज वह इससे ढाई गुने से भी अधिक है। केवल मुद्रास्फीति की बदौलत इतना फर्क नहीं पड़ सकता।"

रामी—एक करोड़ का नया म्यूज़ियम जो बनाने जा रहे हैं, उसके लिए इसी भवन को क्यों नहीं ले लेते ?

महीप—इन्द्र-भवन को ढाहना चाहती हो रामी बहिन, अच्छा आगे सुनो—

"........हमारे प्रधानमंत्री हमेशा जीवन का स्तर ऊंचा उठाने की बातें करते रहते हैं, इसलिए शायद उन्हें यार्क रोड पर की अपनी कोठी ठीक नहीं मालूम हुई और वे कमांडर-इन-चीफ के आलीशान महल में रहने चले गए। तमाम मंत्री एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर पार्टियां देने में मशगूल हैं। आम जनता के लिए उन्होंने क्या किया, इसका यदि लेखा-जोखा तय्यार किया जाय, तो बड़े दुख के साथ 'कुछ नहीं' कहना पड़ता है।

"इधर ऊंचे ओहदे वाले लोग इस प्रकार अच्छे-अच्छे महलों का उपभोग करते हैं, तो उधर मामूली क्लर्क आदि लोगों को रात को सिर रखने के लिए भी जगह नहीं मिलती। इससे शायद यह भी सिद्ध हो सकता है, कि महकमों की कार्यक्षमता भी घट गई है। (लाट-साहेब के) एस्टेट-आफिसर की रिपोर्ट से पता चलता है, कि सन्

१६३६ में कुल ६४७२ रहने के क्वार्टर थे। और पिछले साल उनकी संख्या १५,४०४ हो गई। सन् १६३६ में रहने के मकानों के लिए कुल १०,००० अर्जियां आई थीं, जो पिछले साल ७०,००० हो गईं। दफ्तरों के लिए सन् १६३६ में ७,७५,००० वर्गफुट जगह काफी थी; पर पिछले साल वह ५६,३४,००० वर्गफुट हो गई। इस पर से क्या हम यह अनुमान लगायें कि महकमों की कार्यक्षमता बढ़ गई है? इन्हें तो कोई रोग हो गया है। हमें यह याद रखना चाहिए कि १६३६ के हिन्दुस्तान का एक-तिहाई हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। उसके बावजूद सरकारी नौकरों की संख्या में वृद्धि और उसी अनुपात में कार्यक्षमता की शिकायतों की वृद्धि—ये बातें किसी खराबी की निश्चित द्योतक हैं।

"हमें तो ऐसा डर लगता है कि ये सब हालतें आखिर ज़ार के जमाने की रूस की हालतें जैसी हो रही हैं। हम चाहते हैं और प्रार्थना करते हैं, कि ये सब बातें रूसी क्रान्ति जैसी क्रान्ति के पूर्व-चिन्ह न साबित हों। एक तरफ साम्राज्यशाही का ठाट-बाट और दूसरी तरफ भयंकर गरीबी और सारी चीजों का अभाव, ऐसी हालत जब पैदा हो जाती है, तभी क्रान्ति की संभावना रहती है। आज अपने देश में ये हालतें अधिकाधिक दृष्टिगोचर हो रही हैं। समाजवादी कम्युनिस्ट लोगों की धर-पकड़ इस मर्ज की ऊपर-से-ऊपर मरहम-पट्टी जैसी है, इससे मर्ज ठीक न होगा। हमारी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो—यही इस मर्ज की सच्ची दवा है। क्या हमारे नेता लोग समय रहते चेत जायंगे, या हमें रूसी क्रान्ति के समान भीषण-क्रान्ति के अग्नि-दिव्य में से गुजरना पड़ेगा?"

भगवानदास—कड़वी किन्तु सच्ची स्पष्टवादिता!

महीप—उससे मुझे इन्कार नहीं। प्रान्त के गवर्नर भी गवर्नर जनरल से पीछे नहीं रहना चाहते। जब ये नव्वाब बहादुर बाहर निकलते हैं, तो शरीर-रक्षक अफसरों, भटों की पल्टन की-पल्टन अनुगमन करती है। दूसरे स्टाफ तथा लग्गू-भग्गुओं की तो बात ही मत पूछिये। आखिर यह

परमुंडे फलाहार कब तक होगा? यह सारा पैसा देश के भूखे-नंगों का पेट काट कर आता है। हमारे वर्तमान गवर्नर जनरल से तो कभी आशा नहीं रखनी चाहिए, कि वह जरा भी नीचे आने की कोशिश करेंगे।

युधिष्ठिर— अंग्रेजों को पद-मर्यादा कायम करना था परमुंडे। लेकिन पदमर्यादा की बात अंधाधुन्ध खर्च से ही रह सकती है, यह नेहरूशाही तर्क है। १९३५ में जापान के प्रधान मन्त्री का वेतन ६००) मासिक के करीब था, और उसीके आसपास कोरिया के गवर्नर जनरल का। इस वेतन से तो अधिक उस समय हमारे जिले का एक ज्वाइंट-मजिस्ट्रेट या एस. डी. ओ. पाता था। लोगों को अन्धा समझ रखा है, इसीलिए ऊट-पटांग बात कहके समझा दिया जाता है।

मुखपात्री—मेरी तो बोलने की हिम्मत ही जाती रही, जब मैंने सुना कि १ अरब ४५ करोड़ रुपया हमारे नौकरशाही के चलाने में लग जाता है। वेतन तो गांधीजी ने मन्त्रियों को ५००) रखना चाहा था, किंतु अब वह तिगुने से भी सन्तुष्ट नहीं हैं। मैंने १९३५ में लिखी जापान-सम्बन्धी एक पुस्तक में वहां के पदाधिकारियों के वेतन की एक सूची देखी थी। आज के रुपये से मिलाने के लिए हम उस समय के रुपये को तिगुना कर सकते हैं। सूची यह है—

कर्मचारी	वार्षिक येन	मासिक रुपया
प्रधान मंत्री	९,६००	६००
राजमंत्री, कोरिया गवर्नर जनरल	६,८००	४२५
प्रिवी कौंसिल के सभापति, राजदूत, प्रधान जज, फार्मूसा- गवर्नर जनरल—	६,६००	४१२॥
राजकीय विश्व-विद्यालयों के चांसलर—	६,८००	४२५
मंत्रि-मंडल के चीफ सेक्रेटरी, तोक्यो के प्रधान पुलिस अफसर,		

प्रधान इञ्जीनियर—	५,८००	३६२॥
जिला मजिस्ट्रेट—	४,६५०	२९०॥=
छोटे अफसर—	४० से १४५ मा०	३० से १०५
युनिवर्सिटी प्रोफेसर—		७५ से ३२५
साधारण अध्यापक—	४५ से २०० मा०	३३$\frac{3}{4}$ से १५०
साधारण मजदूर—	१५ से ३० मा०	११$\frac{1}{4}$ सेर २$\frac{1}{8}$

महीप—स्वतन्त्र-भारत की सरकार के अन्धाधुन्ध खर्च और उसके सम्बन्ध में घटाव-समिति के ऊपर टिप्पणी करते हुए 'अमृत-बाजार-पत्रिका'[1] ने लिखा था—"समिति की सिफारिशों को पढते हुए, आदमी को ख्याल होने लगता है, कि उसने बहुत से भारी खर्चों के मदों को छुआ तक भी नहीं है।......एक महत्वपूर्ण सिफारिश विदेश में भेजे जाने वाले मिशनों के विषय में है, जिनके बारे में बहुत-सी कहावतें मशहूर हैं। समिति ने कहा है—अगले तीन वर्षों में सिवाय असाधारण अवस्था के किसी दूसरे देश में नया मिशन स्थापित न किया जाय। लेकिन वर्तमान मिशनों के बारे में क्या राय है? इन मिशनों के ऊपर खर्च करने में भारी हृदय-हीनता से काम लिया जाता है। भारत सरकार ने अभी तक इस बात को बिलकुल जनता को नहीं बतलाया, कि इन मिशनों में से प्रत्येक पर कितना खर्च हुआ और उसका विवरण क्या है।........भिन्न-भिन्न मिशनों में जाने वाले व्यक्तियों के नाम, उनके वेतन आदि, योग्यताएं तथा नियुक्ति के आधार भूत सिफारिशों या सम्बन्धों को प्रकाशित करना चाहिए। जनता के मन में सन्देह है, कि अनेक ऐसी नियुक्तियां और खर्च हुए हैं, जो कि राज्य के लिए आवश्यक नहीं थे, जिसे कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों को संतुष्ट करने के लिए किया गया है।"

युधिष्ठिर—नियुक्तियों के लिए योग्यता की बात पूछने की आव-

---

1. कलकत्ता १९-९-४९

श्यकता क्या है ? जो हाजिरी बजाये, अंग्रेजों की नकल अच्छी तरह कर सके, चाहे कैसा ही पतित क्यों न हो, वह योग्यतम व्यक्ति समझा जाता है। एक सज्जन जो अपने व्यक्तित्व के लिए देश में उतने अपरिचित नहीं थे, एक देश में अपने प्रतिनिधि बनाके भेजे गये। मुझे याद है, जिस वक्त उनकी नियुक्ति हुई थी, एक मित्र उनके बारे में बतला रहे थे—वह कह रहे हैं, मैं अपने आवास में एक कमरा चीनी ढंग से सजाऊंगा, दूसरा यूरोपीय और तीसरा कुछ और ढंग से। जान पड़ता है, उन्होंने अपने मंसूबे को कई गुना बढ़ा-चढ़ा के पूरा किया। साल-भर बीतने नहीं पाया, कि उन्होंने अपने और अपने नियुक्तिकर्त्ताओं के मुखों पर कालिख पोत दिया। पहली बार परदा खुला तो ढांकने-तोपने की कोशिश की गई, किन्तु अन्त में उन्हें बुला मंगाना पड़ा। एक और बड़े घर की बेटी बड़े दायित्व के साथ विदेशी मिशन में भेजी गई थीं, उन्होंने भी कम नाम-हंसाई नहीं की। ऐसे दर्जनों व्यक्तियों को बतलाया जा सकता है, जिनका तितली और छछूंदर होना योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण-पत्र माना गया। मुश्किल तो यह है, हमारे भाग्य-विधाताओं को संस्कृति का अत्यन्त विकृत और अधूरा ज्ञान है, किसी भी चमकने वाले को वह सोना समझ लेते हैं।

महीप—और हमारी नौकरशाही ऐसे सोने से भरी पड़ी है। यदि एक ही पीढ़ी से पाला रहता, तो सम्भव था, पुरानी पीढ़ी के खतम होते ही हमारा पिंड छूट जाता, किंतु पिंड छूटने वाला मालूम नहीं होता। बूढ़े अपने पुराने प्रभाव के कारण आयु अधिक हो जाने के बाद भी टिके हुए हैं। पेंशन लेने में पैसा भी कम मिलता, प्रभुता का भी अंत हो जाता है, इसलिए कोई बूढ़ा नौकरशाह अवसर ग्रहण करना नहीं चाहता। साथ ही वह अपनी सारी पौध को स्थान-स्थान पर बैठा देना चाहता है। मुझे युधिष्ठिर भाई क्षमा करें, यदि मैं कहूं कि इस प्रकार जगह-जगह गदहे भर दिये गए हैं, कौन इस गंदगी को साफ करेगा ?

नीचे को आँख दिखाये, ऊपर के सामने पूंछ हिलाये और अपरिचित के साथ रूखा और असयत बर्ताव करे।

महीप—मैं समझता हूँ, इस देश के नौकरशाहों से कोई आशा हमारे बूढ़े नेता भी नहीं कर सकते, यदि चालीस बरस से ऊपरवाले नौकरशाहों को अनिवार्य पेंशन लेने के लिए मजबूर नहीं किया जाता। यह वह खोपड़ियाँ हैं, जिनके दिल में कभी देशभक्ति ने जगह नहीं की, जिन्होंने एक नागरिक या मनुष्य के तौर पर कभी अपना कर्तव्य समझ कर कोई काम नहीं किया। उन्होंने जो काम किया, वह केवल पेट तथा ऊपर के डर के मारे किया। सबसे बढ़कर तो यह बात भी है, कि वह उस भ्रष्टाचार में सबसे आगे हैं, जिसका कि आरंभ द्वितीय विश्व-युद्ध में अंग्रेज अफसरों ने स्वयं किया था।

भगवानदास—भ्रष्टाचार का तो मुझे बहुत पता है, क्योंकि अपने भाई उसीके बल पर खूब फल-फूल रहे हैं। आज सारा चोर-बाजार इन्हीं अफसरों के बल पर चल रहा है। नौकरशाहों ने तो आचरण से दिखला दिया—"टका धर्मः टका कर्म टकाहि परमं पदं।" यदि इन्हें बंगाल की खाड़ी में ले जाके डुबो दिया जाय, तो इस देश का कुछ भी अकल्याण नहीं, बल्कि भला ही होगा। यह कहते हुए मैं इसे भी मानता हूँ, कि चारों तरफ कालिमा पुती रहने पर ऐसे भी कुछ अफसर मिलते हैं, जिनमें मानवता पाई जाती है, जो अपने कर्तव्य को समझते हैं, और जिन्हें कोई प्रलोभन डिगा नहीं सकता। लेकिन ऐसों को तपस्वी का जीवन बिताना पड़ता है। मुझे एक ऐसे व्यक्ति का पता है, जिसने काजल की कोठरी में जाकर भी कालिख अपने देह में लगने नहीं दिया। खर्च की मजबूरी न हो, इसलिए उसने ब्याह नहीं किया, और न ही वह सगे-संबंधियों के फेर में पड़ा। लेकिन इस तरह के तपस्वी कितने हैं?

युधिष्ठिर—अवस्था बहुत भीषण है। हमारी सरकार के जो संचालक हैं, उनके हाथ, पैर और आँखें यही नौकरशाह हैं। वह हमेशा अपने स्वामी के आज्ञाकारी हैं, जहाँ तक शिष्टाचार की बातों का संबंध

है। साथ ही जिस तरह वह अपने स्वामी की अयुक्त बातों का समर्थन करने के लिए तैयार रहते हैं, उससे मालूम होता है, कि वह अपने मालिक को गढ़े में गिरने पर चार लात और लगाने की तैयारी में हैं— जो आखिरी दम तोड़ रहा है, उसे चार लात लगाने में क्या हरज ? नौकरशाहों पर संयम जनता की सहायता से हो सकता था, लेकिन जनता धीरे-धीरे विस्मृत की जा रही है।

महीप— इधर नौकरशाहों में अब नई प्रवृत्ति हो चली है, विशेष कर अधिक तीक्ष्ण बुद्धिवालों में—वह सरकार की जगह पूंजीपतियों की नौकरी ज्यादा पसंद करने लगे हैं, क्योंकि वहां पैसे कमाने की कोई सीमा निर्धारित नहीं है, आखिर पैसा-आधीन भोग है। नौकरशाहों के सुधार का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। उनका तो अंत होकर ही सुधार होगा। नौकरशाहों की प्रभुता को कम किया जा सकता था, यदि वयस्क-मताधिकार से निर्वाचित ग्राम, थाना, उपजिला, जिला के निर्वाचित पंचायतों को बहुत-सा शासन-प्रबंध और न्याय का काम दे दिया जाता, लेकिन अभी तो बात उल्टी ही हो रही है। जिला के कलक्टर के हाथ में पहले से कम नहीं, अधिक अधिकार रखने की कोशिश की जा रही है।

चौदहवां अध्याय

दिल्ली के देवता

आज कई दिन बाद गोष्ठी हुई। भगवानदास दिल्ली गये हुए थे। गोष्ठी में उन्होंने कहा—

अयोध्या मथुरा माया, काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिका: ॥

युधिष्ठिर—भारत की ये प्राचीन सात पुरियाँ हैं—दिल्ली यहां न तीन में, न तेरह में। अयोध्या साकेत के नाम से प्रसिद्ध बहुत पुरानी नगरी है, यद्यपि ऐतिहासिक काल में उसका स्थान एक बड़े सांस्कृतिक और व्यापारिक नगर से बढ़कर नहीं था—अर्थात् वह कोई सबल राजनीतिक केन्द्र नहीं बन पाई थी। मथुरा को शकों ने बनाया। कई शताब्दियों तक शक-क्षत्रपों की राजधानी रहने से मथुरा धन-धान्य से सम्पन्न हो गई। चारों ओर मन्दिर और विलास-भवन फैल गए। मथुरा के साथ-साथ शकों ने कई जातियों का भी भाग्य खोल दिया। हरिद्वार या माया की ख्याति समृद्ध-नगरी के तौर पर कभी नहीं हुई; उसका माहात्म्य गंगाद्वार ने ही बढ़ाया। काशी राष्ट्र की वाराणसी चिरकाल से ही प्रसिद्ध नगरी रही है, यद्यपि उसका राजधानी बनने का सौभाग्य बुद्ध के जन्म के बहुत पहले खत्म हो चुका था। काञ्ची का दक्षिण-भारत में वही स्थान रहा है, जो उत्तर-भारत में काशी का—जहाँ तक कि संस्कृति और विद्या का संबंध है। किन्तु काञ्ची उससे बढ़कर भी कुछ थी। वह कई शताब्दियों तक प्रतापी पल्लव-वंश की राजधानी रही। उसने

दक्षिण-भारत में कला और साहित्य की उन्नति में ही भारी भाग नहीं लिया, बल्कि जावा, सुमात्रा और हिन्दचीन में भी भारतीय संस्कृति को फैलाने में उसका प्रथम और सबल हाथ रहा। अवन्तिका या उज्जयिनी के लिए क्या कहना है ? वह बहुत बार और सदियों तक सबल राजनीतिक केन्द्र रही, कवियों को प्रेरणा देती रही। उसे तो स्वतः कविमय कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं। हमारे ज्योतिषियों ने उसीको शून्य देशान्तर देने का मान प्रदान किया, जो कि आजकल अंग्रेज़ों ने ग्रीनविच को दे रखा है। मैं तो जब कभी राजधानी को दिल्ली से हटाने की बात सुनता हूँ, तो मेरा ध्यान उज्जयिनी की तरफ़ जाता है। इतिहास का अभिमान, मैं समझता हूँ, कोई प्राचीनपंथिता नहीं है। उज्जयिनी है भी भारत के केन्द्रीय स्थान में। वहाँ का जलवायु भी बड़ा स्वास्थ्यकर है और वहाँ दिल्ली की तरह की लू भी नहीं चलती। द्वारावती या द्वारिका चाहे ऐतिहासिक नगरी न हो, लेकिन है वह भी महत्व रखने वाली नगरी।

भगवानदास—क्यों न हम "अयोध्या मथुरा दिल्ली" कर डालें।

युधिष्ठिर—इन सातों नगरियों में दिल्ली को भी गिना जाता, यदि वह प्राचीन काल में कोई ऐतिहासिक स्थान रखती। दिल्ली सचमुच भारत की नई नगरियों में है। लेकिन दिल्ली को एक बड़ा सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह है युग-युग के स्मरणीय गांधीजी का निर्वाण-स्थान होना, उनके शहीद होने की भूमि बनना। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि विशाल भारतीय प्रजातन्त्र की प्रथम राजधानी बनने का सौभाग्य भी उसीको प्राप्त है। यह कहने की तो आवश्यकता नहीं कि पुराण-धर्मशास्त्र में दिल्ली का माहात्म्य न होने पर भी वह तेरहवीं से अठारहवीं, छ—शताब्दियों तक भारत की राजधानी रही है। आज भी दक्षिणवाले मुहम्मद तुग़लक की तरह दिल्ली को उजाड़ फेंकने की कोशिश में हैं, किन्तु दिल्ली की कीली ऐसी ढीली नहीं है। करोड़ों-करोड़ रुपए के भवन वहाँ तैयार हैं, जिनको छोड़, उजाड़कर

दूसरी जगह चले जाने के लिए मुहम्मद तुग़लक-जैसा ही दिमाग़ होना चाहिए।

मुखपात्री—पहले-पहल मैंने दिल्ली को १९१६ ई० में देखा था। यद्यपि उस समय का चित्र स्मृति-पटल पर से धूमिल हो गया है, किन्तु इतना तो याद ही है कि आज की दिल्ली का शतांश भी उस समय नहीं था। १९२६ ई० में यद्यपि नई दिल्ली की रूपरेखा कुछ खड़ी होने लगी थी, किन्तु अब भी वह सुनसान-बियाबान में ढाई-ईंट का डेरा ही थी। आज वह बहुत बढ़ती चली जा रही है।

युधिष्ठिर—दिल्ली आकाश की ओर नहीं, क्षितिज की ओर बढ़ना चाहती है। नई दिल्ली को बगीचों और बँगलों का शहर बनाया गया है—उद्यानों-क्रीड़ोपवनों का नगर। बहुत लोग उसकी तारीफ़ करते हैं। किन्तु मैं पसन्द करता, यदि दिल्ली आकाश की ओर बढ़ती और ज़मीन पर कम फैलती। हमारे देश में आदमी ज्यादा और ज़मीन कम है। यदि ज़मीन की कमी को थोड़ा भी आकाश से पूरा करें, तो यह लाभ की बात है। एक और मुश्किल इससे पैदा होती है। आसमान की ओर बढ़ने पर—पँचमहले-सतमहले मकान उठाने पर—दूरी भी कम हो जायगी। इस शताब्दी के अंत तक यमुना के दोनों तरफ़ बसी दिल्ली की आबादी आसानी से तीस लाख हो जायगी। किन्तु यदि तीस लाख आदमी क्रीड़ोद्यान-अन्तर्वर्त्ती बँगलों में बसाये गए, तो नगर को पचीसों मील तक बढ़ना होगा। फिर दोस्तों से मिलने, संस्थाओं में जाने, आफिसों में काम करने के लिए बहुत दूर-दूर की खाक छाननी पड़ेगी, जिसमें अधिक समय और पैसा तो लगेगा ही, मोटरों और बसों के लिए अधिक पेट्रोल की भी ज़रूरत होगी, भूगर्भी रेलों के लिए अधिक बिजली की आवश्यकता होगी। दुनिया में कोई ऐसा नगर नहीं है, जहाँ इस तरह की फ़जूलख़र्ची की जाती हो।

महीप—नई दिल्ली की जिन्होंने नींव रखी थी, उनका विचार कुछ दूसरा ही था। उनको भारत के ग़रीबों की कसाले की कमाई की परवाह

नहीं थी। सबके पास कारें थीं। उनके लिए दूरी क्या चीज़ थी ? उन्हें सुन्दर बाग़ों, हरी घास से ढँका लान और स्वच्छ हवा चाहिए थी। पैसे की उन्हें परवाह नहीं थी। वे नहीं जानते थे कि दिल्ली कभी उनके हाथों से छिन जायगी और जिन लोगों के हाथों में जायगी, वे इसे बहुत महँगी विलासिता समझेंगे और बेवकूफी भी।

युधिष्ठिर—खैर, वह महँगी बेवकूफी हमारे मत्थे पड़ी है। दिल्ली के नये शासक शायद उसे बेवकूफी नहीं समझते, क्योंकि वे भी निर्धनतम देश की सबसे अधिक ख़र्चीली राजधानी होने के पक्षपाती मालूम पड़ते हैं। देश की ऊँची नौकरियों और विदेश के भारतीय दूतावासों में इस नीति का साफ़ परिचय मिलता है। गवर्नर-जनरल को अपने पद की मर्यादा क़ायम रखनी है, इसलिए अंगरेज़ गवर्नर-जनरलों से कम वेतन देना पद की मर्यादा को बट्टा लगाना है! पर लोगों ने ये दलीलें नहीं सुनीं, जिसका परिणाम यह तो हुआ कि गवर्नर-जनरल का वेतन कुछ कम करना पड़ा। लेकिन अभी गवर्नर-जनरल को अपने महाप्रासाद में ही रहना होगा।

भगवानदास—गवर्नर-जनरल या भविष्य के हमारे राष्ट्रपति के महाप्रासाद को गीदड़ों और लोमड़ियों के लिए तो नहीं छोड़ा जा सकता। फिर उसका क्या करना चाहिए ?

महीप—वही, जो दूसरे देशों में प्रासादों के साथ किया गया है। सेंट पीटर्सबर्ग में ज़ार के शरद्-प्रासाद में आज संसार का एक बहुत बड़ा म्यूज़ियम है, इसे भी राष्ट्र के बड़े म्यूज़ियम को ही देना चाहिए। तब उसको ठीक रखने के लिए जो ख़र्च पड़ेगा, वह गवर्नर-जनरल के मत्थे नहीं मढ़ा जायगा। हमारा देश बड़ा है, हमारे देश की संस्कृति और इतिहास और भी बड़े हैं। गवर्नर-जनरल का भवन उसके लिए बहुत उपयुक्त होगा और बहुत बड़ा भी नहीं होगा। किन्तु मालूम नहीं राष्ट्रीय संग्रहालय के प्रति हमारे दिल्ली के देवताओं की कोई रुचि है भी या नहीं।

युधिष्ठिर—दिल्ली में वैसे तो बहुत खुली जगह है—चौड़ी सड़कें, विशाल मैदान, दूर-दूर बँगले तथा प्रासाद—किन्तु मेरे-जैसों का दम घुटे बिना नहीं रहता। पहले तो अंगरेज़, इस घर के स्वामी, राजधानी के भौंरे थे। उनकी यदि इस देश के भूत-भविष्य-वर्तमान तथा इस देश की संस्कृति-साहित्य-कला के प्रति कोई स्नेह-सहानुभूति न थी, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि वे विदेशी बाट के बटोही थे, उन्हें इन चीज़ों से क्या लेना-देना था? किन्तु आज के दिल्ली के भोक्ता क्यों इतने फीके-फीके दीखते हैं? फीका कहने पर शायद आपत्ति हो सकती है। वे अधिक रसज्ञ हैं—अंगरेज़ों से समय से दिल्ली अधिक अधर-राग और अधिक मुखचूर्ण व्यय करती है। ऊपर से काजल का ख़र्च भी कई गुना बढ़ गया है। दिल्ली में अप्सराओं का सम्मान कम नहीं हुआ है, इसलिए वहाँ के देवताओं को फीका कहना ठीक नहीं जँचेगा। मैं अधरराग, मुखचूर्ण, नेत्रांजन का विरोध करनेवाला प्राचीनपंथी नहीं हूँ। मैं मानता हूँ कि आज से हज़ार-दो हज़ार वर्ष पहले भी इन प्रसाधनों का आज से भी अधिक प्रयोग होता था। मैं उन्हें फीका इसलिए कहता हूँ कि दिल्ली के ये देवता हाल ही में दिल्ली छोड़कर गये देवताओं के अंधे नकलची हैं। पश्चिम की कितनी ही बातें लेना बुरा नहीं, लेकिन अपनी भी तो कोई चीज़ होती है। उसका भी तो कुछ अभिमान होता है। लेकिन दिल्ली में उसका शायद ही कहीं पता लगे। मुझे तो दिल्ली के इन फीके देवताओं के लिए सबसे उपयुक्त नाम 'हिन्दू एँग्लो इंडियन' मालूम देता है। एँग्लो-इंडियन न एँग्लो रहे, न इंडियन। वे इस देश की मिट्टी-पानी से अपना कोई वास्ता नहीं समझते। हम आज के दिल्ली के देवताओं के बारे में भी इतना तो कह ही सकते हैं कि सहस्राब्दियों से चली आई हमारे देश की मिट्टी के साथ इन्हें कुछ परायापन-सा मालूम होता है। आज दिल्ली में उसी तरह अंगरेज़ी का अखंड राज है, जैसा कि अंगरेज़ों के रहते समय था। अंगरेज़ी यहाँ से हट जायगी, यह कहना कुफ़्र है—महापाप!

अगर अँगरेज़ों की कोई चीज़ वहाँ नहीं है, तो वह है उनकी कार्य-क्षमता। हाँ, दिल्ली के देवता लगभग हर बात में भारतमाता की क़सम खाने और गांधीजी की दुहाई देने से नहीं चूकते, लेकिन वह भी विदेशी भाषा में और विदेशी ढंग से ! इन देवताओं का रंग फीका है, क्योंकि अगर ये रंग की मजबूरी को हटा सकते, तो शायद उससे भी बाज़ नहीं आते।

सुखपात्री—दिल्ली में क्या कोई स्वदेशी भावना वाले नहीं हैं ?

युधिष्ठिर—दिल्ली में कोई-कोई स्वदेशी भावनावाले भी हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु उनकी हालत तो 'जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी'-जैसी है। एक विभाग के मुखिया ने कुछ ऐसी ही अनधिकार-चेष्टा की—अंगरेज़ी शब्दों को जमा करके उन्हें हिन्दी-जामा पहनाने की कोशिश करने लगे। दिल्ली के महादेव को किसी तरह पता लग गया। फिर तो वह फटकार पड़ी, कि अनधिकार-चेष्टाकारियों को ज़िन्दगी-भर न भूलेगी। दिल्ली के देवताओं को हिन्दू-एंग्लो-इंडियन इसीलिए कहना होगा, कि उनके अन्तस्तल में न हिन्दू का भाव है, न एंग्लो-इंडियन ही वे अपने को कह सकते हैं। हाँ, एक बात है। एंग्लो-इंडियन इस देश में उड़ते पंछी ही रहे, जिनको याद करने के लिए इतिहास बाध्य नहीं होगा। आर्थिक तथा दूसरी तरह के पुनर्निर्माण की बात राम जाने, किन्तु भारत की भूत और भविष्य की संस्कृति को तो इनमें कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती।

भगवानदास—इनकी चलेगी, तब तो दिल्ली भारत का सांस्कृतिक केन्द्र नहीं ही बनेगी।

युधिष्ठिर—जो भी हो, बहुतों की इच्छा न रहते भी भारत की राजधानी तो आख़िर दिल्ली हो ही गई। पृथ्वीराज कन्नौजाधिपति जयचंद के सामने यहां का राजा एक सामंत से बढ़कर नहीं था—दिल्ली कन्नौज के सामने पनभरनी दासी से अधिक महत्त्व नहीं रखती थी—किंतु तुर्कों ने दिल्ली में ही डेरा डाला और अपना झंडा गाड़ दिया।

अंगरेज़ भी अछुता-पछुता कलकत्ते से दिल्ली उठ आए और अब दिल्ली ही स्वतंत्र भारत की भी राजधानी बन गई है। हम इसके साथ मुहम्मद तुग़लक का-सा बर्ताव करने के पक्षपाती नहीं हैं और न अकबर का ही रास्ता लेना चाहते हैं। किन्तु क्या दिल्ली यथार्थ में भारत की आठवीं पुरी बन सकती है ? गांधीजी जाते-जाते उसकी नींव तो रख ही गए हैं, उसे एक राष्ट्रीय तीर्थस्थान तो बना ही गए हैं। काशी, काञ्ची, अवन्तिका केवल मोक्षदायिका ही नहीं रहीं, उन्होंने संस्कृति, साहित्य और कला के विकास में भारी भाग लिया था, जिसकी ओर दिल्ली के आज के देवताओं का ध्यान भी नहीं है। उनके संस्कृति-प्रेमी की कसौटी यह होगी कि कितनी जल्दी गवर्नर-जनरल का प्रासाद राष्ट्रीय संग्रहालय के रूप में परिणत होता है और मध्य-एसिया-म्यूज़ियम को उसके सड़े स्थान से हटाकर यहाँ लाया जाता है। दिल्ली के साहित्य-प्रेम की कसौटी होगी कि कितनी जल्दी वहाँ का विश्वविद्यालय हिन्दी को अपना लेता है। आज तो इसकी क्या आशा हो सकती है, जब कि उसके सबसे उपयुक्त हर्ता-कर्त्ता अब भी अंगरेज़ ही समझे गए हैं। दिल्ली के शिक्षा-मंत्री और उनके सचिव के बारे में कुछ कहना तो सूरज को दीपक दिखाना है। जब दिल्ली के देवताओं में अंगरेज़ी का ही ओढ़ना-बिछौना, अंगरेज़ी का ही भोजन-चबेना है, तो दिल्ली से साहित्य के लिए क्या आशा की जा सकती है ?

भगवानदास—साहित्य के प्रसार में रेडियो का भी हाथ है।

युधिष्ठिर—वह सचमुच वाग्देवी की वाणी है, किन्तु उसका भी वही रास्ता है, जो दिल्ली के तेतीस हज़ार देवताओं का। दिल्ली के महादेव, शिक्षा-मंत्री और दिल्ली-रेडियो को यह भी ख़याल नहीं है, कि कम-से-कम उसके खंभे तो हिन्दी की भूमि में हैं। पर अब तो मानो मथुरा नहीं, दिल्ली तीन लोक से न्यारी, महादेव के त्रिशूल पर अपने को खड़ा समझती है। दिल्ली में ही हुए एसिया-सम्मेलन के एक एसियाई प्रतिनिधि कह रहे थे—"एसियाई सम्मेलन था, यूरोपीय साम्राज्यवाद

के ख़िलाफ़ हम अपनी आवाज़ उठा रहे थे और बोलते थे हम लोग अंगरेज़ी और फ्रेंच में ! कैसी विडम्बना है यह !" इस वक्त तो खैर, विडम्बना का सवाल नहीं उठता। विडम्बना तो तब होती है, जब कि दिल्ली के देवताओं की आप्रलय—अर्थात् जब तक दम-में-दम है, तब तक—अंगरेज़ी और अंगरेज़ियत को क़ायम रखने की दृढ़प्रतिज्ञा पर ध्यान जाता है !

भगवानदास—क्या दिल्ली कला में वृद्धि करेगी ?

युधिष्ठिर—क्यों नहीं करेगी ? अगर दिल्ली के वर्तमान देवता मोहिनी को अमृत वितरण करते समय केतु बनकर पाँती में बैठ गए होते, तो ज़रूर मुश्किल था। हाँ, उनके रहते-रहते बहुत कम संभावना है कि दिल्ली कोई महत्वपूर्ण कला-केन्द्र बन सकेगी। कला अर्थात मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, अभिनयकला, संगीतकला—इन सबका संबंध अतीत से चले आये उस भारतीय प्रवाह के साथ है, जिसका परिचय दिल्लीवाले देवता करना ही नहीं चाहते। फिर दिल्ली कैसे आठवीं पुरी हो सकेगी, इसका उत्तर आगे आनेवाले ही दे सकेंगे।

पन्द्रहवाँ अध्याय

भाई-भतीजे-भांजे

महीप ने आज मुस्कराते हुए कहा—युधिष्ठिर भाई, आज एक कविता सुनाने की इच्छा है।

युधिष्ठिर—राजनीति से उतरकर महीप, तुम कविता करने लगे ?

रामी—यदि महीप ने कोई कविता की है, तो सुनाने दीजिये युधिष्ठिर भाई, मैं समझती हूँ स्वामी जी और भगवान भाई को उजुर नहीं होगा।

सुखपात्री—रोज-रोज मीठा खाते-खाते कभी-कभी नमकीन खाने की भी इच्छा हो उठती है।

भगवानदास—और मैं नहीं समझता, महीप कोरी कविता के शौकीन हो गए हैं। सुनाओ महीप भाई, तुम्हारी भी कविता सुन लें।

रामी—और मैं वचन देती हूँ, यदि कविता कसौटी पर ठीक उतरी, तो मैं अपनी छोटी बहन कमला से कहूँगी—क्यों पास में महीप जैसा कवि रहते तुम अपनी काव्य-प्रतिभा को इधर-उधर बिखेर रही हो।

खोजीराम—अच्छा तो महीप, पारितोषिक भी ठीक हो गया, अब झटपट कविता सुना दो।

महीप—कविता तो उपेन्द्रचन्द्र मल्लिक ने की है और सो भी अंग्रेजी में। मैंने उसकी हिन्दी में तुकबन्दी-भर कर दी है। सुनिये—

मेनन मेनन चारों ओर, मेनन शासित देश,
मेनन काले मेनन उजले, मेनन खाकी वेष।

मेनन ब्याहे मेनन क्वांरे, मेनन छोड़े फिर से ब्याहे,
मेनन राज - निवेश, मेनन बद या बेस।
मेनन मेनन चारों ओर, मेनन शासित देश।
मेनन हमारे दायें बायें, मेनन हमारो सीस,
क, ख, मेनन ख, ग, मेनन, मेनन का से हा।
बुद्धिक मेनन बुद्धू मेनन, हंसमुख मेनन दुर्मुख मेनन,
कायर मेनन हर्पुल मेनन, मेनन अग्नी वेश।
बोले नेहरू हकारे पटेल जब, मेनन शासित देश,
दूर की भूमि देशी राजे, प्रांते होवे अथवा केंद्रे,
जगह सभी और सभी काममें, मेनन वहां है पहुँचा मिलता,
मेनन चतुरे मेनन चंटे, मेनन साँचे मेनन कांचे।
मेनन धूर्त्ते मेनन सुस्ते, मेनन करे प्रशास,
बोले नेहरू हंकारे पटेल जब, मेनन शासित देश।

भगवानदास—यह मेनन क्या चीज है? यह संस्कृत का शब्द तो नहीं है। अंग्रेजी मैं थोड़ा ही जानता हूं, हो सकता है, कि किसी दूसरी भाषा का हो।

महीप—न यह अंग्रेजी का शब्द है न किसी और भाषा का। यह शुद्ध भारतीय शब्द है। केवल देश की एक जाति की उपाधि है।

रामी—लेकिन "मेनन-शासित-देश" क्यों कहा?

महीप—क्योंकि हमारे देश के शासकों का बाहरी खोल उतार दीजिए, तो भीतर से एक-न-एक मेनन जरूर निकल आयगा।

रामी—यह तो सुनने की बात है, जरा बतलाओ तो। हमने तो लंदन के अपने राजदूत मेनन का ही नाम अभी तक सुना था।

महीप—अच्छा तो सुनिये—

(१) क. अ. गंगाधर मेनन, त्रावन्कोर-कोचीन युक्त-राज्य के अटर्नी-जनरल।

(२) क. क. मेनन, पुलिस डिप्टी-सुपेरिंटेन्डेन्ट, मद्रास।

(३) क. म. मेनन, सेक्रेटरी, त्रावन्कोर-कोचीन युक्त-राज्य (पहले भारत सरकार के विकास-सचिव)।

(४) क. प. स. मेनन, परराष्ट्र-सचिव, भारत सरकार ।

(५) क. र. क. मेनन, सचिव अर्थ-विभाग, भारत सरकार ।

(६) ग. (गोविन्द) मेनन, न्यायाधीश, मद्रास हाईकोर्ट ।

(७) ट. ग. मेनन, भारत सरकार के लंका में व्यापार-कमिश्नर ।

(८) ट. स. मेनन, आई. सी. एस. ।

(९) प. अ. मेनन, युक्तमन्त्री, विदेश-विभाग, भारत सरकार ।

(१०) प. ग. मेनन, मन्त्री कोचीन ।

(११) प. न. मेनन, भवानीपुर, कलकत्ता ।

(१२) प. म. मेनन, सचिव स्वास्थ्य-विभाग, भारत-सरकार ।

(१३) म. (माधव) मेनन, स्वास्थ्य और शिक्षा-मन्त्री मद्रास ।

(१४) म. ग. मेनन, युक्तराष्ट्र संगठन के भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के प्रथम सचिव ।

(१५) ल. (लक्ष्मी) मेनन, युक्तराष्ट्र संगठन के पेरिस अधिवेशन के भारतीय मंडल की सदस्या (अब युक्त राष्ट्र संगठन के सचिवालय के महिला-विभाग में उच्च-कर्मचारिणी।)

(१६) व. क. क. (कृष्ण) मेनन, इंगलैंड में भारतीय राजदूत ।

(१७) व. क. र. मेनन सचिव, यातायात-विभाग, भारत-सरकार ।

(१८) व. ग. मेनन, विशेष कर्तव्य—नियुक्त अफसर मद्रास ।

(१९) व. य. मेनन, परामर्शदाता, राज्य-विभाग, भारत सरकार।[1]

रामी कविता तो तुम्हारी महीप, कुछ ऐसी ही वैसी रही, यह कहने से खिन्न न होना। मैं तुम्हारे लिए कमला से सिफारिश करूंगी; लेकिन जो तुमने मेननों की सूची दी है, उससे तो जान पड़ता है, सचमुच भारत मेननमय है ।

---

१. बड़ी सूची परिशिष्ट में देखिये ।

खोजीराम—आज युक्त-प्रांत, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, आसाम, बंबई, उड़ीसा सभी प्रांतों के प्रधानमंत्री ब्राह्मण हैं। थोड़ा समय पहले मद्रास, पूर्वी पंजाब और मालवा के प्रधानमंत्री भी ब्राह्मण थे, लेकिन क्या किया जाय, जबकि चाहे क्षत्रियों के हाथ में हो या अपने ही हाथ में, पिछले चार हजार वर्षों से हमारे सिर पर ब्राह्मणों का डंडा शासन करता आ रहा है।

भगवानदास—क्या मेनन केरल की कोई जाति है?

युधिष्ठिर—जाति नहीं, बल्कि नायर जाति की कई उपाधियों में यह एक उपाधि है। नायरों में मेनन, वारियर, पनिक्कर, पिल्ले आदि कई उपाधियां होती हैं। उत्तर वालों को मालूम नहीं, इसलिए वह समझते हैं कि मेनन कोई अलग जाति है। समाज में इनका स्थान कुछ विचित्र-सा है।

रामी—विचित्र-सा क्या? क्या वह अन्त्यज अछूत तो नहीं हैं?

युधिष्ठिर—नहीं, वह अन्त्यज नहीं उच्चज हैं। केरल में ब्राह्मणों के बाद नायरों का ही नम्बर आता है। यही नहीं बल्कि शताब्दियों से नायर-कन्याओं के साथ ब्राह्मण प्रणय करते आये हैं। अभी बीस साल पहले तक बहुत ही कम समृद्ध और संभ्रांत नायर परिवार मिलते जिनकी कन्या ब्राह्मण की परिणीता न हो।

महीप—जान पड़ता है, केरल के ब्राह्मण हमारे यहां से अधिक उदार हैं, ब्राह्मण से दूसरे नंबर पर होने से नायर क्षत्रिय होंगे। हमारे यहां तो क्षत्रिय की कन्या से कोई ब्राह्मण ब्याह नहीं कर सकता।

युधिष्ठिर—उदार नहीं हैं, बल्कि यहां से भी ज्यादा चंट हैं। नायर-कन्या को केरल का ब्राह्मणकुमार अपनी पत्नी नहीं बनाता, कन्या माता-पिता के घर में रहती है, उसका पुत्र भी नानी के घर में रहता है। सबका भरण-पोषण कन्या के मातृकुल से होता है। अपने इन पुत्रों के भरण-पोषण के सुभीते के लिए ब्राह्मणों ने नायर-कुल के लिए विशेष विधान बना दिये हैं। उनके यहाँ घर की संपत्ति—मातृक

संपत्ति कहना चाहिए—का अधिकार केवल कन्याओं को होता रहा, पुत्र अधिकारी नहीं माने जाते रहे। अभी थोड़े ही दिन हुए, जबकि नायर-पुत्रों को भी उत्तराधिकार मिलने लगा।

खोजीराम—तब तो केरल के ब्राह्मण हमारे यहां से भी छंट निकले।

युधिष्ठिर—इतना ही नहीं केरलीय ब्राह्मणों ने अपने कुल में संपत्ति का अधिकार केवल ज्येष्ठ-पुत्र के लिए रखा, कनिष्ठ पुत्रों को संपत्ति ही से नहीं ब्राह्मण-कुलजा पत्नी से भी वंचित कर दिया, वह केवल नायर पुत्रियों से संबन्ध कर सकते रहे।

महीप—और इन्होंने नायरों में संपत्ति का अधिकार केवल कन्याओं को ही देकर अपनी परम चतुराई या स्वार्थान्धता का पूर्ण परिचय दे दिया। तो हमारे मेनन लोग उसी वंश के हैं, जिसमें ब्राह्मण-पुत्रों की संख्या पर्याप्त है।

युधिष्ठिर—पूरे ब्रह्म-क्षत्र हैं। यदि मेननों को आप अपनी जाति के प्रति पक्षपात का दोष लगाते हैं तो वह दोष ब्राह्मणों पर भी आयगा; ब्राह्मण ही नहीं, बल्कि उनके अवान्तर भेदों पर भी आयगा।

महीप—हां, मेननों और नायरों से कम आप नेहरू, गुरटु, काटजू, कौल, कुंजरू, कचरू, दर जैसे मैदानी काश्मीरी ब्राह्मणों को सभी जगह छाये पायंगे।

युधिष्ठिर—ऐसा क्यों होता है?

महीप—खून पानी से अधिक गाढ़ा होता है, अतएव अपने भाई-भतीजे-भांजे को सभी जगह भरने की दुष्प्रवृत्ति देखी जाती है।

युधिष्ठिर—लेकिन क्या यह स्वाभाविक नहीं है? आखिर अपने भाई-भतीजे-भांजे को व्यक्तिगत तौर से आदमी जानता है—योग्यता से परिचित होता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि किसी पद के लिए पूछे जाने पर वह उसके लिए सिफारिश करे।

महीप—योग्यता ही नहीं, उसकी अयोग्यता को भी वह जानता

है, लेकिन तब भी देखा जाता है कि ,दूसरे योग्य व्यक्ति से उसको पहले आगे बढ़ाया जाता है। आगे बढ़ाने में कहीं-कहीं तो बहुत नीचता का परिचय दिया जाता है। चार सौ पानेवाले आदमी को उठाकर दो हजार की जगह पर बिठा दिया जाता है। एक सज्जन एक प्रेस के सर्वाधिकारी बना दिये गए थे, जिन्होंने प्रेस कभी देखा तक नहीं था। एक-दो महीना रहने पर उन्हें स्वयं अपनी कमजोरी मालूम हुई और अपने उन्हीं संरक्षकों की मदद से उन्हें किसी विदेशी दूतावास में भेज दिया गया।

युधिष्ठिर—यदि आप मेनन-सेन, बनर्जी-मुकर्जी, नेहरू-कौल केवल इन्हीं लोगों को दोष देना चाहते हैं, तो मैं कहूंगा आप जड़ पकड़ना नहीं चाहते। दुनिया के किसी देश को देखें, हर जगह ऊँचे दर्जों पर पहुंचे लोग अपने सम्बन्धियों का प्रबन्ध करते हैं। इंगलैंड में भी आप इसे देखेंगे। लेकिन उनके यहां जातिवाद इतना कड़ा नहीं है, ब्याह-शादी केवल अपनी ही जात में नहीं की जाती। हमारे यहाँ तो अपनी ही जाति, कहीं तो अपनी ही उपजाति में सम्बन्ध होता है, जिसके कारण जात-भाई का ख्याल बहुत संकीर्णरूप तक ले जाता है।

खोजीराम—मैं मानता हूँ, जो अपने रक्त-सम्बन्धी होते हैं, उनसे आदमी की घनिष्ठता होनी स्वाभाविक है और यह ठीक है, यदि हमारे यहां की यह जात-बिरादरी के बांध तोड़ दिये जायं, तो यह संकीर्णता कितनी ही हद तक दूर हो जायगी। लेकिन चाहे कितना ही खून के सम्बन्ध का ख्याल हो, लेकिन उसके कारण गदहे को रथ में जोतना तो अच्छा नहीं है। आखिर इससे देश का काम खराब होता है। अयोग्य आदमी कैसे अपने पद के दायित्व का निर्वाह कर सकता है ?

भगवानदास—कहते हैं अच्छे खानदान के पुत्र अपनी कुलागत शिक्षा-दीक्षा के कारण बहुत संस्कृत होते हैं। वह ऊँचे पद को देख कर चौंधिया नहीं जाते, बल्कि बिलकुल घर-सा अनुभव करते हैं।

महीप—शायद इसीलिए अब उच्चपदों और राजदूतों के स्थान के लिए राजाओं और राजकुमारों को आगे बढ़ाने की कोशिश हो रही है।

भगवानदास—बहुत-से राजाओं और राजकुमारों का मुझे परिचय है। उनकी संस्कृति केवल वेष-भूषा और खान-पान में अंग्रेजों की नकल तक सीमित है।

युधिष्ठिर—यह तो साधारण कुलपुत्रों के सम्बन्ध में भी नहीं कहा जा सकता कि वह संस्कृति-शून्य होते हैं। सांस्कृतिक चाल-व्यवहार को जनमते ही कोई नहीं सीख लेता।

खोजीराम—राजाओं के लिए हमारे नेताओं को इतनी चिन्ता क्यों है? राज-काज उनके हाथ से छिना कहा जाता है, किन्तु उन्हीं में से आज कितने ही सर्वशक्तिमान राज-प्रमुख हैं; मोटी-मोटी रकमें तो सभी को पेंशन के तौर पर मिल रही हैं। उनके प्रासाद और मूल्यवान आभूषणों में से भी बहुत कम ही लिया गया है। यदि फजूल-खर्ची से काम न लें और बुढ़िया आँधी न आ जाय, तो उनके पास जो धन है, वह एक नहीं चार पीढ़ियों के लिए पर्याप्त है।

महीप—लेकिन मुझे कम विश्वास है, कि पहली पीढ़ी अगली पीढ़ी के लिए कुछ छोड़ेगी। यदि महाक्रांति ने बीच में ही उनके हाथों को खाली नहीं कर दिया, तो भी आदत बिगड़ी हुई है। वह कोई उत्पादक कार्य नहीं कर सकते, फिर जमा पैसा कितने दिनों तक चलेगा। लेकिन सरदार की उन पर बड़ी कृपा है। रियासतों के एकीकरण का जो काम हुआ है, उसमें अपने बाद वह सबसे अधिक श्रेय राजाओं को देना चाहते हैं—"देश भक्ति के नशे में चूर होकर राजाओं ने अपने स्वत्वों को त्याग दिया, इतिहास में इतना बड़ा त्याग कभी नहीं हुआ था।"

भगवानदास—आप इन सब बातों पर विश्वास करते हैं न?

महीप—मैं विश्वास करूं या न करूं, किन्तु करोड़पतियों के

अखबार गला फाड़-फाड़कर यही कह रहे हैं और स्वयं सरदार भी राजाओं की प्रशंसा करते नहीं थकते।

युधिष्ठिर—राजाओं की बात न सही किंतु रियासतों के एकीकरण में सरदार पटेल को श्रेय देना ही पड़ेगा। अंगरेजों ने भारत-भूमि छोड़ते समय केवल उसे दो टुकड़ों ही में नहीं बाँटा था, बल्कि ऐसा ढङ्ग लगाया था, कि भारत के सभी छ सौ छत्रधारी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो जायं। १५ अगस्त १९४७ से पहले ही जगह-जगह ऐसा रङ्ग-ढङ्ग भी दिखलाई पड़ता था। त्रावनकोर के दीवान अंग्रेजों के पिट्ठू रामस्वामी अय्यर की उछल-कूद हम लोगों को भूली नहीं है। इन्दौर भी होल्कर साम्राज्य का स्वप्न देख रहा था। हैदराबाद तो समझता था, कि उसके महान् छत्रधारी होने में कोई विवाद नहीं है। मैं समझता हूँ महीप, बूढ़े सरदार में और कमियां हो सकती हैं, बेचारा नेत्रहीन है, केवल टटोलकर ही देखता है; किंतु छ सौ छत्रधारियों को खदेड़ कर रियासतों को एक जगह लाने मे उसने जो चतुराई दिखाई है, उसे मानना पड़ेगा।

महीप—आपके कहने का मैं मूल्य समझता हूं। सरदार की ही दृढ़ता थी जो नेहरू हैदराबाद के मामले मे अपनी ढुलमुलयकीनी का प्रमाण नहीं दे सके, यह मैं मानता हूँ। लेकिन, रियासतों के एकीकरण में जिसने सबसे बड़ा काम किया है, बल्कि कहिये ८० प्रतिशत से भी अधिक जिसको श्रेय देना चाहिए, उसको भुलाया जा रहा है।

भगवानदास—वह कौन है जिसको भुलाया जा रहा है?

महीप—रियासतों की जनता को। यदि उसने अपने रजुल्लों को जरा भी शह दिया होता, तो एक ही साथ त्रावनकोर, मैसूर, कोल्हापुर, बड़ोदा, इन्दौर, ग्वालियर, उदयपुर, बीकानेर, जयपुर, त्रिपुरा, कूचबिहार आदि सभी राजा उठ खड़े होते, फिर किसीकी शक्ति नहीं थी, कि भारत को फिर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की स्थिति में जाने से बचा सकता। वहां की जनता केवल चुप ही नहीं रही, बल्कि वह सारे भारत की

जनता के साथ चलने के लिए तैयार थी। राजाओं को अपनी सेना पर विश्वास नहीं रह गया था। उन्होंने बहुत हिला-डुलाके देख लिया, कि यदि और तीन-पांच किये, तो जो पेंशन और संपत्ति हाथ आ रही है, उससे भी हाथ धोना पड़ेगा, और फाके-मस्त बाट का भिखारी बनना पड़ेगा। भगवान भाई, यह बात सच है या नहीं ?

भगवानदास—मैं महीप बाबू से बिलकुल सहमत हूं। कुछ रियासतों का मुझे व्यक्तिगत परिचय है। अंग्रेजों ने जाते वक्त जो किया, उसे देखकर उनका दिल हरा हो गया था। किन्तु जब अपने आस-पास के भूखे भेड़ियों को देखा, तो दिल सूख गया।

महीप—इसलिए राजाओं के आत्मत्याग और दूरदर्शिता का ढिंढोरा बिलकुल झूठा है और सरदार के मुंह से अनेक बार उसकी आवृत्ति मुझे असह्य होने लगी। अब उस स्वार्थत्याग की दुहाई देकर उनको और उनके पौधों को बड़ी-बड़ी नौकरियों में भरने का उपाय रचा जा रहा है, यह अति है। जो मोटी-मोटी पेंशन उन्हें दी जा रही है, मैं नहीं समझता, जनता उसे अधिक दिनों तक बर्दाश्त कर सकेगी।

युधिष्ठिर—काफी इधर-उधर बहक चुके, हम "अंधा बाँटे रेवड़ी, फिर फिर अपनों को देय" की बात कर रहे थे और चले गए राजाओं के ऊपर।

महीप—लंबे अर्थ में लेने पर यह भी अन्धे की रेवड़ी है। अब राजाओं का देवपुत्र होना खतम हो गया। हमारे करोड़पति सेठ बड़े रुढ़िवादी हैं, नहीं तो कुछ दिनों में देखते, अधिकांश राजकुमारियां सेठों के अन्तःपुरों में दिखाई पड़तीं।

भगवानदास—और एक बात नहीं जानते महीप बाबू, सेठ दालमिया को किसी ज्योतिषी ने बतला दिया था, कि सेठजी का पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा। इसीलिए वह ताबड़तोड़ तरुणियों से ब्याह रचाते चले जा रहे हैं। प्रधान मंत्री ने भारत को प्रजातन्त्र घोषित करके सेठजी के चक्रवर्ती पुत्र पाने की लालसा पर पानी फेर दिया, और उप-

प्रधान मंत्री ने बीकानेर को राज्यशासन से वंचित करके डालमिया सेठ की अगले जनम की साध को भी धूल में मिला दिया। मुझे तो बूढ़े सेठ के ऊपर बड़ी दया आ रही है। अगली पीढ़ी और अगले जनम दोनों का ठीक-ठाक हो गया था, लेकिन अब मालूम होता है, सेठ को या तो मेकादो के वंश में जनम लेना पड़ेगा या इंगलैंड की राजकुमारी के वंश में।

रामी—बड़े दुर्भाग्य की बात है, अब तो संसार में राजवंश भी बहुत गिने-चुने रह गए हैं। मालूम नहीं सेठजी के दूसरे जनम लेते-लेते यह राजवंश भी रह जायंगे या नहीं।

महीप—नहीं रहे तो सेठ को इस पृथ्वी से आशा छोड़ देनी होगी और फिर किसी दूसरे ही लोक के बारे में ज्योतिषियों से पूछना होगा। अच्छा, अन्धे की रेवड़ी की बात तो जहां देखो तहां मालूम होती है। यदि दिल्ली में एक सिन्धी-मंत्री पहुंच जाता है, तो जहां-तहां से भाई-भतीजे-भांजे जमा करके आधी जगह उनसे भर देना चाहता है।

भगवानदास—केवल भाई-भतीजा-भांजा होना स्नेह और आत्मीयता के कारण नहीं होते। बाणभट्ट ने[1] "एकगोत्रता, एकजातिता, एक साथ पलना, एक देश-निवास, बार-बार दर्शन, एक दूसरे की स्नेह की बात सुनना, परोक्ष में उपकार करना या एक-स्वभावता" को स्नेह का कारण बतलाया है।

युधिष्ठिर—ऐसा पक्षपात बड़ा दोष है, इसको मैं स्वीकार करता हूं; किन्तु मनुष्य पत्थर नहीं है, उस पर हर एक कार्य का प्रभाव या प्रतिप्रभाव पड़ता है। जो उसके आत्मीय हैं, उनके कष्टनिवारण को वह अपनी जिम्मेदारी समझता है।

---

१. "एकगोत्रता वा, समान जातिता वा, समं संवर्धन वा, एकदेशा निवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुराग श्रवणं वा, परोक्षोपकारकरणं वा, समानशीलता वा स्नेहस्य हेतवः।" —हर्षचरित

महीप—सो सब मानता हूँ, लेकिन आपको मालूम है, कि इस अंधे की रेवड़ी के अनुसार कितनी संस्थाएं परिवार की संपत्ति बन गई हैं। यदि परिवार के लोग ही भरते, किन्तु योग्यता में कोई कमी न होती, तब भी कोई बात नहीं थी। कलकत्ता विश्व-विद्यालय को ले लीजिये, आशुतोष मुख्योपाध्याय ने उसके लिए बहुत किया; किन्तु आज जान पड़ता है, वह मुख्योपाध्याय-परिवार, उसके सम्बन्धियों तथा गांवपुर के रहनेवालों की संपत्ति बन गया है। कभी साला उप-कुलपति बनता है, तो कभी बहनोई। अध्यापकों में भी उनकी भरमार देखी जाती है। विश्व-विद्यालय को जहां सबसे योग्य विद्वानों का केन्द्र होना चाहिए था, वहां थोड़े-से को छोड़कर उसमें बस पिंजरापोल की गायें जमा हो गई हैं। मुझे डर लग रहा है, कि कहीं मालवीयजी के लगाये भव्य पौधे हिन्दू-विश्व-विद्यालय की भी वही हालत न हो; गोविन्दजी को सावधान रहने की आवश्यकता है।

युधिष्ठिर—लेकिन उपाय क्या है? यदि किसी संस्था या मन्त्रि-विभाग में सिन्धी आता है, तो सिन्धियों को भर देता है; पंजाबी आता है, तो पंजाबियों को; मद्रासी आता है तो चारों ओर वही-वही दिखाई देने लगते हैं।

खोजीराम—और यदि कायस्थ आता है तो कायस्थों को भरना शुरू कर देता है। शायद आप लोगों को मालूम नहीं, कि कलकत्ता हाईकोर्ट को कायस्थों की मलकियत कहा जाता है। डाक्टर राधा-विनोद पाल जैसा योग्य न्यायाधीश कायस्थों के षड्यन्त्र के मारे वहां टिक नहीं सका।

रामी—पटना और प्रयाग हाईकोर्टों के बारे में भी यही बात सुनाई पड़ती है।

युधिष्ठिर—लेकिन जिन जातियों का आप नाम नहीं ले रहे हैं, वह दूध की धुली तो नहीं हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को देखिये, वह ब्राह्मणों का गढ़ बना हुआ है। काशी का गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज

ब्राह्मणों का गढ़ तो होना ही चाहिए, क्योंकि अब्राह्मण देश में भारी संख्या में रहने पर भी पुरोहिती और व्यास-गद्दी के अभाव में संस्कृत की ओर खिंचते नहीं। डाक्टर मंगलदेव शास्त्री अपनी योग्यता के कारण किसी तरह वहां प्रधानाचार्य हो गए। ब्राह्मणों ने उनका नाकों दम कर दिया, "जिमि दशनन में जीभ बेचारी" बनकर दिन काटना पड़ा।

शर्मा—काशी संस्कृत कालेज में इतना ही नहीं है, वहां किसी समय दक्षिणी ब्राह्मणों का प्रभुत्व था, तो वह औरों को आने देना नहीं चाहते थे, और आज सरयूपारीण ब्राह्मण किसी दूसरे को वहां घुसने देना नहीं चाहते।

मुखपात्री—बड़ा गोत्रोच्चार हुआ, लेकिन रास्ता क्या है?

महीप—सारे गोत्रोच्चार के लिए तो यहां न किसीके पास समय है, न शक्ति। उसके लिए तो कहना चाहिए—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधु-पात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश, पारं नयाति॥

सोलहवाँ अध्याय

प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उदारता

मुखपात्री—आज मुझे ही एक प्रश्न रखने दीजिए। और कुछ नहीं, युद्ध के नियमों के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ। आप जानते ही हैं, कि मैं सारे भूतों (प्राणियों) में अ-द्रोह को मनुष्य का चरम आदर्श मानता हूं। जब प्राणि-मात्र में अद्रोह रखना है, तो मनुष्य की मनुष्य के प्रति तो और भी सहानुभूति होनी चाहिए। युद्ध के समय एक दूसरे पर बड़ी क्रूरता की जाती है, किन्तु विचारवान् पुरुष इस क्रूरता को सदा बुरा कहते रहे हैं। आज भारत से हमारी स्वतन्त्रता के दुश्मन विदा हो गए हैं, पाकिस्तान ने देश के एक भाग को काटकर अपना राज्य खड़ा कर लिया, और मैं यह मानता हूं, कि वह तब तक छेड़ाखानी करता रहेगा, जब तक एक मर्तबे अच्छी पटकी नहीं खायगा। लेकिन आज मैं पाकिस्तान के बारे में आपके सामने प्रश्न नहीं करने जा रहा हूं। हमारे देश में अपनी स्वतन्त्र सरकार है, लेकिन आपस में मतभेद है; उसी मतभेद का भयंकर परिणाम महात्माजी की हत्या हुई। इस लज्जाजनक नृशंस कृत्य का शोक और लांछन भारत कभी नहीं भूल सकेगा। मतभेद का दूसरा रूप आज हमें प्रान्तों में उथल-पुथल के रूप में दिखाई पड़ रहा है।

खोजीराम—आपका अभिप्राय कम्युनिस्टों की उथल-पुथल से है; जो बंगाल तथा आंध्र में प्रचंड रूप धारण कर रही है।

मुखपात्री—हां, मेरा मतलब उसीसे है। आप जानते हैं, मेरे जैसे

धर्म-भीरु और अपनी मान्यता के अनुसार धर्म पर चलने वाले व्यक्ति की नास्तिक कम्युनिस्टों के सिद्धांत के साथ कभी सहानुभूति नहीं हो सकती। अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं, और जिस दल या सम्प्रदाय में चरम उत्सर्ग के लिए जितने अधिक आदमी होंगे, उसमें उसी मात्रा में अच्छे आदमियों की संख्या भी होगी।

भगवानदास—स्वामी जी, शायद आपको कम्युनिस्टों को नजदीक से देखने का मौका नहीं मिला है, यदि वैसा होता तो आपको मालूम होता—

महीप—कि शैतान और कम्युनिस्ट में कोई अन्तर नहीं है; यही कहना चाहते हैं न ?

भगवानदास—मुझे अपने शब्दों में कहने देने चाहिए था, खैर. कम्युनिस्टों में, मैं समझता हूँ, सबसे कम भले आदमी मिलेंगे।

मुखपात्री—मेरी दिगम्बर-जैसी मूर्त्ति और त्याग-तपस्या को देखकर यह न समझें, कि मैं किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के सम्बन्ध में सहसा कोई निर्णय कर लूंगा। वृक्ष बीज से पहचाना जाता है। त्याग को मैं मानव का सबसे बड़ा गुण मानता हूं। मैं इस वक्त न कम्युनिस्टों के लक्ष्य और सिद्धांत के बारे में कहना चाहता हूँ, और सिवाय सुनी-सुनाई बाजारी बातों के मैं उनके बारे में कुछ जानता भी नहीं; लेकिन, उनकी त्याग की बातें सुनी हैं, और अपने सुहृद्-मित्रों के सम्बन्धी होने से कुछ के बारे में अधिक जानने का भी मौका मिला है। इसलिए मैं यह मानने को तैयार नहीं, कि इतने त्याग वाले व्यक्ति नीच हो सकते हैं। अस्तु, मैंने कह ही दिया कि मुझे उनके सिद्धांत का न ज्ञान है, न उसके बारे में कहना चाहता हूँ; सिर्फ यही जानना चाहता हूं, कि युद्ध लड़ते समय भी युद्ध के कुछ सदाचारिक नियम होते हैं, कुछ शिष्टाचार होते हैं, जिनका पालन करना आवश्यक होता है। कम्युनिस्टों से लड़ते समय हमारी सरकार क्यों इतना नीचे उतरती है ?

भगवानदास—नीचे कहा उतर रही है ? और सरकार को जब वह

मजबूर कर रहे हैं, तो वह चुपचाप कैसे रह सकती है ?

मुखपात्री—भगवानजी, आपसे और मुझसे और समय भी बात हो सकती है, साथ ही आप कांग्रेस के अत्यधिक पक्षपाती हैं, यद्यपि ईमानदारी से, इसमें शक नहीं। मैं चाहूंगा कि दूसरे भाई इसके बारे में अपनी राय दें। क्या इन नये शत्रुओं के साथ लड़ने के लिए किसी शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं है ?

खोजीराम—मानवता का तकाज़ा है, कि चाहे कैसे ही शत्रु के साथ युद्ध होता हो, शिष्टाचार की सीमा माननी चाहिए। यद्यपि दुनिया में कहीं पर भी कम्युनिस्टों के साथ किसी शिष्टाचार का पालन नहीं किया गया, सभी जगह इन्हें कानून-बहिष्कृत माना गया; लेकिन इसके कारण संघर्ष ने जैसा वीभत्स और उग्र रूप धारण किया, उससे हमें सीख लेनी चाहिए और मर्यादा बांधनी चाहिए।

युधिष्ठिर— और यह भी सोचना चाहिए, कि ये साधारण प्रति-द्वन्द्वी नहीं हैं, ये ऐसे प्रतिद्वन्द्वी हैं, जो हो सकता है, दस या पन्द्रह वर्ष बाद आज के शासकों का स्थान ग्रहण करें। इसमें कोई संदेह नहीं, कि आज जो जबर्दस्त समस्याएं देश के सामने हैं, उनकी ओर से यदि आंखें मूंदी गईं, उन्हें तरह दी गई, तो हमारे देश के लिए भी कम्युनिज्म छोड़ दूसरा रास्ता नहीं. चाहे प्रिय लगे या अप्रिय।

रामी—यह बात तो साफ मालूम होती है। मैं नहीं कह सकती समस्याएं कितने दिनों तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं और कितने समय बाद भारत आज के चीन की जगह पहुंचेगा, किन्तु कुछ बातें स्पष्ट-सी होती जा रही हैं।

महीप—मैं रामी बहिन, बतलाऊं कि कब लालभवानी भारत में पधारेगी ! आज रुपये का सेर-भर आटा-चावल बिक रहा है; इस समय लालभवानी हमारी सीमा पर खड़ी केवल झांक रही है। जब बारह छटाँक का हो जायगा, तो उसका पंजा भारत की भूमि पर पहुंच जायगा; जब आठ छटांक का हो जायगा, तो एक पैर जम जायगा;

जब चार छटांक का हो जायगा, तो लालभवानी कृष्ण की भांति त्रिभंगी मूर्ति धारण करके हमारी भूमि पर अवस्थित हो जायगी और निम्नवर्ग से लेकर सारी साधारण जनता "भइ प्रगट कृपाली, दीन-दयाली, बहुजन की हितकारी" कहते गीत गाने लगेगी। और एक छटाँक पहुँचने पर लालभवानी के न मानने वाले नास्तिक और विरोधी भारत-मही में बहुत थोड़े रह जायंगे।

खोजीराम—तुमने तो भाई महीप, क्रांति के नापने का थर्मामीटर बना दिया, जिससे आंख न रखने वाला भी वस्तुस्थिति को जान सकता है।

युधिष्ठिर—लेकिन हमें लालभवानी पर बहस नहीं करनी है, सवाल यह है कि भवानी के सेवकों, कम्युनिस्ट शत्रुओं के साथ सरकार को कैसा बर्ताव करना चाहिए।

मुखपात्री—दूसरे देशों में उनके विरुद्ध कैसे हथियार उठाये जाते हैं, हमें उसका ख्याल नहीं करना चाहिए। हमारे देश की संस्कृति और महान् नेता गांधी की शिक्षा हमें बतलाती है कि शत्रु के प्रति भी उदार होना चाहिए।

भगवानदास—अर्थात् शत्रु को प्रहार करने के लिए आते देखकर अपने हथियार छोड़ देना चाहिए।

मुखपात्री—अगर हथियार लेकर आपसे लड़ने आ रहा हो, तो मैं नहीं कहूंगा कि आप शस्त्र त्याग दें, मैं महात्माजी की भांति शस्त्र-त्याग नहीं पसन्द करता; क्योंकि जो बात साधारणतया व्यवहार्य नहीं दीख पड़ती, उसे लोगों से मनवाने का प्रयत्न निष्फल है। युद्ध के समय आये शत्रु के खिलाफ आप भले अपना हथियार उठायें, लेकिन जो बन्दी हो गया है, उसके साथ क्रूरता अच्छी नहीं है।

भगवानदास—क्रूरता नहीं की जाती स्वामीजी, यह झूठा प्रोपेगण्डा है।

मुखपात्री—प्रोपेगण्डा के सब साधन तो कांग्रेस और उसके सम-

र्थकों के पास हैं। जब दो-चार व्यक्ति मारे जाते हैं, तब कहीं किसी अखबार में जरा-सी खबर छप जाती है। मैं युधिष्ठिरजी से जानना चाहूँगा, कि जिन कारणों से कम्युनिस्टों ने बङ्गाल के जेलों में भूख-हड़ताल की और उनमें से एक जेल के भीतर मरा, बाहर सड़कों पर असन्तोष प्रगट करने के लिए कई पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी गोली से मरीं, तब उनकी मांगों को सरकार ने माना; क्या उनकी शिकायतें उचित नहीं थीं ?

युधिष्ठिर—हाँ, कम्युनिस्ट बंदियों के साथ उचित बर्ताव नहीं हो रहा था। १९४१ में भी जब देवली में बंदियों ने भूख हड़ताल की, उस समय वहाँ चार आना सेर दूध मिलता और चार आना सेर मांस। आज कलकत्ता में मांस का दाम सोलह गुना है और दूध का छ गुना से कम नहीं। अर्थात जो उस समय का छ आना था, वह आज के सवा दो-ढाई रुपयों के बराबर है। देवली के बंदियों ने छ आना पैसे को भोजन के लिए अपर्याप्त समझकर भूख हड़ताल की थी और अंग्रेज सरकार ने बिना किसी आदमी को मृत्यु-मुख में ढकेले बारह आना दैनिक भोजन के लिए मंजूर कर लिया, जो आज के साढ़े चार-पांच रुपये के बराबर है। बंगाल सरकार उससे आधा भी देने के लिए तैयार नहीं, और हर तरह से बंदियों को उत्पीड़ित और अपमानित करना चाहती है। आखिर ये बंदी शिक्षित और संस्कृत हैं। उनमें कई ऐसे मेधावी हैं, जिन्होंने विद्या, विज्ञान या राष्ट्रीय राजनीति में बहुत ऊँचा स्थान पाया होता, यदि उधर का रास्ता लिया होता। वह कोई काम तत्काल वैयक्तिक या दलगत लाभ के लिए नहीं करते, जिसकी अदूर भविष्य मे संभावना दीख पड़ रही है। उन्हें स्वतन्त्र जीवन से वंचित करके आपने अनिश्चित काल के लिए जेलों में डाल दिया है। जिस आदमी को हाथ-पैर बाँधके पटक दिया गया, उस पर शस्त्र चलाना कोई वीरोचित काम नहीं है।

भगवानदास—तो आपका मतलब है कम्युनिस्टों के जेल में पहुंचते

ही वहां राजप्रासाद तैयार कर दिया जाय ?

युधिष्ठिर—ढाई रुपया रोज का भोजन आज के जमाने में राज-प्रासाद की बात नहीं कही जा सकती, यह आप स्वयं समझते हैं। उनको जीने के लिए तो कुछ बातें करनी जरूरी हैं। आप जिद करके उन्हें यदि कुचलना चाहेंगे, तो वह कुचले जाने के लिए तैयार हो जायंगे; लेकिन अपनी आन से नहीं डिगेंगे। उनके घोर शत्रु भी उन पर कायर होने का दोषारोप नहीं करते। और उनकी मांगें भी ऐसी नहीं थीं—विशेषकर भोजन-छाजन के सम्बन्ध में—जिन्हें असम्भव कहके ठुकरा दिया जाय। स्वदेशी सरकार होने के जोश में अंधेर-खाता नहीं करना चाहिए। सुनते हैं न, लोग सरकार को दोष देते हैं, कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों और बंदियों के उत्पीड़न और खामखाह कष्ट देने में अंग्रेजी सरकार से भी ज्यादा क्रूर है, इसका क्या जवाब है ?

मुखपात्री—हमारे देश में धर्म-युद्ध की परिपाटी पुरानी रही है। हम समझते हैं, कि उसे बर्ताव में लाना चाहिए। अधर्म-युद्ध से सारा राष्ट्र पतन की ओर जाता है। धर्म-युद्ध का एक नियम यही होना चाहिए कि बंदी होने पर उनके साथ सहृदयतापूर्ण मानवोचित व्यवहार हो। आखिर वे पराये नहीं हमारे ही हाड़-मांस हैं, हमारे कितने ही कांग्रेसी नेताओं के सगे-सम्बन्धी भी उनमें हैं, उन्हें क्यों हम हिंस्र जंगली जन्तु समझ कर उनके साथ निष्ठुर बर्ताव करते हैं ?

भगवानदास—वह भी तो तेलंगाना में जंगली जन्तु-सा बर्ताव करते पाँच सौ कांग्रेसियों को मार चुके हैं ?

मुखपात्री—पत्रों से हमें एकतरफा खबरें मिल रही हैं। यह बतलाया जाता है कि उन्होंने पाँचसौ कांग्रेसियों को मार डाला, किन्तु यह नहीं बतलाया जाता, कि कम्युनिस्टों में से कितने पुलिस की गोलियों के शिकार हुए। केवल गोली के भरोसे उनको दबाने में कोई कहीं सफल नहीं हुआ।

खोजीराम—यदि कभी भारतवर्ष में कम्युनिस्ट अपना शासन

स्थापित करने में सफल होंगे, तो मैं कहूँगा, चीन में चाङ् कैशक की भाँति हमारे यहां उसका श्रेय हमारे प्रधान मंत्री और उप-प्रधान मंत्री को देना होगा।

भगवानदास—क्या उलटी बात कर रहे हैं? हमारे दोनों नेता चाहते हैं कि कम्युनिज़्म का संसार में भी नाम-निशान न रह जाय, और आप उन्हें ही उसका आवाहन-कर्ता बतला रहे हैं।

खोजीराम—मैं ठीक कहता हूं, ऐसे व्यक्ति को भी श्रेय दे सकते हैं, जो प्रतिकार करने वाली क्रियाओं को न करके शत्रु के सफल होने में सहायक होता है। मैं इसी अर्थ में उन्हें आवाहन-कर्ता कहता-मानता हूं। आखिर "उलटा नाम जपे जग जाना, वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।"

युधिष्ठिर—यदि वैसा ख्याल न भी हो, तो भी मानवता के नाते हमें उनके साथ संवेदना रखनी होगी, यद्यपि उसका अर्थ यह नहीं है, कि उनके कार्य में आप सहभागी हों।

महीप—मैं कम्युनिस्टों का प्रशंसक हूं। उनकी ईमानदारी पर मुझे शक नहीं है। उनमें कमियां भी हैं, किन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा, कि उनमें कितने ही गुण भी हैं। अनुशासन में तो उनकी पार्टी अद्वितीय है। भारत में यदि कोई विराट् आर्थिक और राजनीतिक क्रांति होगी, तो उसमें कम्युनिस्ट ही वीरता दिखलाने में सबसे आगे रहेंगे। जो आज कहते हैं कि सिवाय एक गोली के कम्युनिस्ट अचि-कित्सनीय हैं, उन्हें यह भी देखना होगा कि आज के शासन का सबसे अधिक शक्तिशाली शत्रु है कम्युनिस्ट पार्टी। सभी वाम-पंथियों का सहयोग लेकर कम्युनिस्ट पार्टी ऐसा दल है, जो आज के शासकों का स्थान ले सकती है, अर्थात् वही उसके संभवनीय उत्तराधिकारी हैं। यदि इस बात को हमारे कर्णधार समझ लें, तो वह आतंक फैलाने की गलती नहीं करेंगे।

रामी—उनके साथ मानवोचित बर्ताव करने ही पर आप उनके विश्वासपात्र होंगे। मैं तो कहूंगा, भारत सरकार को इस पार्टी के प्रति

अपने रुख को बदलना चाहिए। इन्हीं के साथ नहीं दूसरे राजनीतिक बंदियों के साथ भी बर्ताव करने में विशेष सौहार्द रखना चाहिए, क्योंकि ये लोग साधारण चोर-डाकू नहीं हैं।

महीप—लेकिन चोर-डाकू बनाकर भी कितने ही कम्युनिस्टों को फँसाया जाता है।

युधिष्ठिर—अंधा-धुंध गिरफ्तारी और नजरबंदी केवल सरकार की अपनी कमजोरी को बतलाती है।

भगवानदास—अंधा-धुंध तो नहीं कह सकते। सरकार के लिए चारा नहीं रह जाता, तभी तो गिरफ्तारी होती है। हाल में देखा ही है, कि डा० लोहिया ने सरकारी कानून की अवहेलना की, न्यायालय ने उनको सजा दी, लेकिन सरकार ने उनको छोड़ दिया।

महीप—"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।" डा० लोहिया ने क्या कसूर किया था? यही न कि नेपाल की निरंकुश राणाशाही के प्रति विरोध प्रगट किया, जिसने सारे देश को एक जबरदस्त कैदखाना बना रखा है। नेपाली जनता को उतना भी अधिकार नहीं है, जितना अंग्रेजी शासन में भारतवासी रियासत प्रजा को था। इस निकृष्टतम तानाशाही के खूनी हाथों से जनतन्त्रता का दम भरने वाले हमारी सरकार के कर्णधार हाथ मिला रहे हैं; शुभ कामनाएँ ही नहीं भेज रहे हैं, बल्कि उनके शिष्टमण्डल भी वहां पहुंच रहे हैं। दिल्ली और काठमांडू में आजकल बड़ी घनिष्ठता है, यह जानते हुए भी कि नेपाल के स्वेच्छाचारी शासकों का भारतीय सरकार के ऊपर कभी विश्वास नहीं हो सकता, उसे हरदम डर लगा रहेगा, कि कहीं भारतीय जनता का रुख उनके प्रति कड़ा न हो जाय।

भगवानदास—लेकिन नेपाल तो पहले से स्वतन्त्र राष्ट्र है?

युधिष्ठिर—हम इस पर आगे कभी विचार करेंगे, इसलिए यहां अधिक करने की आवश्यकता नहीं। नेपाली प्रजा की दासता को देखते हुए कोई सहृदय या राजनीति से परिचय रखने वाला भारतीय उदासीन

नहीं रह सकता। जिस समय हमारे पत्रों ने अपनी आवाज बन्द कर रखी थी, हमारे नेता नेपाली शासकों के साथ चोली-दामन बन रहे थे, और स्वतन्त्रता के पुजारियों पर नेपाल में क्रूर अत्याचार हो रहे थे, जेलों में उनके साथ पाशविक बर्ताव हो रहे थे, उस समय इस निर्भीक योद्धा ने नेपाल की मूक वेदना को प्रकट करने के लिए दिल्ली में प्रदर्शन किया, ताकि दिल्ली के देवताओं की नींद खुले, लेकिन दिल्ली के देवताओं ने लोहिया को पकड़ कर जेल में बन्द कर लिया। क्यों जेल में बन्द किया? डा० लोहिया और उनके साथियों ने शान्तिपूर्ण ढंग से विरोधी प्रदर्शन करके भारतीयों का ध्यान नेपाल की ओर आकर्षित करना चाहा। क्या यह अपराध का काम था? क्या भारत के शासक दुनिया-भर के तानाशाहों का ढाल बनना चाहते हैं? हम लोहिया और उनके साथियों का उनकी वीरता के लिए अभिनन्दन कर सकते हैं, किन्तु दिल्ली के शासकों को छोड़ने पर साधुवाद नहीं दे सकते।

भगवानदास—अपनी सरकार के कोई-कोई आचरण तो अवश्य हृदय को खिन्न कर देते हैं, किन्तु उसने कितने ही कार्य बड़े महत्वपूर्ण किये हैं, जो सदा स्मरणीय रहेंगे।

युधिष्ठिर—दीवाल पर जो पलस्तर पीछे लगता है, वही स्थायी माना जाता है। पहले का पलस्तर चाहे कितना ही अच्छा हो, लेकिन पीछे यदि भद्दा काला पोचरा फेर दिया जाय, तो वही आगे दिखाई पड़ेगा। मैं समझता हूँ, हमारे शासकों को दैव से भी अधिक शक्तिशाली तथा न्याय करने में अत्यन्त क्रूर इतिहास का कोई डर नहीं है। वह समझते हैं आजकल जिस तरह करोड़पतियों के पत्र उनकी विरुदावली गा रहे हैं, समाचार-एजेंसियाँ उनकी यशोगाथाएँ चारों ओर फैला रही हैं, उसी तरह वह इतिहास से भी करवा लेंगे।

महीप—अंग्रेज भी ऐसा ही सोचा करते थे और आज केवल भारतीय जन की इच्छा के विरुद्ध केवल उनके भक्त ही अंग्रेजों का यशोगान करना कर्तव्य समझते हैं। उन्हें अंग्रेजों से शिक्षा लेनी चाहिए।

यह ठीक है, यदि उन्हें पांच साल और जीने और राज्य करने का अवसर मिल जाय, तो वह राज भोगकर अपने को कृतकृत्य समझेंगे। हाँ, लेकिन क्या इसे मानवोचित समझा जा सकता है ? मुझे इतना ही कहना है, कि जिन अपने प्रतिद्वन्द्वियों को वह कुत्तों की तरह समझते हैं, जिनके लिए गाली के अतिरिक्त उनके पास कोई शब्द नहीं है, उनमें बहुतेरे इतने उच्च आदर्श और त्याग के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर चुके हैं, जिसकी तुलना हमारे शासकों में शायद ही किसीसे हो सके। वह सभी समस्याओं को हल करने में अपने को असमर्थ सिद्ध कर रहे हैं। यह समस्याएँ संभव हैं, इनके प्रतिद्वन्द्वी आके हल करें। यदि इंगलैंड के 'टोरी' और मजदूर पार्टी वाले यह जानकर काम करते हैं, कि शायद उन्हें एक दूसरे के लिए स्थान खाली करना हो, तो हमारे शासकों के लिए भी अपने राजनीतिक शत्रुओं के बारे में उदारता से काम लेना चाहिए। क्योंकि ''अविवेकः परमपदास्पदम्''। उन्हें मानवता का ख्याल करना चाहिए; मानवता का ख्याल न हो, तो इतिहास के क्रूर न्याय का ख्याल होना चाहिए और इस तरह की क्रूरता के व्यवहार को छोड़ देना चाहिए।

खोजीराम—चोरबाजारी और रिश्वत में करोड़पति सेठ पकड़े जाते हैं, और अधिकांश बेदाग छोड़ दिये जाते हैं।

महीप—अधिकांश तो पकड़े ही नहीं जाते। सन्देह होते ही किसी तरह उनके पास सूचना पहुँच जाती है।

खोजीराम—खैर जो पकड़े जाते हैं, वह छोड़ दिये जाते हैं, या ऊहरन चुराके सूई का दान प्रायश्चित के लिए पर्याप्त समझा जाता है। फिर वह मूँछ पर ताव दे देश को सदाचार का उपदेश देते हैं, आर्थिक योजना के लिए सुझाव पेश करते हैं। समाज के इन घोर शत्रुओं को, जिनकी क्रूरता के कारण देश की अवस्था बदतर होती जा रही है, और कितने ही जगह में कितने ही नर-नारी अकाल के ग्रास बन रहे हैं, जहां फाँसी पर झुला देना चाहिए था, वहाँ वह हमारे सरताज

बने फिरते हैं। एक ओर समाज के शत्रुओं, निकृष्ट स्वार्थ के लिए जघन्य काम करने वालों के साथ यह बर्ताव और दूसरी ओर राजनीतिक उच्चादर्श के लिए जीवन अर्पित करने वाले तरुण-तरुणियों को साधारण मनुष्य के अधिकार से भी वंचित रखा जाता है।

सत्रहवां अध्याय

समस्याएँ टाली नहीं जा सकतीं

भगवानदास—परिस्थिति बड़ी भयंकर मालूम होती है। आहार की हालत देखते हैं, तो जान पड़ता है, भीषण खड्ड के ऊपर खड़े हैं, गिरे तो कहीं ठिकाना नहीं लगेगा। कपड़े की हालत भी वही है, अर्धनग्न हैं, घर की हालत यह है कि लोग भारी संख्या में सड़ी झोंपड़ियों में रहते हैं। हमारे कारखानों की मशीनें और सेना के हथियार सभी मंगनी के हैं, किसी झपट में पड़ते ही आत्मरक्षा करना मुश्किल होगा। ऊपर से हमारे कर्णधार चींटी की चाल से भी चलते नहीं दीख पड़ते। वह अपने ही किनारे चक्कर काट रहे हैं और समझते हैं, कि बड़ी मंजिल मार रहे हैं। वह लोगों के मन को जैसे बात बनाकर दिलासा दे सकते हैं, वैसे ही समझते हैं कि उनके पेट को भी बात से भर सकते हैं। चारों ओर की समस्याओं को देखकर और अपनी अकर्मण्यता से मिलाकर पता नहीं लगता, कि हमारी समस्याओं को हटाने की किसीको फिक्र भी है।

युधिष्ठिर—सारी निराशाओं के भीतर बस एक आशा की किरण आ रही है, वह यही, कि समस्याएं टाली नहीं जा सकतीं। आर्थिक कानून बड़े निष्ठुर होते हैं, वह किसीका मुंह नहीं देखते। तराजू की डंडी को देखा है न? यदि एक तरफ जरा भी कोई चीज रख दी जाय, तो दूसरी ओर का पलड़ा उठ जाता है। वैसे ही समस्याएँ गम्भीर होने पर आदमी का पैर उखाड़ देती हैं। जो समस्याओं के साथ खेल

करना चाहता है, वह नहीं समझता कि वे उसके पैर उखाड़ देंगी ।

महीप—शायद कर्णधारों को ख्याल है, कि पैर धीरे-धीरे उखड़ेगा। सारे पैर को जमीन से उठने में दस-पाँच साल लगेंगे ।

खोजीराम—दस-पाँच साल बाद ही सही, किन्तु पैर तो उखड़ेंगे, फिर मुंह के बल गिरना होगा।

महीप—वह समझते हैं, पैर किसी दूसरे के उखड़ेंगे, हम कितने दिनों तक जियेंगे, बस अपनी घानी की परवाह है। अभी तो चैन से बीत रही है। इसी तरह दस-पांच साल और चैन से चले जाने की आशा है। आखिर चीन में २० साल लालभवानी को आने में लगे। जैसे पुराने छकड़े को बाँध-बूँधकर चलाया जाता है, जैसे पुरानी नाव को लत्ता ठूँस-ठाँसकर चलाया जाता है; उसी तरह हमारे नेताओं को विश्वास है, उन्हें कुछ साल जो जीना है, उसमें इसी तरह हमारी नाव भी चल ही जायगी। उन्हें भारत में लालभवानी के पहुंचने की जितनी चिंता है, उससे ज्यादा परमाणु-बम वालों को है। वह चीन के रास्ते भारतवर्ष को नहीं जाने देंगे।

खोजीराम—चीन में बीस साल लगा, तो यहां भी बीस साल अवश्य लगेगा, यह कोई तर्क नहीं है।

महीप—तर्क नहीं है, किंतु यह तो हम कह सकते हैं, कि अधिक-से-अधिक इतना ही समय लग सकेगा।

मुखपात्री—महीप बाबू, आप बीस साल के समय को भी अत्य-धिक समझते हैं? शायद आपको ख्याल नहीं है, कि लालभवानी के रास्ते में और बहुत-सी बाधाएं हैं। देख ही रहे हैं, जिस ओर श्री १००८ जगद्गुरु शंकराचार्य, श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज चले जाते हैं, वहीं सब लोग पलक बिछाने के लिए तैयार हो जाते हैं। करपात्रीजी महाराज को देख ही रहे हैं, कितने लोग उनके पीछे श्रद्धा से पागल हो रहे हैं। योगीराज अरविंद, रमन महर्षि, आनंदीमाई जैसे अवतार भारत में व्यर्थ तो नहीं हुए हैं। आप क्या समझते हैं, कि इतने आध्या-

त्मिक प्रभावों के रहते लालभवानी यहां पधार सकती है ?

महीप—आध्यात्मिक प्रभाव यदि ईमानदारी का हो तो उससे और लालभवानी से कोई विरोध नहीं है। कौनसा आध्यात्मिक प्रभाव हमारे देश में है ? पश्चिमी देशों में भारत का नाम आते ही या तो फकीर का ख्याल आता है, या हाथ और भाग्य देखने वालों का। लेकिन हम तो यहां अपने घर के भीतर कोई ऐसा चमत्कार नहीं देखते। हमें तो कोई ऐसा बांध दिखलाई नहीं पड़ता, जो देश के तख्ते को उलटने में बाधा डाले।

युधिष्ठिर—हां, तूफान आने के पहले समुद्र अत्यन्त शान्त रहता है। आंधी आने से पहले पीपल का पत्ता भी नहीं हिलता। वैसे ही हम भ्रम में रहेंगे यदि आज की नीरवता और निर्जीवता को देखकर इसे चिरशान्ति समझ लेंगे। लेकिन जिन लोगों को इस स्थिति से सबसे ज्यादा हानि होगी, वही मतवाले मालूम होते हैं और अपने आप बाढ़ रोकने वाले बाँध पर दोनों हाथों फावड़ा चला रहे हैं।

भगवानदास—यह तो कहना ठीक नहीं मालूम होता। जिनको सबसे ज्यादा भय है, उन्हें तो रात-दिन नींद नहीं आ रही है, उन्हें चारों ओर भूत-ही-भूत दिखलाई पड़ रहे हैं।

महीप—भूत-ही-भूत देखने से शायद उनकी अकल मारी गई है, इसलिए जिधर से भय है उसी ओर भाग रहे हैं। खतरा बहुसंख्यक जनता के असन्तोष से है। बहुसंख्यक जनता का असन्तोष चरम सीमा तक पहुँचेगा, जबकि उसके पेट भरने का कोई ठिकाना नहीं रहेगा। हम बतला ही चुके हैं, कि भूख सबसे भयंकर समस्या है। और उसी भूख-निवारक वस्तु के सम्बन्ध में क्या-क्या हो रहा है ? चीनी में बालू मिलाया जा रहा है।

खोजीराम—बालू ही मिलाया जाता तब भी गनीमत थी, सुनते हैं उसमें फॉस्फेट मिलाया जा रहा है, क्योंकि फॉस्फेट का रंग चीनी से मिलता-जुलता है। यह तो आदमी को सीधे मारना है, फॉस्फेट

अंतड़ियों को खराब करेगा, स्वास्थ्य को चौपट करेगा।

महीप—उन्हें लाख-दोलाख मिलना चाहिए, किसीका स्वास्थ्य चौपट हो, उससे क्या मतलब? धर्मात्मा सेठ, जिन्होंने सात पीढ़ी से माँस-मछली को छुआ नहीं, सुन्दर वन से अजगर की चर्बी मंगाकर घी में डालते थे। कौन जानता है, उनके इस घी को कितने ब्राह्मण-भोज मे लिया गया, कितनी बार ठाकुरजी को भोग लगाया गया।

मुखपात्री—आजकल तो शुद्ध घी मिलना मुश्किल है। घी के नाम पर वनस्पति बिक रहा है।

महीप—वनस्पति कम-से-कम तेल तो है? मूंगफली, गरी, बिनौला इन्हींके तेल का तो वनस्पति तेल बनता है। उसके पीछे न जाने लोग क्यों पड़े हुए हैं।

मुखपात्री—जब तक वह रहेगा, तब तक शुद्ध घी मिल नहीं सकता।

महीप—शुद्ध घी सबको किसी तरह से नहीं मिल सकता, क्योंकि जितने खाने वाले हैं, उनके अनुसार गायें नहीं। देखते हैं न, नगरों में शुद्ध दूध मिलना मुश्किल है। दस आने की जगह सवा रुपया देने पर भी शायद ही शुद्ध दूध मिले।

युधिष्ठिर—मुझे पानी से कोई चिढ़ नहीं, कुछ दूध भी तो होगा। यदि आधा भाग पानी है, तो सेर की जगह दो सेर ले लीजिये, आग पर चढ़ाकर औट लीजिये; लेकिन डर है, पानी न जाने कहां का डाला गया है। क्या पता है, वह कीटाणुओं से भरा जल हो।

खोजीराम—जिस पानी का सुभीता रहेगा, वही मिलायेंगे।

महीप—देखिये, चीनी में फॉस्फेट मिलाया जाता, दूध में अशुद्ध कीटाणु-भरा पानी और आटे में सेलखरी डाली जाती है, चावल में पत्थरों की छोटी-छोटी कंकड़ियाँ पड़ती हैं। मुझे तो अगर कोई शुद्ध चीज मालूम होती है, तो वह है अण्डा। अण्डा गन्दा है, तो उसे फोड़कर आप पहचान के फेंक सकते हैं। जो गन्दा नहीं वह शुद्ध है।

मुखपात्री—केवल अग्नि-मुंह से ही यज्ञ नहीं हुआ करता। आज-कल जब से अन्न का अकाल पड़ने लगा, यज्ञ से सरकार ही नहीं लोगों का भी कान खड़ा होने लगा है।

भगवानदास—हमारे एक सम्बन्धी सेठ काशी में सवा सौ मन घी का यज्ञ कराना चाहते थे। वह निर्वंश होते-होते बचे हैं, इसीके उप-लक्ष्य में सेठानी की उसके लिए बड़ी लालसा थी। मुझसे सलाह ली। मैंने कहा—भिड़ के छत्ते में अंगुली न डालें। अंग्रेजों के राज्य में पुलिस पल्टन हुक्मी थी। करपात्रीजी की भूल थी, जो दिल्ली में यज्ञ करने लगे, और विरोधी चारों ओर काला झंडा उठाके कहने लगे—एक तरफ हम लोग खाद्य बिना मर रहे हैं, बंगाल में साठ लाख मर गए, और यह साधु घी और अन्न को आग में फिंकवा रहा है। मैं उस दिन डाक्टर साहब से घी की कलोरी भी सुन गया था। मैं अच्छी तरह समझता था, कि घी जलाने से उसकी सुगंधि देवताओं के पास पीछे पहुंचेगी, पहले धर्म-विरोधियों को महक मिलेगी। वह हल्ला करने लगेंगे—यह सेठ आदमियों के मुख के आहार को आग में झोंक रहा है। मैंने उन्हें ब्रह्मभोज कराने की सलाह दी।

महीप—आपकी सलाह बुरी नहीं थी भगवान भाई, क्योंकि देवता अग्नि-मुखी ही नहीं होते, वह ब्राह्मण-मुखी भी हैं। ब्राह्मण के मुख में हव्य-कव्य डालने से वह देवता-पितर के पास पहुंच जाता है।

खोजीराम—तो सेठ ने ब्राह्मण के मुंह में घी या वनस्पति डाला या अजगर की चर्बी?

भगवानदास—चर्बी और वनस्पति यह तो बेचने वाले जानें, लेकिन सेठ ने बड़ा भारी यज्ञ किया; भारी संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराया, दक्षिणा दी। भोज कराना कानून-विरुद्ध कहा जाता था, परन्तु कानून के रक्षक भी तो उस भोज में निमन्त्रित थे, फिर "सैयां भये कोतवाल अब डर काहे का?" आपको महीप भाई, भोज से तो चिढ़ नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उसमें अन्न खराब नहीं किया जाता।

महीप—खराब किया जाता है या नहीं यह तो डाक्टर साहब बतलायेंगे। डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया मेहनती पुरुष के लिए तीस सौ कलोरी मानते हैं। उस भोज में एक-एक भोजन-भट्ट ने पांच-पांच हजार कलोरी पेट में डाली।

भगवानदास—कलोरी का हिसाब डाक्टर साहब के पास ही रहे, तो अच्छा है। हमको तो देखना है, अन्नपान ठिकाने लगा या नहीं।

महीप—ठिकाने तब लगता जब भूखे मजूरों को खिलाया जाता। यह तो "वृथा वृष्टिः समुद्रेषु" थी।

भगवानदास—सारे ब्राह्मण तो अघाये नहीं होते, उनमें भी कोई-कोई गरीब होते हैं।

युधिष्ठिर—अच्छा तो हमारे सामने आज साधारण समस्याएं नहीं हैं, भयंकर बाढ़ है। एक समस्या होती तो आदमी बारी-बारी से उसका हल निकालते, यहां तो चारों तरफ से वह बढ़ती चली आ रही है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं, कि यह बाढ़ सारे देश को रसातल पहुंचा देगी। इसका अर्थ यही है, कि जो लोग समस्या हल करने में बाधा पहुँचा रहे हैं, उन्हींको वह पहले साफ करेगी। जौ के साथ घुन भी पिसेगा। जानते हैं न, बीस साल पहले चीन की अवस्था इतनी भयंकर नहीं थी। उस वक्त समस्याएं कुछ आसानी से हल की जा सकती थीं। किन्तु विरोधी शक्तियां प्रबल होती गईं, उन्होंने हल नहीं होने दिया; आखिर आज उनका वहां से सफाया हो रहा है। प्रश्न होता है, यदि यही दिन देखना था, तो पिछले बीस सालों में बीस लाख आदमियों को क्यों लड़ाई में मरवाया गया? उससे भी अधिक संख्या को क्यों भूख से मरने के लिए मजबूर किया गया?

भगवानदास—चीन को देखकर तो हमारी आंखें खुलनी चाहिएं।

अठारहवां अध्याय

समाजवाद की आवश्यकता

मुखपात्री—मैं तो सदा संस्कृत का विद्यार्थी रहा, जबर्दस्ती कोई बात कान में चली आई, तो बाहर की भी सुन ली। तरुणाई में मैंने समाजवाद का नाम कभी नहीं सुना था, किंतु अब वह बहुत सुनने में आता है, और जब अपने प्रधान मंत्री को भी समाजवाद की प्रशंसा करते सुनता हूँ, तो समझता हूँ, कि यह कोई अच्छी चीज होगी। इधर सुन रहा हूँ, समाजवाद ही एकमात्र हमारी सारी व्याधियों की औषधि है। हम ब्रह्मवाद, मायावाद, अद्वैतवाद, द्वैतवाद आदि बहुत से वादों को सुनते और पढ़ते रहे, उनकी महिमा बहुत है। उनके द्वारा ऐहिक, पारलौकिक बहुत-सी कामनाएं सिद्ध होती हैं, किंतु जिन समस्याओं को मैंने पिछले कितने ही दिनों से सुना है, उन सबकी औषधि न ब्रह्मवाद है, न कोई दूसरा चिरन्तनवाद। यह समाजवाद क्या है, यह समझ में नहीं आता।

युधिष्ठिर—समाजवाद को महीपजी समझायंगे।

महीप—समाजवाद का मोटा अर्थ है, वह सिद्धान्त, जिसमें व्यक्ति की प्रधानता नहीं समाज की प्रधानता मानी जाती है।

मुखपात्री—लेकिन समाज तो कोई पृथक् चीज नहीं है, जो कि दुख-सुख का अनुभव व्यक्ति से अलग होकर करे। व्यक्ति से बाहर समाज नहीं है और दुख-सुख व्यक्ति को होता है।

महीप—तो बुद्ध के शब्दों में समझ लीजिए, जिसमें व्यक्ति नहीं

बल्कि बहुजन का ख्याल सबसे पहले आता है। बहुजन का ही अर्थ समाज समझ लें। "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" को जो मानता है, वही समाजवादी है। लेकिन उसको और स्पष्ट करने के लिए कहना पड़ेगा—जिस सिद्धांत में उत्पादन के साधन—वस्तुओं के निर्माण की उपकरण-सामग्री—का स्वामित्व व्यक्ति के नहीं समाज के हाथ में होना माना जाता है, उसे समाजवाद कहते हैं। इसके विरुद्ध जिस सिद्धांत में समाज के स्वार्थ को ठुकराकर व्यक्ति के स्वार्थ को निराबाध फैलने का अवसर मिलता है, वह पूंजीवाद है—किसी तरह भी चोरी, डकैती सट्टेबाजी, रिश्वत, उत्पीड़न, परशोषण से पूंजी जमा करके पूंजी की प्रधानता से कल-कारखाने, खेतीबारी यहां तक कि सरकार पर भी प्रभुत्व स्थापित किया जा सकता है, उसी राजनीतिक-आर्थिक सिद्धांत को पूंजीवाद कहते हैं। ये दोनों उसी तरह एक साथ नहीं रह सकते, जैसे एक म्यान में दो तलवार। पूंजीवाद में पूंजी या पैसे की प्रधानता है। एक करोड़पति सैकड़ों शिक्षितों-अशिक्षितों को आज्ञाकारी दास बनाके रख सकता है। वहां सबके समान और स्वतन्त्र होने का सवाल नहीं हो सकता—"द्रव्येण सर्ववशाः।"

मुखपात्री—तो महीपजी, आप हमारी भाषा में भी समझाने की क्षमता रखते हैं। आप समाजवादी समाज को मानवमात्र की समता में विश्वास रखने वाला मानते हैं। गीता में भी तो "समत्वं योग उच्यते" तथा समदर्शिता का उपदेश दिया गया है।

महीप—लेकिन उस निराकार समता से साकार मानव-समाज में समता स्थापित नहीं हो सकती, उससे तो और अधिक स्पष्ट समानता का उपदेश वेद में मिलता है—"समानी प्रपा सहवो अन्नभागाः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि" जिसमें प्रपा (प्याव) और खाद्य में ही समानता की बात नहीं कही गई है, बल्कि जुए में नाधने की बात कहके श्रम में भी समानता की बात बतलायी गई है।

मुखपात्री—अर्थात यहां भोग-साम्य और श्रम-साम्य की जो बात

कही गई है, उसीको समाजवाद कहते हैं।

महीप—लेकिन उस समय अन्न-पान और काम में समानता की बात केवल एक वंश के सगे-सम्बन्धियों के बारे में कही गई, उसमें दासी-दास तथा भृत्य-किंकर सम्मिलित नहीं थे। एक वंश में समानता की बात कुछ अवश्य थी। समाजवाद मनुष्य को केवल सिद्धान्तरूपेण समान नहीं मानता, बल्कि उस समानता को संभव बनाने के लिए व्यक्ति के हाथ से आर्थिक-साधनों को लेकर बहुजन के हित में उन्हें विनियुक्त करता है।

मुखपात्री- तो आपके समाजवाद में आर्थिक-विषमता के लिए स्थान नहीं है?

महीप—हां, बहुत कुछ ऐसा ही है, वैसे हमें पहली अवस्था में काम के अनुसार पारिश्रमिक देने के कारण थोड़ी-सी विषमता रखनी पड़ेगी, जब तक कि उपभोग की सामग्री इतनी मात्रा में न पैदा होने लगे, कि हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार वह दी जा सके।

मुखपात्री—तब तो यह धरती पर स्वर्ग लाना है।

महीप—धरती पर स्वर्ग स्वयं नहीं आयगा, क्योंकि जिनके हाथों में शक्ति अर्थात् सम्पत्ति केन्द्रित हो गई है, उनका हित इसीमें है, कि धरती को नर्क बनाये रखा जाय, तभी दूसरे किसी अदृश्य स्थान में अवस्थित स्वर्ग का प्रलोभन दिया जा सकेगा। व्यक्ति से ऊपर समाज के हित को रखने पर स्वदेशी पूंजीपतियों के द्वारा जो कठिनाई होती है, वह नहीं होगी, फिर चाहे उद्योग-धन्धा हो या आधुनिक खेती, कहीं भी व्यक्ति के स्वार्थ को समाज के ऊपर न होने के कारण, जो काम में सुस्ती आदि देखने में आती है, वह नहीं होगी। आदमी अपने निजी स्वार्थ में भलाई न समझ कर सारे समाज की भलाई में अपना भला चाहेगा। समाजवादी देश में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं कर सकता, शोषण करने का अधिकार न होने से काम-चोर नहीं हो सकता। व्यापार के भी व्यक्ति के हाथों से निकल

कर समाज के हाथ में चले जाने के कारण वहां भ्रष्टाचार, घूस-रिश्वत का बाजार गर्म नहीं होने पायगा। शोषण के उच्छिन्न हो जाने के कारण मानव-मानव समान होंगे, वह एक दूसरे को ठगना नहीं चाहेंगे। मनुष्य एक-दूसरे के साथ धोखा-धड़ी से काम नहीं लेगा। काम करने में भी वह व्यक्ति से ऊपर समाज के स्वार्थ को रखेगा। शोषण के हट जाने पर मानव के भीतर की विषमता दूर हो जायगी, और आज की तरह के लड़ाई-झगड़ों की बहुत कमी हो जायगी।

भगवानदास—क्या तब व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर का झगड़ा स्वप्न-सा हो जायगा?

महीप—यदि स्वप्न नहीं होगा, तो बहुत कम जरूर हो जायगा। व्यक्ति का ही झगड़ा नहीं बल्कि देश-देश का झगड़ा, अर्थात् युद्धवाद बहुत कम हो जायगा। आज शोषण अर्थात् पूंजीवाद ही वह कारण है, जिससे कि जातियों-जातियों के बीच झगड़ा होता है, एक जाति दूसरी जाति को परतन्त्र बनाना चाहती है, या उसका शोषण करना चाहती है, अथवा दूसरी शोषक जाति के शोषण-क्षेत्र में दखल देना चाहती है, जिसका परिणाम युद्ध होता है। युद्ध कितना भयंकर है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। द्वितीय विश्वयुद्ध हम देख चुके हैं, इस युद्ध की बलि केवल रूस में ७० लाख हुए। १९४२ में बंगाल में जो भूख से साठ लाख आदमी मरे, उन्हें भी युद्ध के लिए बलिदान समझना चाहिए। समाजवाद देश या विदेश कहीं भी मानव द्वारा मानव के शोषण का समर्थन नहीं करता। इसलिए उसके द्वारा मानव-मानव के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, समाज और समाज तथा देश और देश के बीच में सद्भाव स्थापित हो सकता है।

भगवानदास—क्या समाजवादियों में झगड़ा नहीं हो सकता?

महीप—झगड़े का वहां कोई भौतिक कारण नहीं रह जाता।

भगवानदास—युगोस्लाविया भी तो समाजवादी देश है, किन्तु उसकी रूस से खटपट चल रही है।

महीप—मतभेद हो सकता है, लेकिन समाजवादी देश सशस्त्र संघर्ष नहीं कर सकते, जब तक कि उनमें से एक ने समाजवादी सिद्धांत को छोड़ नहीं दिया है।

भगवानदास—लेकिन कहते हैं, समाजवादी अपने देश को प्रेम नहीं करते। अपने देश की कला और साहित्य का आदर नहीं करते। वह बहुत दुर्राष्ट्रीय और दुःसंस्कृत होते हैं।

महीप—यह आप समाजवाद के विरोधियों से सुनी बातें दुहरा रहे हैं। समाजवाद राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं है। हाँ, वह मानव के बन्धुत्व पर विश्वास करता है, इसलिए राष्ट्रीयता और मानव-बन्धुता दोनों का समन्वय करना चाहता है। अपने इतिहास और संस्कृति का गौरव रखते हुए भी दूसरे देश की संस्कृति को घृणा का पात्र नहीं समझता। क्या आप समझते हैं, रूस के भीतर रहने वाली साठ से अधिक जातियों ने अपने साहित्य, संस्कृति और राष्ट्रीयता को तिलांजलि दे दी? क्या आप समझते हैं, चीन के कम्युनिस्टों को अपने देश का कम अभिमान है? कोई भी वाद किसी देश में बहुजन-स्वीकृत नहीं हो सकता, यदि वह अपने देश में अपनी जड़ों को बहुत गहराई में नहीं ले जाता।

मुखपात्री—तो क्या आप समझते हैं, कि समाजवाद के कारण विश्व में युद्ध का भय जाता रहेगा?

महीप—नकली समाजवाद भी हो सकते हैं, जिनसे हम वैसी आशा नहीं रख सकते।

भगवानदास—किसको आप नकली समाजवाद समझते हैं?

महीप—इंगलैंड की मजदूर पार्टी का समाजवाद नकली समाजवाद है, मजबूर होकर भारत से भागते वक्त भी अंग्रेज पाकिस्तान-हिन्दुस्तान का झगड़ा खड़ा करके गये और राजाओं को भी उकसा गए। इधर मलाया में अंग्रेज समाजवादी किस तरह तोपों और जंगी विमानों के भरोसे अपना राज्य कायम रखना चाहते हैं, यह जग-विदित

है। उनका समाजवाद साम्राज्यवाद से कोई विरोध नहीं रखता। उनके समाजवाद में एक जाति द्वारा दूसरी जाति का शोषण भी होता रह सकता है। आजकल देख ही रहे हैं, अमेरिका से अधिक अंग्रेज 'समाजवादी' साम्यवादी रूस के दुश्मन हैं। चीन में कम्युनिस्टों को अधिक आगे बढ़ते देखकर अपना सैनिकपोत यांग्सी नदी के भीतर भेजने वाले यही अंग्रेज 'समाजवादी' थे। अमेरिका का रूस के साथ बराबर बिगाड़ कायम रखने के लिए इनकी सदा कोशिश रहती है।

खोजीराम--आखिर दोनों के झगड़े से ही तो इंगलैंड अमेरिका से डालर और मक्खन-रोटी वसूल कर सकता है।

महीप—हाँ, इंगलैंड रूस के विरुद्ध अमेरिका का स्थायी विमान-वाहक पोत है, इसलिए उसकी देखभाल करना अमेरिका का कर्तव्य है, यही कहकर अमेरिका को दूहा जा रहा है। लेकिन कितने दिनों तक यह धोखा चलेगा? यह समाजवाद नहीं है। जिसमें शोषण हो वह समाजवाद कैसा? नेहरू भी अपने राज्य को समाजवादी कह सकते हैं। आजकल कई योजनाओं के लिए समाजवाद का दावा किया जाता है। एक भूतपूर्व समाजवादी सज्जन दामोदर-उपत्यका-योजना को समाजवादी योजना कहने की धृष्टता करते हैं। ऐसा कृत्रिम समाज-वाद दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं कर सकता, बल्कि वह युद्ध का प्रेरक बन सकता है।

भगवानदास—हाँ, यदि एक जाति दूसरी जाति का शोषण-उत्पी-ड़न छोड़ दे, तो युद्ध का बहुत भारी कारण दूर हो जाता है। लेकिन हमारी दूसरी समस्याओं को हल करने में समाजवाद कैसे सहायक हो सकता है?

महीप—एक-एक समस्या को उठाकर देखिए तो मालूम होगा, मानव की सारी समस्याओं को हल करने के लिए ही समाजवाद पैदा हुआ। आहार की समस्या को ले लीजिए। व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधा-नता न दे सामाजिक हित को प्रथम रखने से सारे गांव के धनी-गरीब,

खेतिहर-बेखेतिहर किसान जनता को प्रेरित किया जा सकता है। एक व्यक्ति दूसरे के लिए, एक गांव दूसरे गांव के लिए, एक इलाका दूसरे इलाकों के लिए कृषि का विकास करने में उदाहरण बन सकते हैं। साल के अधिकांश महीनों में बेकार हाथों को काम में लगाया जा सकता है। समाजवाद पैसे को प्रधानता नहीं देता, बल्कि श्रम को प्रधानता देता है। उसके लिए जितने अधिक व्यक्ति, जितने अधिक घंटों को काम में लगा सकें, वह सब पूंजी है। समाजवाद सारी ग्रामीण जनता को उठाके दौड़ने के लिए तैयार कर सकता है, किसी बड़े पूंजीपति के न रहने से छोटे पूंजीपतियों को भ्रष्टाचार के लिए कड़े-से-कड़ा दण्ड देने के कारण आज के चोरबाजारी करोड़पतियों की तरह मूछ पर ताव देकर खुले घूमने वाले नहीं पैदा हो सकते। यह कल्पना की बात नहीं है। चीन में हम इसे देख रहे हैं। चाङ् की तानाशाही समाप्त होते ही वहां के नगरों, गांवों से भ्रष्टाचार कितनी तेजी से दूर हो गया?

भगवानदास—खेती को कुछ विकसित कर भी लिया जाय, लेकिन उद्योगीकरण में तो भारी बाधा होगी, क्योंकि अमेरिका भड़क जायगा और हमें कल-मशीन के लिए डालर की कोई मदद नहीं देगा।

महाप—निश्चय रखिये, अमेरिका आपकी मदद करने वाला नहीं है, दिलासा के लिए चाहे मुट्ठी-भर डालर भले ही सामने फेंक दे। देख रहे हैं, कम्युनिस्ट चीन के साथ व्यापार करने के लिए वह अधीर हो रहा है। समाजवादी भारत के ३३-३४ करोड़ आदमियों को अपना ग्राहक बनाने से कौन बनिया बाज आ सकता है? अमेरिका में फिर मन्दी के लक्षण दिखाई देने लगे हैं और बेकारी चालीस लाख से ऊपर ही बढ़ती जा रही है। इस बेकारी को दूर करने के लिए साम्यवादी चीन का बाजार सहायक हो सकता है, अतएव यह साफ है कि चीन में व्यापार करना अमेरिका भी चाहेगा। नहीं भी चाहे तो समाजवादी समाज जिस तरह लोगों को शारीरिक, बौद्धिक श्रम को लगाने

के लिए मुक्त कर देता है, उससे हम उद्योगीकरण कर सकेंगे। मनुष्य के हाथों को समाजवाद मुख्य पूंजी मानता है, इसलिए यदि रूस ने अपने बल पर बारह वर्ष में देश की काया पलट दी, उसे कृषिप्रधान से उद्योग-प्रधान बना दिया, तो हमारे देश को भी उससे अधिक समय की जरूरत नहीं होगी। सचमुच हमारी राष्ट्रीय-शक्ति जो कुण्ठित है, हमारी राष्ट्रीय-प्रतिभा जो बेकार पड़ी है, हमारी प्राकृतिक संपत्ति का जिसे पूछने वाला कोई नहीं है, सभी को काम करने के लिए मुक्त कर देगा।

मुखपात्री—जान तो पड़ता है, समाजवाद धरती को स्वर्ग बना देगा।

महीप—अगर कहीं स्वर्ग बन सकता है तो धरती ही पर। आसमान का स्वर्ग तो कल्पनामात्र है।

खोजीराम—लेकिन समाजवादियों में जो आपस में मतभेद है, एक दूसरे के साथ इतनी तू तू मैं-मैं है, इसका फल तो अच्छा नहीं होगा?

युधिष्ठिर—हां, समाजवाद की स्थापना और सफलता के लिए आवश्यक है कि सभी समाजवाद के मानने वाले दल अपने मतभेदों को कम-से-कम कर डालें और कुछ ऐसे प्रोग्राम एकमत से नियत करें, जिस पर सभी एक होकर चलें। मैं यह भी बतलाना चाहता हूं, कि जो इस एकता में बाधक होंगे वह भावी महासंघर्ष में अपने आप दूध की मक्खी की तरह धीरे-धीरे अलग होते जायंगे। अपनी योग्यता और साधना के रहते भी विलगाव और फूट की नीति बहुत महंगी साबित होगी। दुनिया में ऐसे प्रमाण कम नहीं हैं, जबकि एक समय के प्रभावशाली दल ने समय पर चूक जाने के कारण अपने को निकम्मा बना लिया और अन्त में अस्तित्व तक को खो दिया। समाजवाद के मानने वाले कई दल रहें, उनसे इतनी क्षति नहीं होगी, बल्कि सदाशयता के साथ वह एक दूसरे की कमजोरियों को बतला के

दूर करा सकते हैं। पूर्ण जनतान्त्रिकता को कायम रखने में भी वे सहायक सिद्ध होंगे और केवल एक दल के रहने से कारण जो भूलें होती हैं, उनका भी कम मौका रहेगा।

भगवानदास—समाजवाद के लिए कौन-कौन दलों को आप ईमानदार समझते हैं?

युधिष्ठिर—जो शोषण के विरोधी, मानव की समानता के पक्षपाती तथा समाजवाद के पक्ष मे लोहा लेने के लिए तैयार हैं, वह सभी व्यक्ति और दल समाजवाद की सेना की टुकड़ियां, रेजिमेंट और सिपाही हैं। समाजवाद में इन सबको एक हो जाने की आवश्यकता है।

उन्नीसवां अध्याय

शोषितों का समाजवाद

खोजीराम—दुनिया के सभी देशों के शोषितों में जागृति देखी जाती है। अधिकार-वंचित अपने अधिकार पाने के लिए प्रार्थना नहीं कर रहे, बल्कि उन्हें हाथ में ले रहे हैं। और देशों में शोषितों की धर्म द्वारा निर्धारित कोई जात-पांत नहीं होती; लेकिन भारतवर्ष ने शोषण-फन्दा बहुत मजबूत बनाया था और शोषितों को हजारों जातियों में बांटकर उन्हे पुश्तैनी शोषित बनाये रखा। सौ ही वर्ष बीते, जब कि भारत में दासता का अखण्ड राज्य चला आया था, शोषितों की बहुत बड़ी संख्या दास थी। जो दास नहीं थे, वे अर्द्धदास थे। दासता-अर्द्धदासता की सीमा निश्चित नहीं थी। भारतवर्ष की सब से बड़ी विशेषता यदि कोई अपनी है, तो वह यहाँ की जात-पाँत है, जिसका आधार आर्थिक शोषण पर है; किन्तु उसे छिपाने के लिए कई नाम दिये गए हैं। है कोई ऐसा देश, जहां चमार का लड़का चार हजार वर्ष तक चमार रहा, भंगी का लड़का चार हजार वर्ष तक भंगी रहा? समाज के अत्यन्त आवश्यक एवं गंदे काम को करने के बदले उसे प्रशंसा नहीं, घृणा का पात्र बनना पड़ा? हमारे देश में शोषण के वे सारे साधन बरते गए, जो दूसरे देशों में बरते जाते हैं और साथ ही जाति-भेद को फैलाकर देश की तीन-चौथाई जनता को अर्थागम के तरीकों से वंचित कर दिया गया। आज ज़मींदारी हो या साहू-कारी, राज-सेवा हो या सरकार, सभी जगह ब्राह्मण-क्षत्री-लाला का

राज्य है।

युधिष्ठिर—कुछ सदियों से नहीं, बल्कि इतिहास के आरम्भ से यही बात चली आई है। इस्लाम आया, हमारे कितने ही तन्तुवाय बड़ी आशा से लाखों की संख्या में मुसलमान हो गए, किन्तु तो भी उनकी अर्द्धदासता छूटी नहीं। इन मोमिन मुसलमानों की वही दशा रही, जो हिन्दुओं में कुर्मी-काछियों की। बड़े-बड़े पीर-सुल्तान, मौलवी-नवाब, सरकारी अफसर, सभी अशरफ—शेख-सैयद-मुगल-पठान—के बनते रहे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-लाला और शेख-सैयद-मुगल-पठान के राज्य में अंग्रेजों ने कभी दखल नहीं दिया। उनको अपने टोस्ट-मक्खन से काम था। उन्हें क्या आवश्यकता थी भिड़ के छत्ते में उँगली डालने से? सरकारी नौकरियों में जहाँ देखो, इन्हीं का बोल-बाला था। इनके पास पहले तो धन जमा था, शिक्षा से लाभ यही उठा सकते थे, अतएव बड़ी-बड़ी नौकरियाँ और आमदनी के रास्ते इन्हीं के लिए खुले थे। हिन्दुओं का राज्य रहा, मुसलमानों का राज्य आया, अंगरेज भी राज्य करके गए; लेकिन इस सारे समय में ब्राह्मण-क्षत्रिय-लाला का राज्य अक्षुण्ण रहा—लाला पश्चिमी युक्त-प्रांत में बनियों को कहते हैं और पूर्वी युक्त-प्रांत तथा बिहार में कायथ लोगों को। अंगरेजी सरकार ने तो यहाँ तक किया, कि गाँव की पटवारगीरी को लालों के लिए रिज़र्व कर दिया। पिछले सौ सालों में पटवारियों ने गाँव की जितनी सेवा की है, वह किसी से छिपी नहीं है।

खोजीराम—अभी मार्च, १९४९ के आरंभ में युक्त-प्रान्त में ग्राम-पंचायतों के चुनाव का जो परिणाम निकला, उसे देखकर इन्द्र का सिंहासन हिलने लगा है। धर्म के नाम पर भगवान् के नाम से लिखे गए जाली कागज़ (पुरुषसूक्त) के सहारे चार हज़ार वर्ष से तीन-चौथाई जनता को दास बनाकर उनकी मेहनत पर जो मौज उड़ाते आए थे, वे घबरा उठे। उनमें सबसे अधिक समझदार कहे जाने वाले ही सबसे अधिक अपना विवेक खो बैठे हैं। कंस की भाँति उन्हें हर जगह कृष्ण-

ही-कृष्ण दिखलाई देते हैं। बड़ी गंभीरता से कहा जा रहा है कि वयस्क-मताधिकार—२१ वर्ष से अधिक के सभी स्त्री-पुरुषों को वोट का अधिकार—देना बहुत ही खतरनाक है। कोई कहता है, वयस्क-मताधिकार तब तक देना अच्छा नहीं है, जब तक देश की निरक्षरता दूर न हो जाय। गोया निरक्षरता दूर होने पर ग्राम-पंचायतों का परिणाम कोई दूसरा होता। ये बहाने हैं, जिनसे वे शोषितों को कुछ समय तक और अधिकार-वंचित रखना चाहते हैं। जनता के एक-चौथाई का जब अधिकार रहा, तब कोई खतरा नहीं समझा गया और अब तीन-चौथाई राज्य की संभावना होने पर इसे भारी खतरा समझा जाने लगा! यदि खतरा है, तो चोरों और अन्यायियों के लिए हो सकता है। निरक्षरता का बहाना ईमानदारी का बहाना नहीं है। क्या गाँवों और शहरों की सारी गन्दगियों—मुकदमेबाज़ी, जालसाज़ी, झूठ-फरेब—के कारण ऊँची जाति के साक्षर नहीं हैं?

युधिष्ठिर—इस बहानेबाज़ी से काम नहीं चल सकता। जिस तरह जवाहरलाल की सरकार राष्ट्रमंडल ही में सही भारत के प्रजातंत्र होने को नहीं रोक सकी, उसी तरह अब बालिग-मताधिकार को हटाया नहीं जा सकता। उसको हटाना कानूनी दृष्टि से ही कठिन नहीं है, बल्कि भयंकर गृह-युद्ध को निमन्त्रण देना है। वह ब्राह्मण-क्षत्री-लाला-राज्य के लिए शोषित जातियों को उनके उचित अधिकार से वंचित करना होगा, उन्हें फिर अर्द्धदासता में ढकेलना होगा। इसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। लुक-छिपकर जो हुआ, सो हुआ; अब छोटी जातियों की आँखें खुल चुकी हैं। अंधे ही नहीं देखेंगे कि शोषितों में यह जो एकता आई है, वह किसी संगठित दूरदर्शितापूर्ण योजना का परिणाम नहीं है। यह जागृति और एकता अपने-आप आई है। अहीर से भंगी, जुलाहे से चमार तक सभी जातियां क्यों एक-सा सोचने लगी हैं, इसे आप ठंढे दिल से सोचें, तब आपको कारण मालूम होगा। केवल 'खतरा', 'निरक्षरता', 'घोर कलियुग' कहकर आप उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते

और न अपना हित ही कर सकते हैं। ब्राह्मण-क्षत्री-लाला एक आर्थिक वर्ग है, जिसके पास धन, शिक्षा और संस्कृति है। छोटी-बड़ी दुकानों (चाहे धार्मिक हों या व्यापारिक), छोटी-बड़ी अदालतों, छोटे-बड़े ज़िला-बोर्डों, सरकारों तथा राज्यों में वही तिनतग्गे विष्णु की भाँति व्यापक हैं। युक्त-प्रान्त की ग्राम-सभाओं के चुनाव में इतिहास में पहले-पहल सारे शोषितों को तिनतग्गों की भाँति अपना शासन-यंत्र बनाने का अवसर मिला है। जो मूर्त्तियां मेंबरी के लिए खड़ी थीं, जो मूर्त्तियां सभापति और पंच होना चाहती थीं, उनके सारे पाप, अपराध, रोज-रोज की गाली-मार और बेठ-बेगार कुछ भी उनसे छिपे न थे। अभी तक वे सभी बातों को भगवान् की लीला समझकर मानते थे; किन्तु आज उनको अधिकार है कि वे अपने भाग्य का फैसला स्वयं करें।

खोजीराम—गांव के शोषितों को पहले-पहल यह पता भी न लगा, कि यह पंचायत क्या बला है। सरकार ने हुक्म दिया कि २१ वर्ष से अधिक के सभी स्त्री-पुरुषों की नाम-सूची बनाकर भेजो। पटवारियों ने तो बहुत जगह मनमानी सूची बनाई और एक-चौथाई आदमियों को छोड़ भी दिया, जिसमें अधिकांश छोटी जाति के लोग थे। मुझे सारनाथ का पता है, उस समय स्कूल के मास्टर लोग वोटर-सूची में सुधार करने के लिए गाँवों में भेजे गए थे। छोटी जातिवाले लोगों को बतलाया गया था कि मिट्टी के तेल और कंट्रोल के कपड़े के लिए नाम लिखा जा रहा है। उन्होंने मास्टरों से कहा कि हमें नाम-वाम लिखवाने से कोई काम नहीं; मिट्टी का तेल और कंट्रोल का कपड़ा बाबू-भैयों के पेट से बचेगा, तब न हम तक पहुँचेगा। मास्टर बेचारे हताश थे। वे समझते थे कि सूची में कुछ घटा-बढ़ा नहीं सकेंगे। किंतु छोटी जातों में भी दो-चार दर्जे पढ़े जहाँ-तहाँ कुछ आदमी मिलते हैं। एक तो मैट्रिक पास-भर नौजवान सारनाथ के पास घर पर बैठा था। नौकरियों में भी तो सिफारिश की ज़रूरत होती है। ब्राह्मण-क्षत्री-लाला तब न दूसरों की सिफारिश करने जायं, जब सभी अपनों को नौकरियां मिल चुकें। इसलिए पढ़े-लिखे होने

पर भी नान्ह जाति को नौकरियां बहुत कम मिलती हैं। खैर, दो अक्षर पढ़े नान्ह जातिवालों ने भी जोर लगाया और हफ्ता बीतने से पहले नान्ह जातिवालों को कुछ धुँधला-सा दिखलाई पड़ने लगा। जब थाने और कचहरी के दलाल बड़ी जातिवाले अपने लिए घूमने लगे, तो उनकी आंखें खुलीं। फिर गाँव के ज़मींदार और मालिक के तिकड़म को देखकर उनके मन में और शंका हो उठी। उनको मालूम होने लगा कि बेखेत वाले सारे मजूर एक ही नाव में बैठे हैं। पोत देकर भी खेत पर अधिकार न पानेवाले, बीसों वर्ष जोतते रहने पर भी निकाल दिए जानेवाले एक ही आफत के शिकार हैं। वे सोचने लगे कि तिनतग्गे लोगों के यहाँ हल जोतना पाप है। जेठ की दुपहरी में जलते और सावन में भीगते हमीं हल चलाते हैं, तब मालिक के घर में लक्ष्मी आती है। हमीं दीवार खड़ी करते हैं, ईंट और खपरैल पाथते हैं, तो बाबू लोगों की हवेलियां तैयार होती हैं, जिनके ओसारे के नीचे भी खड़े होने की हमें आज्ञा नहीं होती। पानी की छूत और शरीर की छूत की बात तो ऊपर से है ही। यही युगों से चला आता आर्थिक शोषण और सामाजिक अपमान कारण हुआ, जो सभी नान्ह लोगों ने तिनतग्गों से अपने को अलग देखा।

रामी—शोषितों में तो भी भेद-भाव है?

युधिष्ठिर—शोषितों में भी छूत-अछूत दो तरह की जातियां हैं। वैसे होता, तो छूतवाले अपने संख्या-बल पर अछूतों की परवाह न करते—तिनतग्गे सदा छूत-अछूत के नाम पर उनमें फूट डालने की कोशिश करेंगे। लेकिन हमें मालूम है कि वे भी अंगरेजों की तरह फूट डालकर शासन जमाने में सफल नहीं होंगे। इस वक्त छूत-अछूत का प्रश्न न उठने का एक कारण अछूतों का कौंसिलों और असेम्बलियों में निश्चित संख्या में जाना भी है। अम्बेदकर और जगजीवनराम जिस वर्ग के प्रतिनिधि हों, उसे अकिंचन कैसे कहा जा सकता था? सुल्तानपुर, आजमगढ़, बलिया, बनारस, गाजीपुर, इलाहाबाद की जो खबरें मिली हैं,

उनसे पता लगता है कि सभी जगह नान्ह जातियां हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूत का भेद छोड़कर एक साथ रही हैं। बड़ी जातिवाले इसे घृणित जातिवादिता कहते हैं, मानो वे दूध के धुले हों। धर्म और छूत-अछूत का ख्याल हट जाना उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता, बल्कि उलटा यह भयंकर चीज़ है, यह उनके युगों के राज्य के लिए चैलेंज है, मौत का वारंट है। आज शहर के पढ़े-लिखे बड़ी जातिवाले इस नई शक्ति को कोसते हुए अखबारों का कालम रंग रहे हैं। उनसे पहले गांवों के उनके भाई-बंदों ने भी कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी; लेकिन शोषित जनता को उन्होंने संयुक्त और मज़बूत देखा। एक गांव के तिनतग्गे यह सोचकर बहुत निश्चिन्त थे, कि तीन-चौथाई भूमि घेरनेवाली उनकी हवेलियों में चुनाव के लिए उठनेवाले हाथ भी अधिक हैं; लेकिन वोटर-सूची में यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ, कि उन सिमटी गंदी झोंपड़ियों में ही हाथ अधिक हैं। मुझे विश्वास नहीं है, किन्तु एक दूसरे गांव के ब्राह्मण देवता कह रहे थे—'हमारे गांव में संख्या बराबर थी।' मैंने पूछा—'फिर आप घबराए शहर से दौड़े-दौड़े गांव में क्यों पहुंचे ?' उन्होंने कहा—'हमारे बहुत-से लोग नौकरी या रोज़गार के लिए इधर-उधर चले गए थे और नान्ह जातिवाले सभी गांव में थे। इसके अतिरिक्त हमारे यहां अधिकांश औरतें पर्दानशीन हैं। नई-नवेली बहुएं कैसे वोट के लिए हाथ उठाने जातीं ? शामियाने का प्रबन्ध था, तो भी इसमें सन्देह था, कि बड़ी जाति की सभी स्त्रियां उसमें जाकर वोट देतीं।' मैंने कहा—'पर्दानशीनों को तो वोट का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। घूंघट और राज-काज से जमीन-आसमान का अन्तर है।' खैर, वोटर-सूची और नान्ह जाति के लोगों की एकता ने बड़ी जातिवालों की आंखें ही नहीं खोलीं, उन्हें किंकर्तव्य-विमूढ़ बना दिया। जहां २५ और ७५ का अंतर हो, वहां किस बल पर चुनाव में सफलता की आशा रखी जाय ? एकता के लिए कुछ मत पूछिए। एक ब्राह्मण देवता कह रहे थे—'देखिए न, मेरा ही हलवाहा

और मेरी ही बात नहीं सुनता !'

खोजीराम—पंचायतों को अधिकार नाम-मात्र का है। बड़ी जाति वाले फूंक-फूंककर कदम रखना जानते हैं।

युधिष्ठिर—लेकिन ग्राम-सभा के निर्वाचन ने युक्त-प्रांत के देहात के युग-युग के उत्पीड़ित लोगों में एक नया आत्म-विश्वास पैदा कर दिया। उनमें एक नई चेतना आई, जिसके बल पर अपने भविष्य को वे अपने हाथों में ले सकते हैं। प्रान्तीय और अखिल-भारतीय पार्लमेंटों के चुनाव में इस आत्म-विश्वास, इस नवचेतना और इस एकता का बहुत व्यापक प्रभाव होगा, इसमें संदेह नहीं। जब इनके अपने प्रतिनिधि केन्द्र और प्रांतों के हर्त्ता-कर्त्ता होंगे, तब गांव की सभाओं और पंचायतों को अधिकार देने में कंजूसी नहीं होगी। तब पटवारियों के झूठे-सच्चे कागज़ों और सरकारी खेवटों के बल पर गांव की आधी से अधिक जनता को यह नहीं कहा जायगा, कि तुम्हारा इस गांव की मिट्टी में कोई अधिकार नहीं, न दूसरे चौथाई भाग को यह कहा जा सकेगा, कि तुम खेत के मालिक नहीं, असामी हो, तुम्हें बेगार देनी पड़ेगी और न सामने चारपाई पर बैठने, छाता-जूता लगाकर चलने के लिए देहात की तीन-चौथाई जनता की हड्डी ही तोड़ी जायगी। जनेऊ के लिए कितने ही नान्ह जातिवालों को पीठ दगानी पड़ी, सिर फुड़वाना पड़ा; लेकिन अब आशा है, वे तिनतग्गों के इस तागे को तोड़ फेंकेंगे।

वोटर-सूची पक्की हो गई। चुनाव सिर पर आ रहा था। बड़ी जातिवालों की चिन्ता बढ़ रही थी। सभी सोचने लगे, कैसे ग्राम-सभा अपने हाथ में रहे, सभापति अपना हो, अदालती पंच अपने हों? वोट पर इस बात को छोड़ा नहीं जा सकता था, क्योंकि अधिक हाथ नान्ह जातियों के थे। फिर खानगी पंचायतें बैठने लगीं। सौदा होने लगा। शाम-दाम-दण्ड-विभेद सभी हथियारों का प्रयोग किया जाने लगा—'तुमने हमें वोट नहीं दिया, तो चैत में तुमसे खेत नहीं कटवायंगे, घर-भर भूखे मर जाओगे। यदि हमें वोट नहीं दिया, तो अधिया बँटाई

का खेत निकाल लेंगे, अपनी जमीन में खलिहान नहीं लगाने देंगे।' एक घोड़ा लादकर जीनेवाले गाँव के काँदू को तो धमकी दी गई थी कि तुम्हें अपनी जमीन से घोड़ा नहीं ले जाने देंगे। कुल धमकी देने पर भी वही घोड़ा लादनेवाला गांव का सभापति बन गया। अब देखें, बाबू लोग क्या करते हैं? उपसभापति का पद एक बाबू को दिया जा रहा था, लेकिन उन्हें यह बड़े अपमान की बात जँची कि घोड़ा लादने वाला सभापति बने और वे उसके नीचे उपसभापति! अधिकांश जगहों में वोटा-वोटी की नौबत नहीं आई और नान्ह जातिवाले अपना बहुमत रखने के लिए डटे रहे। जहां भलेमानस दिखे, वहां नान्ह जातिवालों ने बड़ी जाति का भी सभापति बनाया; लेकिन निर्वाचित सभापति जानते हैं कि वे किनके बनाए हुए हैं। ग्राम-सभा के मेम्बर भी जानते हैं कि हर साल एक तिहाई मेम्बर हटेंगे और उनकी जगह नये मेम्बर लेंगे। जिसने नान्ह जाति का विश्वास खोया, उसे मेम्बर निर्वाचित होने की आशा छोड़ देनी होगी।

रामी—निर्वाचन के समय बहुत डर लग रहा था।

युधिष्ठिर—सारे प्रान्त में शांति से निर्वाचन हो गया। लोग अशांति का भय कर रहे थे, किन्तु मुझे उसका भय नहीं था। जो तीन-चौथाई हैं, उसे अपनी संख्या का बल है। उसके लिए बल-प्रयोग बेकार है। बड़ी जातिवाले इस परिस्थिति से असन्तुष्ट थे। यदि वे सफलता देखते, तो मार-पीट से बाज न आते। उन्होंने कहीं-कहीं धमकी भी दी, किन्तु जल्दी ही समझ गए, कि चट्टान से टक्कर लेने में सिर फुड़ाने के सिवा और कुछ हाथ नहीं आयगा। २५ और ७५ की लड़ाई क्या, जब दोनों एक जगह रहते हैं, एक-दूसरे की कमज़ोरियों को जानते हैं और एक ही तरह का हथियार उनके पास है? बिहार में किसी जगह एक नान्ह जाति के आदमी को जनेऊ पहने देखकर राजपूतों ने कान काट लिया। इस पर दूसरे दल ने एक राजपूत की नाक काट ली। लाठी-डण्डे की बात चलने पर मैंने एक बड़ी जाति के सज्जन से कहा था—

'शैतान के वास्ते लाठी का प्रयोग हर्गिज न कीजिएगा और न किसी की झोंपड़ी उजाड़िएगा, नहीं तो इसका दारुण परिणाम भोगना पड़ेगा। आपसे तिगुनी लाठियाँ उधर हैं और लाठी का सबसे अच्छा अभ्यास रखने वाली कितनी ही जातियाँ भी उधर हैं। उनकी झोंपड़ी छ महीने में फिर उठकर खड़ी हो जायगी; लेकिन आपकी भस्म हुई हवेली दस साल में भी खड़ी नहीं होगी। अशान्ति का रास्ता लेने पर आप खेत-खलिहान सभी जगह घाटे में रहेंगे।' ग्राम-पंचायतों के निर्वाचन में अशांति कहीं देखने में नहीं आई। इसे अहिंसा की विजय नहीं समझनी चाहिए, बल्कि हिंसा के प्रतिकार में होने वाली दारुण प्रतिहिंसा का भय इस शान्ति का कारण हुआ। जैसे भी हो, इसके लिए दोनों को धन्यवाद है।

रामी—अड़ङ्गा तो लगाया ही बड़ी जातिवालों ने।

युधिष्ठिर—पंचायत के निर्वाचन में कितनी ही जगह बड़ी जाति वालों ने बायकाट किया। तीन-चौथाई अधिकार-वंचित जब अपना अधिकार लेने लगे, तो बायकाट की क्या आवश्यकता? क्या बायकाट के हथियार से मुट्ठी-भर लोग भारी संख्या पर अपनी तानाशाही लाद सकते हैं? एक गांव में तो बड़ी जाति के पन्द्रह पंच चार-चार रुपए जमानत भी दे आए थे; लेकिन अन्त में अपनी नाकें कटाकर दूसरों के अपशकुन के लिए तैयार हो गए। उन्होंने ऐन वक्त पर अपना नाम हटा लिया। सोचा था, नान्ह जाति के पास साठ रुपए कहाँ होंगे, कि वे अपने उम्मीदवार खड़े कर देंगे। लेकिन एक नान्ह जाति के आदमी को जोश आया और वह अपनी कसाले की कमाई के गड़े साठ रुपयों को निकाल लाया। उन जगहों पर भी नान्ह जाति के पन्द्रह आदमी चुन लिये गए और बड़ी जातिवाले मुँह ताकते रह गए! आज़मगढ़ के एक गाँव में सभापति के लिए दो बड़ी जातिवाले खड़े थे। कोई बैठने का नाम नहीं लेता था। छोटी जाति वालों ने कहा—'बाबू लोगों के झगड़े में हमें पड़ने की ज़रूरत नहीं। हमें अपने गाँव का एक सभा-

पति बनाना है हम अमुक राम को अपना सभापति बनाते हैं।' इस तरह प्राइमरी तक पढ़ा एक नान्ह सभापति बन गया। सभापति के चुनाव में छोटी जातिवालों ने संकीर्ण जात-पाँत का ख़याल नहीं किया। भारी बहुमत रहने पर भी उन्होंने कहीं-कहीं बड़ी जातिवालों को अपना सभापति बनाया; लेकिन इन सभापतियों में उन्होंने प्रायः नौजवानों को चुना, बूढ़ों को नहीं, जिनके कि जुल्म और अत्याचार को वे आज तक सहते आए और जो समय की पुकार सुनने को तैयार नहीं। कहीं अहीर सभापति है, तो कहीं चमार; कहीं कोइरी है, तो कहीं कुर्मी (काछी)। एक जगह तो भूमिहार-ब्राह्मण को हराकर उन्होंने मोमिन जुलाहे को अपना पंच बना लिया। जान पड़ता है, आर्थिक भेद के आधार पर बनाए इस जाति-भेद द्वारा होते हुए युगों के अन्याय को मिटाने के लिए यह नई शक्ति सभी संकीर्णताओं को तोड़ फेंकेगी।

रामी—निर्वाचन-फल निकल जाने पर बड़ी जातिवालों ने कहना शुरू किया—'पंचायतें बहुत जल्दी तोड़ दी जायगी। छोटी जातिवालों के इस रवैये से सरकार बहुत असन्तुष्ट है।'

युधिष्ठिर--इस तरह की खबरें उड़ाने में कितने ही कौंसिल के मेम्बर तथा दूसरे कांग्रेसी पदाधिकारी भी शामिल थे। उनको आशा थी, कि सरकार आस्तीन में साँप नहीं पालेगी, अपनी जड़ अपने हाथों नहीं खोदेगी। वे अच्छी तरह जानते हैं, कि पचास, बावन, चौवन, जिस सन् में भी बालिग-मताधिकार के अनुसार कौंसिलों और असेम्बलियों का चुनाव होगा, उनके गले में जयमाला नहीं पड़ने वाली है। पहले तो उम्मीदवारों की सफलता का खयाल करके ही आधी जगहें कांग्रेस को छोटी जातिवालों को देनी होंगी। हर सीट पर कांग्रेसी उम्मीदवार हारें, इसे वे कभी पसन्द नहीं करेंगे। बाकी में भी निश्चय ही कांग्रेस से लड़कर जीतनेवाले छोटी जातिवालों की संख्या अधिक होगी। उनका वोट अधिक है, क्या करेंगे आप? संख्या से वंचित करने का अधिकार आपको है नहीं। वोट के अधिकारों से भी वंचित रखना

भयंकर परिणाम रखता है, यदि वह संभव हो। ग्राम-सभाओं के कितने ही असफल नेता और दूसरे अग्रसोची कौंसिल-मेम्बर बेचारे मना रहे थे, कि ग्राम-सभाएं तोड़ दी जायं; किन्तु युक्त-प्रान्त की सरकार ने घोषणा निकालकर कह दिया कि पंचायतें नहीं तोड़ी जायंगी। वे जल्दी ही अपना काम शुरू करेंगी। अब वे शायद आशा रख रहे हैं कि गाँव-सभा के मुन्शी के नियुक्त करने का अधिकार कलक्टर और ज़िला-बोर्ड के प्रेसिडेंट को है, इसलिए वहां से हमारा आदमी चला आयगा। इसमें शक नहीं कि ये दोनों अफसर सभी जगह बड़ी जाति के हैं; लेकिन आशा है कि वे इतनी अदूरदर्शिता से काम नहीं लेंगे और आदमियों की नियुक्ति में बहुमत की रुचि का ध्यान रखेंगे, नहीं तो कटुता भयंकर हो उठेगी, जिसका परिणाम अगले निर्वाचन और दूसरी बातों में उनके अनुकूल न होगा। कोई-कोई यह भी आशा रख रहे हैं, कि कमपढ़ों और अन-पढ़ों को निकाल दिया जायगा। मैंने नहीं सुना कि कोई अदालती पंच, सरपंच या ग्राम-सभा का सभापति-उपसभापति निरक्षर चुना गया है। लेकिन साक्षर का यह अर्थ नहीं है कि वे शुद्ध सुन्दर हिन्दी में खरें-के-खरें लिख डालेंगे। उनको इस बात का अधिकार देना पड़ेगा कि जहां-कहीं पंचायत या ग्राम-सभा चाहे, अपनी कार्यवाही अपनी स्थानीय भाषा में लिखे। ग्राम-पंचायतें सरकार को भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी और पहाड़ी की उपयोगिता स्वीकार करने को मजबूर करेंगी। गाँव के काम-काज में उनसे बहुत सुभीता होगा और फिर तो निरक्षर पंच भी तीन महीने में साक्षर हो अपना कार्य कर सकते हैं।

रामी—अब दूसरी तान छेड़ी जाती है।

युधिष्ठिर—हाँ, कुछ बड़ी जातिवाले अपने को न्याय का पक्षपाती दिखलाते हुए कहते हैं कि राज-काज का चलाना इतना आसान नहीं है, बच्चे के हाथ में तलवार नहीं देनी चाहिए। यह ठीक वही दलील है, जिसे अंगरेज़ दिया करते थे। क्या गाँव के सरपंच का काम चौथे दर्जे तक पढ़े घूरहू चमार नहीं कर सकते? बहुत अधिकार भी तो नहीं दिया गया है

कि क़ानूनी गुत्थियों को सुलझाने के लिए, वकीली दिमाग़ की आवश्यकता हो। यही झूठा प्रोपेगण्डा करके अदालतों में बड़ी जाति के पंच अधिक चले गए हैं। यदि यह स्पष्ट कहा गया होता, कि अदालत अपना फैसला स्थानीय भाषा में करेगी, तो उनमें भी नान्ह जाति के लोग अधिक गए होते। खैर, वे वहां अपने अधिकार का यदि दुरुपयोग करेंगे, तो सदा के लिए तो भेजे नहीं गए हैं। एक बड़े नेता कह रहे थे—'गांव की पंचायतों का क्या, जिला-बोर्डों को भी ये लोग चला लेंगे; लेकिन नान्ह जातिवाले प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों को कैसे चलायंगे? उनमें न वैसी शिक्षा है, न वैसी योग्यता।' अंगरेज भी जब तक यहाँ से विदा नहीं हुए थे, तब तक यही कहा जाता था। क्या अहीर, कोइरी कुर्मी, चमार, भर, जुलाहा, धुनियाँ आदि छोटी जातियों में युक्त-प्रांत के भीतर इतने बी० ए०-एम० ए० नहीं हैं, जो मंत्रियों के स्थान को सम्हाल लें? मैं समझता हूं, कोई ऐसा प्रांत नहीं है, जिसमें छोटी जाति के सौ-दो-सौ ग्रेजुएट न हों। आप कहेंगे, शिक्षा और योग्यता एक चीज़ नहीं है। मैं भी इसे मानता हूं। इसके उदाहरण हर प्रांत और केन्द्र के भी आज के मन्त्रिमण्डलों में अनेक मिलेंगे। आज के मंत्रि-मंडलों में एक-तिहाई को ही योग्य मंत्री कहा जा सकता है, नहीं तो बाकी केवल सेक्रेटरियों के बल पर अपने विभाग का कार-बार चलाते हैं। उन्होंने अपने को इस काम के लिए न पहले तैयार किया, न अब तैयार करना चाहते हैं। मैं नहीं समझता, कि नान्ह जातिवाले मन्त्री इनसे कम योग्य होंगे। इनकी कमजोरियाँ उनमें बहुत कम रहेंगी और तिड़कम का भरोसा भी बहुत कम रहेगा, इसलिए वे बहुत योग्य साबित होंगे। क्या अम्बेदकर चमार के लड़के होने से दिल्ली मन्त्रि-मंडल के किसी मन्त्री से कम योग्य हैं? नेहरू को ऊपर उठने में किसी के कंधे का सहारा मिला था; लेकिन अम्बेदकर अपने बल पर, अपनी निरीह जाति के बल पर ऊपर उठे हैं। मैं तो समझता हूँ, सारे केन्द्रीय मन्त्रिमंडल में उतना योग्य कोई मन्त्री नहीं है। जगजीवनराम दूसरे

चमार-पुत्र हैं। मैं समझता हूं, अपने विभाग के संचालन में वे दूसरे मन्त्रियों से अधिक दक्ष हैं। जो बड़ी जातिवाले समझते हैं, कि योग्यता उन्हीं की बपौती है, यह उनका दुराग्रह-मात्र है। अवसर और सहायता मिलनी चाहिए, फिर देखिए कि कितने अम्बेदकर-जगजीवन पैदा हो जाते हैं।

रामी—सभी बहाने हैं।

युधिष्ठिर—सभी पिछड़े हुओं को अवसर और सहायता देना सरकार का कर्तव्य होना चाहिए। यदि इस कर्त्तव्य को आज की सरकारें नहीं पाल रही हैं, तो भविष्य की सरकारों को पालना होगा। हर साल बीस हज़ार छात्रवृत्तियाँ शोषित बालक-बालिकाओं को मिल जानी चाहिएं। फिर देखिए कि उनमें पन्द्रह साल में लाखों की संख्या में शिक्षित और हज़ारों की संख्या में प्रतिभाशाली ग्रेजुएट, डाक्टर, इंजीनियर पैदा हो जाते हैं। जहाँ तक अभी काम सम्हालने की बात है, आवश्यकता से भी अधिक शिक्षित उनमें मौजूद हैं। जो सेक्रेटरी आज के मन्त्रियों की सहायता करते रहे हैं, वे तब भी हुक्मीबंदा रहेंगे। शासन-सूत्र हाथ में लेने का मतलब यह नहीं, कि जो आज सरकारी नौकरियों पर हैं, उन्हें कल जवाब दे दिया जाय। हाँ, वे यह जरूर करेंगे, कि सरकारी नौकरियों में जब तक संख्या के अनुपात से उनके भी आदमी नहीं आ जाते, तब तक ब्राह्मण-क्षत्री-लाला का एक भी आदमी भर्ती न किया जाय। पन्द्रह साल में वे तीन-चौथाई हो जायंगे। एक सज्जन कह रहे थे—'तब तो सरकारी नौकरियों का तल बहुत नीचे गिर जायगा।' मानो हर तरह के पापों और झूठी-सच्ची सिफारिशों के बल पर आगे बढ़े बड़ी जाति के गदहे, जो मोटी-मोटी तनखाहों पर नियुक्त किए जा रहे हैं, वह योग्यता के कारण ही हैं। उन्होंने पूछा—'तो क्या अब हमारे लड़के सरकारी नौकर नहीं हो पायंगे?' मैंने कहा—'हाँ, कुर्सी तोड़नेवाले नौकर नहीं हो सकेंगे। वे यदि अपनी प्रतिभा दिखलाना चाहें, तो डाक्टरी, इंजीनियरिंग आदि क्षेत्र उनके लिए खुले

हैं। देश के उद्योगीकरण के लिए लाखों इंजीनियरों की आवश्यकता होगी, वहाँ उनके लिए भी काम है।' सच तो यह है कि बेकारी के बिलकुल मिटा देने पर ही अब सबको काम मिलेगा। इस प्रकार छोटी जातिवालों का शासन बड़ी जातिवालों की अपेक्षा अयोग्य सिद्ध होगा, इसका कोई कारण नहीं समझ में आता।

महीप—लेकिन शासन से भी बढ़कर आज के भारत के लिए आर्थिक नवनिर्माण की आवश्यकता है, बड़ी जातिवाले पुराण पर जीते आए हैं। वे नवनिर्माण से मन में घबराते हैं, सिर्फ जीभ से कभी-कभी उसकी बात करते हैं। हमारी सरकारें, यह ठीक है, अभी दो ही वर्ष से बिलकुल स्वतन्त्र हुई हैं; किंतु इतने से ही मालूम होता है, कि वे पुराणों को बहुत कम हिलाना-डुलाना चाहती हैं। राजाओं को हटाया जा रहा है, तो लाखों महीना देकर राजप्रमुख बनाकर उन्हें फिर बैठाया जा रहा है। जमींदारी उठाने में तरह-तरह की बहानेबाज़ियाँ की जा रही हैं। पहले खूब बढ़ा-चढ़ाकर कीमत लगाई जाती है, फिर कहा जाता है कि इतना रुपया देने पर रुपए का भाव गिर जायगा, चीज़ों का मोल कई गुना बढ़ जायगा। असल बात तो यह है, कि ज़मींदार भी भाई-भतीजे-भाँजे हैं। उनके ऐशो-आराम में कोई खलल न पड़े, इसका ध्यान मारे जा रहा है। नहीं तो एकमुश्त इतना रुपया देने की क्या आवश्यकता है? ज़मींदारी-खाते से उनका नाम काट दीजिए और दया-दान के तौर पर कुछ सालों तक थोड़ा रुपया देते जाइए। वह रुपया उनकी वार्षिक मालगुजारी से कम होगा, तो रुपए के भाव गिरने का कहाँ डर है?

रामी—और सरकारी फजूलखर्ची?

युधिष्ठिर—नान्ह जाति की सरकार कभी इतनी बेदर्दी से लोगों का पैसा नहीं खर्च करेगी; क्योंकि बेदर्दी से ख़र्च करने की उसमें बान नहीं है। वह कभी अपने गवर्नरों और गवर्नर-जनरलों के रखने में अंगरेज़ों का अनुकरण नहीं करेगी; क्योंकि उसे मालूम है कि हमारे

भाई कैसे झोंपड़ों में रहते हैं। यह गवर्नर-जनरल के विलास-भवन को कल राष्ट्रीय संग्रहालय का रूप दे देगी। वह कभी बर्दाश्त नहीं करेगी कि लखनऊ, इलाहाबाद और कहाँ-कहाँ गवर्नर के मील-मील-भर के प्रासाद और उद्यान सैकड़ों नौकर-चाकर रखकर, लाखों सालाना खर्च करके सजाए जाते रहें। सचमुच ही समझ में नहीं आता, साल-भर में सात दिन के लिए इलाहाबाद का विशाल गवर्नर-प्रासाद और उससे भी विशाल उसका हाता क्यों नहीं नगर की बस्ती बढ़ाने के लिए दे दिया जाता। शोषितों की सरकार कभी ऐसी फजूलखर्ची नहीं बर्दाश्त करेगी और न वह अपने अधिकांश निकम्मे राजदूतों एवं कौंसिल-जनरलों पर इस प्रकार पानी की तरह रुपया बहाना चाहेगी। दुनिया के सभी देशों के राजदूत इस बारे में इंगलैंड और अमरीका के कान काटना नहीं चाहते। शोषितों को जहाँ अपने भाई-बन्दों को किसी बड़े पद पर रखना होगा, तो वे किफायत के खर्च से भी रख सकेंगे; क्योंकि वे आज के छोटे-बड़े मन्त्रियों और महामन्त्रियों के भाई-बन्दों की तरह लिफाफिए नहीं होते। तीन सौ से तेइस सौ के वेतन पर एकाएक ले जाना उस वक्त कभी संभव नहीं होगा। निश्चय है कि शोषितों की सरकार सरकारी फजूलखर्ची को बहुत कम कर देगी—बल्कि कहा जा सकता है कि खर्च में किफायत करने की क्षमता ब्राह्मण-क्षत्री-लाला की सरकारों में कभी नहीं हो सकती, वह हो सकती है केवल शोषितों की सरकार में।

रामी—और नव निर्माण ?

युधिष्ठिर—दामोदर-योजना-जैसी एक दर्जन योजनाएं हमारे देश के लिए परम आवश्यक हैं; किन्तु कुदाल से कोसों दूर रहने वाले उन बाबुओं से क्या आप कोई आशा कर सकते हैं, जो पंखा, मेज और कुर्सी से कहीं इधर-उधर हटना नहीं चाहते ? कल-कारखानों के बढ़ाने और सारे भारत में उनके जाल बिछा देने की लम्बी-लम्बी बातें की जा रही हैं; लेकिन उसमें भी वही रफ्तार बेढंगी दिखाई पड़ती है। कार-

खानों में बहुत नफा देखकर एक प्रान्त के मन्त्रियों ने एक बड़े कारखाने का काम अपने सगे-सम्बन्धियों के हाथ में दे दिया। सरकार की ओर से लाखों की सहायता मिलने वाली थी, फिर बहती गंगा में हाथ कौन नहीं धोता ? भाई-बन्धु ऐसे थे, जिन्होंने किसानों पर लाठियाँ भले ही तुड़वाई हों, लेकिन किसी कारखाने का मुँह तक नहीं देखा था। केन्द्रीय सरकार के एक विशेषज्ञ बतला रहे थे—'यदि डालमिया को ही दे दिया गया होता, तो शोषण चाहे होता, लेकिन कारखाना धरती पर खड़ा हो जाता, जिसे आप फिर राष्ट्रीय बना सकते थे।' इस तरह की न-जाने कितनी कपड़े, कागज और दूसरी मिलों की योजनाएं खटाई में पड़ी हुई हैं और लाखों रुपए भी बरबाद हो रहे हैं। हाँ, उद्योगीकरण में सरकार सबसे ज्यादा जिसके बारे में फुर्ती दिखला रही है, वह है भारत के पूँजीपतियों को अभय दान देना। छोटे-से-बड़े तक सभी मंत्रियों ने 'हुँआ', 'हुँआ' किया है। लेकिन पूँजीपति ही क्या उद्योग-निर्माण के एक-मात्र साधन हैं ? क्या मजूरों की उपेक्षा करके यह काम निष्कंटक आगे बढ़ सकता है ? पूंजीपतियों की लूट के लिए इतनी चिन्ता क्यों ? इसमें केवल अमरीका को खुश करने की ही प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि खून पानी से गाढ़ा होता है, यह भाव भी काम कर रहा है। आखिर सभी पूँजीपति बड़ी जाति के हैं, उनका ध्यान होना ही चाहिए। नान्ह जाति की सरकार कभी इस तरह पक्षपात नहीं कर सकती थी। वह उद्योग-धंधे का मालिक शरीर और दिमाग से काम करने वाले मजूरों को मानती, अमरीका की सहायता का स्वागत करती, किन्तु अपनी गर्दन बचाते हुए। क्या अन्धा भी आशा कर सकता है कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-लाला की सरकारें पूँजीपति घड़ियालों के प्रभाव से अलग रह सकती हैं ? अन्दाज़ तो यही मालूम होता है कि दस-पांच साल और कागजी घुड़दौड़ तथा लम्बे-लम्बे दिलासों में बिता दिए जायंगे। दस साल में हमारे बहुत-से बूढ़े निर्वाण का आनन्द लेने चले जायंगे। उनको इसकी क्या परवाह हो सकती है ? किन्तु इसी दस

साल में हमारे देश में ६ करोड़ और नए मुख आ जायंगे। उन्हें खाना-कपड़ा क्या इन कागजी योजनाओं से दिया जा सकेगा ? पूंजीपतियों के जाल से निकलकर शीघ्रता से देश का उद्योगीकरण नान्ह जाति की सरकार अच्छी तरह कर सकती है, बल्कि उसी से इसकी एक-मात्र आशा है। नान्ह जाति में सभी पुरुष और सभी स्त्रियाँ काम करने वाले हैं। सभी हँसुआ-कुदाल चला सकते हैं। वे नियम बना सकते हैं, कि कोई कोई लड़का परीक्षा में पास न समझा जाय, जब तक कि वह एक मास में आध घण्टा कुदाल न चला सके, मन-भर का बोझ लेकर घण्टे में दो मील न जा सके। इस बात की क्या बड़ी जातिवालों से आशा हो सकती है, जिनका आदर्श है मक्खन-मलाई की तरह का कोमल हाथ। दामोदर, कोसी, घग्घर, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और महानदी की विशाल योजनाओं में जो सैकड़ों पहाड़-जैसे बाँध बाँधे जायंगे, वे क्या इन मेहनती करोड़ों हाथों के लिए भार मालूम होंगे ? बड़ी जातिवालों को यह समझना भी मुश्किल है, कि पचास करोड़ हाथों का प्रतिदिन आठ घण्टे चलना रोज़ एक अरब पूँजी पैदा करना है। उस वक्त तो सारे देश में जोश फैल जायगा और प्रान्त-प्रान्त, ज़िले-ज़िले, गांव-गांव में तालाब, नहर और बाँध तैयार होते देखे जायंगे। उनका तालाब खुदवाने का जोश पिछले साल के यू० पी० के कागज़ी जोश-जैसा नहीं होगा।

रामी—भोजन और बेकारी का क्या उपाय हो सकता है ?

युधिष्ठिर—खाना और कपड़ा दो चीज़ों की समस्या आज भी हमारे देश की अधिकांश जनता के लिए भयंकर है, जो पचास लाख प्रतिवर्ष बढ़ती आबादी के लिए दिन-पर-दिन और भयंकर होती जायगी। देश में भरण-पोषण की क्षमता है, लेकिन रिश्वत और चोरबाजारी के राज में हम किसी समस्या को हल नहीं कर सकते। अन्न की समस्या मुश्किल नहीं है, यदि सब परती जमीन को आबाद करके खेतों को सवाया बढ़ा दिया जाय, यदि साल में एक फसल की जगह दो और

दो की जगह चार फसलें पैदा की जायं। यदि खाद, पानी और बीज के सुभीते से फसल की उपज दुगुनी भी कर दी जाय, तो आज से पाँच-गुना अधिक अन्न होगा, जो हमारे लिए एक नहीं, दो साल के खाने के वास्ते पर्याप्त होगा। लेकिन यह क्या हमारी जमींदारी-प्रथा के पोसने से होगा या गाँव के छोटे-छोटे जमींदारों को मनमानी करने के लिए छोड़ देने से होगा? इसके लिए खेतों में आधुनिक सिंचाई के यंत्र या नहरें, जोतने के लिए सुधरे यन्त्र, बोने के लिए अच्छे बीज और खेत को उर्वर बनाने के लिए प्रचुर परिमाण में रासायनिक खाद होने चाहिए। ये सब चीजें दो-दो बिस्वा (कट्ठा) के कोलों में नहीं इस्तेमाल की जा सकतीं। इसके लिए गाँवों में पंचायती खेती का रिवाज़ देना होगा। लेकिन पंचायती खेती के लिए ब्राह्मण-चत्री लाला कभी तैयार नहीं हो सकते। नान्ह जाति ही उसमें आगे बढ़ सकती है। उनके पास खेत से भी अधिक अपना जांगर (शरीर की मेहनत) है, जो साल-भर में अधिकतर बेकार पड़ा रहता है। वे चाहेंगे कि वैसाख-जेठ में भी खेत खाली न रहें और जमीन के भीतर बहते पानी को पम्पों से ऊपर लाकर खेतों को फसल की हरियाली से ढक दिया जाय। जिनमें न जमींदार हैं, न तालुकेदार, न दूसरे की कमाई पर जीनेवाले किसान या निठुर सूदखोर, वे ही नान्ह वस्तुतः खेती का नवनिर्माण कर सकते हैं। वे ही राष्ट्र-निर्माण में कार्य करने के लिए सबको मजबूर कर सकते हैं; क्योंकि उनमें कोई कामचोर नहीं।

रामी—तो शोषितों से आशा है?

युधिष्ठिर—वे युगों से चले आते शोषण का अन्त करेंगे; क्योंकि उनमें शोषक नहीं। शोषित जातियों को आगे बढ़ते देख बड़ी जाति के ईमानदारों को घबराने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि शोषित जातियाँ जो भी करेंगी, वह देश के सभी शोषित मानवों के लिए एक-सा लाभदायक सिद्ध होगा। वस्तुतः उनका हित उन्हें मजबूर करेगा कि वे मानव की समता और एकता की ओर आगे बढ़ें। हर तरह की प्रगति-

शील धाराओं का समर्थन और सहयोग उनका लक्ष्य रहेगा। हां, सनातन के नाम से डराकर जो कुरीतियाँ इस देश में आज तक चलती आ रही हैं, वे अब चलने नहीं पायंगी और हिन्दू-कोड में मामूली-से सुधारों को भी जो सह्य नहीं समझते, उन्हें ज़रूर यह पृथ्वी काँटों से भरी मालूम होगी। अभी तक वे अपने आचार को ही सदाचार और हिन्दू-धर्म मानते थे। चूंकि इन तिनतग्गों में विधवा-विवाह नहीं, भ्रूण-हत्या स्वीकृत की गई थी, इसलिए हिन्दू-धर्म विधवा-विवाह के खिलाफ़ है। जनतन्त्रता बतलाती है, कि किसी देश और जाति का वह धर्म और सदाचार नहीं हो सकता, जिसे दस फी-सदी जनता मानती है। हिन्दू-धर्म वह है, जिसे ७५ प्रतिशत लोग मानते है। और ७५ फी-सदी नान्हों में विवाह-विच्छेद भी होता है। उनमें विधवा-विवाह भी होता है, इसलिए हिन्दू-कोड में ये बातें आनी चाहिएं। डा० अम्बेदकर ने ठीक ही कहा था—'दस फी-सदी के आचार को सारे हिन्दुओं पर मत लादो।'

खोजीराम—छूत-अछूत का रोग बड़ी जातिवालों ने लगाया है। उसे हटाने की उनमें क्षमता नहीं है। यद्यपि छूत-अछूत का कुछ थोड़ा-सा प्रसाद बड़ी जातिवालों ने नान्ह जातिवालों को भी दे दिया है, किन्तु इस चालाकी का पता लगते देर नहीं लगेगी। सूअर पालना खराब है, इसलिए पूर्वी यू० पी० के लाखों भरों ने सूअर पालना छोड़ दिया। उनकी नई पीढ़ी जानती भी नहीं, कि उनके यहाँ कभी सूअर पाला जाता था। यह काम आर्थिक क्षति का था, क्योंकि मांस के लिए पाले जाने वाले जानवरों में सूअर सबसे अधिक लाभदायक है। साल-भर में बीस बच्चे और तीन महीने में हर बच्चा १५ सेर का, तीन महीने में एक सूअर से सात मन माँस, इतना माँस कहाँ मिल सकता है? इस भूल को मिटाना होगा और नई जाति के सूअरों का पालन बड़े पैमाने पर करना होगा। सौभाग्य से प्रायः सभी नान्ह जातियां सूअर का माँस खाती रही हैं। हां, लेकिन जब सूअर पालना बुरा समझा जाने लगा,

वालों ने इतना स्वार्थत्याग किया। चमड़ा निकालना बुरा होने से कुछ जगह चमारों ने भी यह काम छोड़ दिया। यह देश के लिए आर्थिक हानि की चीज़ है। लेकिन इसके छोड़ने का दोष किसको दिया जाय? निश्चय ही इसके लिए बड़ी जातियाँ दोषी हैं, जिन्होंने इसे घृणित काम बतलाया। वह समय बहुत नजदीक है, जब एक भी आदमी भंगी का काम करने को तैयार नहीं होगा। उसकी इस सेवा का बदला आपने उसे परम अछूत बनाकर दिया है। म्युनिसिपैलिटियों और शहर वालों को आज ही सजग होने की ज़रूरत है। उनको ख़याल रखना चाहिए कि १९६५ ई० में मैले की टोकरी सिर पर ले जानेवाला एक भी नर-नारी भारत-भूमि में नहीं रह सकेगा। वेतन दूना-तिगुना और अच्छे मकान के लालच से आप इतने दिनों तक और उन्हें ले चल सकेंगे। किन्तु आप उन्हें अनिवार्य शिक्षा भी देने जा रहे हैं। उनके लड़कों को सरकारी अफसर ही नहीं, मन्त्री भी बनाने के लिए मजबूर हैं। उनमें छात्रवृत्तियां भी बढ़ाने जा रहे हैं। फिर कैसे आशा रखते हैं कि इस साधारण नीति-वाक्य का अनुसरण नहीं करेंगे—'स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।' बस, दो गज़ेटेड अफसर और एक मंत्री बन जाने दीजिए, जिसे रोकने की किसी में शक्ति नहीं है; फिर देखिए कि वे अपनी जाति में किसी को मैले की टोकरी सिर पर उठाने लायक रहने देते हैं। इससे घबराने की ज़रूरत नहीं। हर एक मानव को मनवोचित्त अधिकार मिलने चाहिएँ। शहरों और कस्बों के लिए यदि उनके पास अक्ल है, तो समय काफी है, जिसमें वे स्वयं वह नाबदान बनवा सकते हैं।

युधिष्ठिर—हमारे देश में युगों से शोषितों के हित की बात सुनने की कभी चेष्टा नहीं की गई। बुद्ध ने जोर लगाया, किन्तु थोड़े ही दिनों तक उसमें कुछ सफलता रही। रैदास और कबीर भुक्तभोगी थे। उनकी भी बातें मनोरंजन-मात्र रह गईं। किन्तु आज उन बातों की अवहेलना नहीं की जा सकती। आज शोषित शक्तिधर हैं, कल वह शक्ति साकार

रूप लेने जा रही है। यह शक्ति एक नवीन और अत्यन्त सुन्दर दुनिया का निर्माण करने जा रही है। उस दुनिया में मानव-मात्र के सुख और शान्ति का ध्यान रहेगा। आज के शोषकों—ब्राह्मण-क्षत्री-लालों—की सन्तानें भी उससे लाभ उठायेंगी। इसलिए सबको इसका स्वागत करना चाहिए।

बीसवां अध्याय

भाषा और प्रदेश

भगवानदास—भारत के स्वतंत्र होके दो साल बीत गए, किन्तु अब भी हमारे स्वतंत्र देश की राष्ट्रभाषा कौन होगी, इसका निश्चय नहीं हो पाया।

महीप—कठिन-से-कठिन या आसान-से-आसान जिस किसी समस्या को उठाइए, यही हालत है। जान पड़ता है, हमारे नेतृत्व को काठ मार गया है, वह किसी बात पर कोई निश्चय नहीं कर पाता।

मुखपात्री—आखिर राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को भी वह लोग अनुभव करते हैं या नहीं ?

रामी—क्यों अनुभव करेंगे, जब वह समझते हैं, कि अंग्रेजी से काम चला जा रहा है।

महीप—राष्ट्रीय अपमान का ख्याल न भी हो, तो भी यह तो सोचना चाहिए, कि इसी वक्त कालेजों में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा देना अध्यापकों के लिए कठिन हो गया है। विद्यार्थी अंग्रेजी व्याख्यान नहीं समझ पाते। इसी वक्त जब यह हालत है, तो पांच बरस बाद जो मैट्रिक पास करके आयेंगे, उनकी क्या हालत होगी ?

रामी—हालत क्या होगी, पल्ले पड़ेगा सो पड़ेगा। हमारे विश्व-विद्यालय तो विद्यार्थियों के लिए कसाईखाने हैं ही—आज १९४९ में भी परीक्षाओं में ३० और ३५ सैकड़ा पास किये जा रहे हैं।

महीप—राष्ट्रीय सम्मान की बात करनी भी भूल है। लाज-शरम

धोकर हम लोग पी चुके हैं।

भगवानदास—राष्ट्रभाषा के बारे में जो अभी निश्चय नहीं हो रहा था, उसमें कई कठिनाइयां हैं।

महीप—कठिनाइयां किसमें नहीं हैं? अमेरिका से दो-चार अरब डालर मिलना जितना कठिन है, दामोदर और कोसी का बांध बांधना जितना कठिन है, आहार में स्वावलंबन जितना कठिन है, क्या उतना ही राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी कठिन है? फिर छोटी-बड़ी सभी समस्याओं को कठिन कहकर आप जमा करते जायंगे, तो नैया और बोझिल करेंगे क्या?

युधिष्ठिर—किसी बात का भी निर्णय करना इन्हें मुश्किल मालूम हो रहा है। क्या हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को छोड़कर भारत की कोई दूसरी राष्ट्रभाषा राष्ट्रलिपि हो सकती थी? संख्या में देखे तो (१) प्रायः आधे भारतवासी इसी भाषा को बोलते हैं और दो-तिहाई उसे बहुत कुछ समझ लेते हैं, (२) आधे से अधिक भारत का भू-भाग हिन्दी बोलने वालों का निवासस्थान है; (३) सत्तर, अस्सी और नब्बे प्रतिशत हिन्दी के शब्द भारत की दूसरी भाषाओं में मिलते हैं; (४) जब-कभी भी सारे भारत को एक भाषा की आवश्यकता पड़ी, तो हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में प्रचलित भाषा ही सारे भारत की भाषा स्वीकार की गई; (५) अब भी कलकत्ता-बंबई-जैसे बहुभाषा-भाषी नगरों में भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोग हिन्दी को ही विचार-विनिमय का माध्यम बनाते हैं।

मुखपात्री—सोया हो तो उसे जगाया जा सकता है; जो सोने का बहाना किये हुए है, उसे कैसे जगाया जा सकता है?

महीप—अंग्रेजी जाननेवाले बाबू अंग्रेजों के जाने पर उनके झंडे को अब भी पकड़े हुए हैं, उनकी इच्छा है, कि कम-से-कम उनके जीवन-भर अंग्रेजी बनी रहे। उधर पाकिस्तान को फिर हिन्दुस्तान में आ जाने का स्वप्न देखने वाले समझते हैं, कि यदि उर्दू के लिए स्थान

नहीं रखा गया, तो मुसलमान फिर अखण्ड हिन्दुस्तान बनाने में सहायक नहीं होंगे। तीसरे वह अदूरदर्शी भारतीय नागरिक मुसलमान हैं, जो विदेशीयता की प्रतीक अरबी लिपि और उर्दू भाषा को अब भी सारे भारत की कम-से-कम द्वितीय राष्ट्रभाषा बनाये जाने की दृढ़ लालसा रखते हैं। लेकिन व्यवहार की दृष्टि से, अधिकार की दृष्टि से, भारत की एकता की दृष्टि से, इतिहास की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट है, कि हिन्दी छोड़कर हमारे स्वतंत्र राष्ट्र की कोई दूसरी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर—अछता-पछता कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्रलिपि मानना ही पड़ा, चाहे पंद्रह साल और उसे टालने की कोशिश की गई है। खैर उसके बारे में हम अन्त में राहुल जी का एक लेख सुनायंगे।

भगवानदास—ठीक, किंतु हमारे सारे स्वतंत्र देश की एक भाषा एक लिपि होनी चाहिए।

मुखपात्री—एक भाषा एक लिपि और एक संस्कृति भी होनी चाहिए।

खोजीराम—एक भाषा एक लिपि एक संस्कृति और एक जातपाँत होनी चाहिए।

मुखपात्री—जातपाँत धर्म से संबन्ध रखती है, धर्म में राजनीति को दखल देना नहीं चाहिए।

महीप—और राजनीति में धर्म को दखल देना चाहिए, क्यों?

युधिष्ठिर—फिर बहके जा रहे हो? हमारा देश एक भाषावाला देश नहीं है। बंगला, उड़िया, तामिल, तेलगु, मलयालम् और कन्नड़ परम्परा से चली आई अपनी लिपि रखती हैं। जो भाषा या लिपि किसी प्रदेश में पहले से चली आ रही है, उसको हटाने का प्रयास बेकार ही नहीं बल्कि हानिकारक है। किसी बंगाली से आप कहें कि बँगला छोड़ दो, तो वह भी आपसे कह सकता है, आप ही क्यों न हिन्दी को

छोड़ दें। दूसरों को यदि आप देश की एकता के नाम पर अपनी भाषा छोड़ने के लिए कहते हैं, तो घर ही से क्यों न उसे शुरू करें।

भगवानदास—फिर तो कई भाषाओं के कारण हमारा देश बहुत से टुकड़ों में छिन्न-भिन्न हो जायगा।

युधिष्ठिर—बहुत क्या, सौ-दो सौ भाग हो जायँगे? हिन्दी छोड़कर बाकी दस ही दूसरी प्रधान भाषाएँ हैं! आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगु, तामिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती और पंजाबी। यूरोप से तुलना करके देखिये, तो मालूम होगा, वहां के भाषा-क्षेत्रों से हमारे भाषा-क्षेत्र क्षेत्रफल और जनसंख्या दोनों में बहुत बड़े हैं।

भगवानदास—तो आप समझते हैं, कि भाषाओं के अनुसार प्रदेशों को बांट दिया जाय?

युधिष्ठिर—यह सिद्धान्त तो कांग्रेस ने २७ वर्ष पहले ही मान लिया था और कभी किसी ने आपत्ति भी नहीं उठाई। अब जब सिद्धान्त को व्यवहार में लाने का अवसर आया और बात अधिकार के भीतर भी है, तो बहानेबाजी की जा रही है। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि भाषाएँ अपने क्षेत्र में उससे कहीं अधिक मजबूत बैठी हुई हैं, जितने कि हमारे आज के भाग्य-विधाता। भाषाओं की स्वतंत्र स्थिति और उन्हींके अनुसार प्रदेशों के विभाजन को स्वीकार करना गांधीजी की सबसे बड़ी दूरदर्शिता थी। आज प्रान्तों के नवनिर्माण की बात चलने पर कह दिया जाता है, हमारे ऊपर बड़े-बड़े काम आ पड़े हैं। जो बड़े-बड़े काम बतलाये जाते हैं, उनमें भी सबकी यही हालत है। दो वर्ष हो गए अभी भी लाखों शरणार्थी आसमान के नीचे वर्षा में भीगने के लिए छोड़ दिये गए हैं और उनकी जो गति हो रही है, उसे कहने की आवश्यकता नहीं। चालीस-चालीस लाख आदमियों के हाथ और दिमाग काम करने के लिए मौजूद हैं, लेकिन उनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। सदाव्रत खिला देने से हमारी सरकार समझती है, उसने अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया। प्रांतों को भाषानुसार बनाने में कठि-

नाई क्या है ? कहते हैं, सब जगह सीमान्तों के झगड़े हैं। कहीं-कहीं एक प्रांत की भाषा में दूसरी भाषा का द्वीप आ जाता है, जिसके लिए झगड़े खड़े हो जाते हैं। लेकिन, मैं नहीं समझता, यह भारत के बँटवारे जैसी कोई बड़ी समस्या है। यह केन्द्रीय नेतृत्व का कार्य है, कि सीमा के लिए सिद्धान्त निर्धारित कर दे। लगातार जहाँ तक एक भाषा बोली जाती है, वह एक प्रांत है; बीच में यदि कोई दूसरी भाषा का द्वीप है, तो वह जिस प्रदेश के भीतर है, उसी का वह अंग माना जाय। शिक्षा के लिए तो जहां भी पर्याप्त संख्या में बच्चे मिले, वहां उनको अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। यदि मद्रास के चारों तरफ तमिल भाषा बोली जाती है, तो उसे तमिलनाड़ का भाग मानना होगा। यदि बंबई मराठी भाषा के प्रान्त के भीतर द्वीप के तौर पर है, तो उसे महाराष्ट्र का अंग मानना होगा। बहुमत के लिए वयस्क मताधिकार से फैसला कर लेना चाहिए। भाषाओं के अनुसार प्रांतों का निर्माण करने में जितनी देर की जा रही है, भाषानुसार नये सीमान्त के निर्धारण में जितनी ही टालमटोल की जा रही है, उतना ही बंगाली-बिहारी, उड़िया-आंध्र, आंध्र-तमिल, तमिल-मलाबारी, मलाबारी-कर्नाट, कर्नाट-मराठा, मराठा-गुजराती, गुजराती-हिन्दी (राजस्थानियों), हिन्दी-पंजाबियों, हिमाचल-अहिमाचल, बंगाल-आसामी के बीच मे कटुता बढ़ती जायगी। इसके लिए सीमा निर्धारक कमीशन बना दिये जायँ, जिनमें विवादी प्रांतों के सदस्य न हों।

खोजीराम—अभी हैदराबाद के बारे में तो कुछ फैसला ही नहीं हुआ।

युधिष्ठिर— क्या अब भी फैसला बाकी है ? भारत-सरकार की ओर से तो कहा जा चुका है, कि हैदराबाद के भविष्य का निर्णय वहाँ की जनता करेगी। आन्ध्र निश्चय कर चुके हैं, वह नहीं चाहते, कि उनका एक भाग मद्रास प्रदेश में रहे, दूसरा हैदराबाद में। मराठे भी, आशा है, आन्ध्रबन्धुओं से पीछे नहीं रहेंगे; आखिर आन्ध्र के—जिसके

तोपताप किया जायगा। हिन्दी भाषा-भाषी अम्बाला कमिश्नरी पंजाबी भाषी पंजाब और पहाड़ी हिन्दी-भाषी हिमाचल के अंग को मिलाकर अंग्रेजों ने अपने मतलब से एक प्रांत गढ़ा था। अब हिन्दी भाषा-भाषी अम्बाला कमिश्नरी को पंजाब में रखने की क्या आवश्यकता है? जितनी पंजाबी बोलीवाली भूमि है, उसको एक प्रदेश बना देना चाहिए।

भगवानदास—पंजाब की रियासतों का संघ बनाया जा चुका है?

युधिष्ठिर—राजाओं को खुश करने के लिए संघ बना दिया गया था, लेकिन अंतिम फैसला तो जनता के हाथ में है। हमारे नेताओं को कम-से-कम भाषानुसार प्रान्त के संबंध में निर्णय लेते वक्त जनता की भावनाओं की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, और पंजाबी जनता के वयस्क मत निर्णय पर उसे छोड़ देना चाहिए। सारी पंजाबी-भाषा-भाषी जनता का एक प्रदेश होना अच्छा है। सिखों के लिए मैं यह राय दूंगा, कि वह पंजाब की भाषा पंजाबी और उसकी लिपि नागरी स्वीकार कर लें। गुरुमुखी को धार्मिक लिपि के तौर पर जिसकी इच्छा हो भले ही पढ़े। भारत की राष्ट्रलिपि को अपनाने में पंजाबी-भाषा-भाषियों को बहुत सुभीता रहेगा। तो भी यदि पंजाबी की लिपि गुरु-मुखी मान ली जाय, तो भी कोई हरज नहीं है। जो पजाबी होते हुए गुरुमुखी का विरोध करते हैं, उनको समझ लेना चाहिए, कि गुरुमुखी नागरी से बहुत भेद नहीं रखती, दोनों में थोड़ा-सा अंतर है और जब धर्मान्धता का दोष ढीला हो जायगा, तो नागरी लिपि स्वीकार कर ली जायगी, जिद्द करने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि सारे भारत संघ की भाषा होने के कारण वह अनिवार्य पाठ्य विषय में पंजाब में भी पढ़ाई जायगी, तब वह हिन्दी खुशी से पढ़ सकते हैं, लेकिन किसी पंजाबी को अपनी मातृभाषा से विरक्ति क्यों होनी चाहिए? उनको तो और उदारता दिखलाते हुए कहना चाहिए, कि पंजाब के भीतर पंजाबी भाषा गुरुमुखी लिपि चले और सारे भारत के लिए हिन्दी भाषा नागरी लिपि। यदि कोई उन्हें अनौचित्य या हठधर्मी

दिखाई पड़ती है, तो उसे समय पर छोड़ देने से कोई हानि नहीं होगी।

भगवानदास—लेकिन पंजाबी लोग हरियाना और कांगड़ा को समेट के रखना चाहते हैं, और वहाँ के लोगों को भी पंजाबी पढ़ाना चाहते हैं।

युधिष्ठिर—समेट के रखना निर्जीव पदार्थों का ही हो सकता है। सजीव मानव को उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं समेट के रखा जा सकता। बहुभाषीय प्रान्त बनाने की हानि को समझना चाहिए, और उसके लिए दुराग्रह नहीं करना चाहिए। पंजाब के हिन्दू यदि समझते हैं, कि हरियाना और हिमाचल के भाग को मिलाकर हिन्दू बहुमत बनाये रखेंगे, तो यह बहुत तुच्छ ही नहीं हानिकारक मनोवृत्ति है। इसका अर्थ सिख क्या लगायेंगे?

भगवानदास—मैं तो समझता हूँ, पहाड़ और हरियाना छोड़ देने पर भी बहुमत हिन्दुओं का ही रहेगा।

युधिष्ठिर—सिखों और हिन्दुओं के बहुमत की बात सुनकर भी मुझे बहुत खेद होता है। मुसलमानों और हिन्दुओं के झगड़े को क्या इस तरह फिर से दुहराना चाहते हैं? समझ लेना चाहिए कि यहां झगड़े का कारण दो संस्कृतियों का विरोध नहीं है। जब भारत के हिन्दुओं और बौद्धों में कोई सांस्कृतिक विरोध नहीं है, तो क्या सिखों और हिंदुओं का सांस्कृतिक विरोध माना जायगा? वैसे तो पंथों और उपपंथों के आपसी मतभेद रहते ही हैं, लेकिन उसे सांस्कृतिक विरोध नहीं माना जा सकता। यदि किसी हिन्दू या सिख में यह भावना काम कर रही हो, तो वह कल्याणकारिणी नहीं है। यदि कहीं यह भावना छिपी हो, तो उसके लिए भी यह आवश्यक है, कि पंजाब से पंजाबी-भाषा-भाषी भूभाग को अलग कर दिया जाय और केवल पंजाबी भूभाग का ही एक प्रदेश रहने दिया जाय।

महीप—अर्थात कांगड़ा और शिमला के सारे जिले तथा होशियारपुर और गुरदासपुर के पहाड़ी भागों को हिमाचल प्रदेश में जाना

चाहिए।

युधिष्ठिर—हां, और अम्बाला कमिश्नरी के हिन्दी भाषा-भाषी जिलों को यौधेय गण में जाना चाहिए, जिसकी राजधानी वहां दिल्ली मौजूद ही है।

रामी—यौधेय गण का अवश्य पुनरुज्जीवन होना चाहिए।

युधिष्ठिर—यदि हमारे आज के कर्णधारों को अपने इतिहास का गौरव होता, अपनी संस्कृति का प्रेम होता, तो वह यौधेय का नाम सुनते ही उछल पड़ते। इसी अम्बाला कमिश्नरी की भूमि में दुर्जेय यौधेय जैसा गण था, जिसने यवनों और शकों के छक्के छुड़ाये और जिसने चौथी सदी तक अपने अस्तित्व को एक यशस्वी वीर शक्ति के तौर पर कायम रखके गुप्तों के प्रचण्ड शासन में अपने-आपको खो दिया।

रामी—पूर्वी पंजाब नाम भी कुछ ऊटपटांग रहेगा, क्योंकि पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में चला गया है।

युधिष्ठिर—पूर्वी पञ्जाब को अभी पञ्जाब नाम छोड़ने की आवश्यकता नहीं, पाकिस्तान में इस्लामिस्तान की बाढ़ आई हुई है, क्या जाने वही पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल का कोई दूसरा नाम रख दें, फिर पंजाब नाम केवल हमारे लिए बच रहेगा। नहीं तो पुराने नामों में से मद्र को अपना सकते हैं, अथवा प्राचीनकाल से बहुत पीछे तक गणों की प्रधानता होने से उसे आदिगण या आदिजन कह सकते हैं।

रामी—और हिमालय प्रदेश के बारे में क्या होना चाहिए, मैं तो समझती हूँ, उसका एक स्वतन्त्र प्रदेश बन जाना चाहिए, जो बहुत लम्बा जरूर होगा, किंतु वह स्वाभाविक है; भाषा और प्रादेशिक संस्कृति के ख्याल से उसकी आवश्यकता है।

युधिष्ठिर—हिमाचल प्रदेश पर हम अलग ही बात करें तो अच्छा है। हिंदी-भाषा-भाषी प्रदेशों के बारे में कोई विवाद का सवाल नहीं है। बहुत विशाल होने से जैसलमेर से पूर्णिया तक सब हिंदी-भाषा-

भाषी भूमि का एक प्रदेश बनना कोई बुरा तो नहीं है, न इससे प्रबन्ध-सम्बन्धी कोई दिक्कत ही उठ सकती है। तो भी यदि तत्काल इसे एक महाप्रदेश का रूप न दिया जाय, तो कम-से-कम शिक्षा-संस्थाओं, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिषदों के द्वारा इसकी एकता बनाए रखने की आवश्यकता है। हिंदी-भाषा-भाषी बिहार और पश्चिमी बंगाल का मानभूम (पुरलिया) को लेकर झगड़ा बेकार है। उसका निर्णय बालिग-मताधिकार से वोट द्वारा कर लेना चाहिए। जितना लगातार इलाका बिहार में रहना चाहता है, उसे वहां रहने देना चाहिए, जो बंगाल में जाना चाहता है, उसे बंगाल में जाने देना चाहिए। कूचबिहार और त्रिपुरा को लेकर आसाम और बंगाल का झगड़ा भी बेकार है, वहां भी बहुमत द्वारा फैसला करना ठीक है। दार्जिलिंग को केवल इसीलिए बंगाल में रखा जा सकता है, कि वहां की जनसंख्या पर्याप्त नहीं है, लेकिन दोनों में भाषा का जितना भेद है तथा पिछड़े इलाके वालों का आगे बढ़े इलाकेवालों से जो स्वाभाविक डर है, उससे यही अच्छा है कि जब तक दार्जिलिंग बंगाल में रहे; भाषा और शिक्षा की दृष्टि से उसे स्वतन्त्र माना जाय और वहां के भीतरी मामलों में कम-से-कम दखल दिया जाय। एक तरह उसे बंगाल के भीतर स्वायत्त-प्रदेश मान लिया जाय। लेकिन मैं तो समझता हूँ बृहत्तर हिमाचल के ही द्वारा दार्जिलिंग, सिक्किम और भूटान की समस्या ठीक से हल की जा सकती है।

रामी—और राष्ट्रभाषा के समय में जो लेख सुनाने वाले थे।

युधिष्ठिर—लीजिये उसे भी—

संविधान सभा और हिंदी

हिन्दी के लिए अब नया युग आरंभ हुआ है। स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा क्या हो इसके लिए अंतिम युद्ध १४ सितम्बर १९४८ को होकर हिन्दी के पक्ष में निर्णय हो गया, किंतु अभी विरोधियों ने अपने हथियार डाल नहीं दिये हैं। आखिरी समय तक उन्होंने लड़ाई लड़ी

और यह नहीं कहा जा सकता कि वह बिलकुल असफल रहे। वस्तुतः जहां अंग्रेजी को कल से ही सिंहासन-च्युत होना चाहिए था, वहां उसके स्थान को १५ वर्ष के लिए अचल बना दिया गया और भारतीय अंकों को अन्तर्राष्ट्रीय रूप कहकर अंग्रेजी अंकों को भी हिंदी पर लाद दिया गया। शायद विरोधियों ने यह भी सोच रखा है "उत्पत्स्यते तु मम कोपि समानधर्मा" और यहां एक नहीं सैकड़ों, हजारों समानधर्मा अभी भी प्रयत्नपूर्वक पैदा किये जा रहे हैं। अंग्रेजी को सरकारी भाषा बनाने का लाभ एक वर्ग इण्डो-आंग्लियन को यह हुआ, कि सभी सरकारी नौकरियाँ उनकी और उनकी आनेवाली पौध की बपौती हो गईं। क्या आई. सी. एस. जैसा दिमाग गरीबों की खोपड़ियों में नहीं पैदा होता? लेकिन गरीबों के लड़कों के लिए तो अपनी मातृ-भाषा में मिडिल तक भी पहुंच पाना मुश्किल है। उनके पास फीस और किताब का पैसा कहाँ? जो कुछ लोग पढ़ भी जाते, उन्हें भी कानवेन्ट या युरोपियन स्कूलों की खर्चीली पढ़ाई से अंग्रेजी को मातृ-भाषा समान बोलने का सुभीता कहाँ था? हमारे पब्लिक-सर्विसेस-कमीशन केवल ज्ञान ही नहीं देखते, बल्कि वहां "गुड ब्रीडिंग" भी देखी जाती है, और गुड ब्रीडिंग का अर्थ है, रहन-सहन, बोल-चाल, कपड़े-लत्ते में पूरा साहिब होना। यह सब सुभीता उसी वर्ग ने प्राप्त किया। वह वर्ग केवल मलाबार में नहीं है, न केवल बंगाल में। कहीं अधिक और कहीं कम, वह वर्ग अंग्रेजों की दया से सारे भारतवर्ष में पैदा हुआ। वह अंग्रेजों के औरस पुत्र समान था, इसलिए उसे परम राजभक्त होना ही चाहिए था। इसमें शक नहीं कि कभी-कभी उनमें से भी हिरण्यकशिपु के यहाँ प्रह्लाद पैदा हो जाते थे, किंतु वह अपवाद स्वरूप ही। इस वर्ग का अपना निहित स्वार्थ था, जिसके लिए वह आज हिन्दी का विरोध करता है और उससे अंग्रेजी के स्थान को १५ साल के लिए अक्षुण्ण बनाके छोड़ा। यह वर्ग केवल हिन्दी का ही शत्रु नहीं है, वह वस्तुतः अपने-अपने प्रदेशों में वहाँ की भाषाओं का

भी उतना ही विरोधी है। यदि बंगला ही योग्यता की कसौटी रही, तो कानवेन्ट में दूध पिये, युरोपियन स्कूल में शिक्षा पाये, "गरम-घर" के पोसे इनके बच्चों को कौन पूछेगा? इस वर्ग की कृपा से कानवेंट, युरोपियन स्कूल, जुनियर-केम्ब्रिज, सिनियर-केम्ब्रिज को भी १५ साल का और जीवनदान मिल गया। इसी बीच में हमारे इण्डो-आंग्लियन साहबों की अगली पौध तैयार होके निकल आयगी, क्या इनके लिए वह कुछ करना नहीं चाहेंगे? उस दिन इन्हीं में से एक गोपाल-स्वामी अय्यंगार ने राष्ट्रभाषा पर बहस करते समय संविधान सभा में कहा थाः—

"देश अंग्रेजी भाषा को तुरंत नहीं छोड़ सकता, कितने ही वर्ष तक हमें अंग्रेजी को जारी रखना होगा—अंग्रेजी का छोड़ना संभव नहीं होगा। इसलिए करीब १५ सालों तक अंग्रेजी उन सभी कामों में प्रयुक्त होती रहेगी जिनके लिए वह आज प्रयुक्त होती है—जहाँ तक मेरा विचार है, अंग्रेजी आगामी बहुत वर्षों तक यहाँ रहेगी, उसको रहना है—क्योंकि हम मानते हैं कि संघ या राज्य के काम के लिए हिन्दी इतनी काफी विकसित नहीं हुई है कि न्यायालयों के द्वारा कानून या कानून की व्याख्या के लिए निश्चित भाव व्यक्त कर सके। हम संघ की राजकीय भाषा की तरह हिन्दी को स्वीकार कर सकते हैं, किंतु हमें मानना पड़ेगा, कि आज वह भाषा इतनी पर्याप्त विकसित नहीं हुई है।"

हिन्दी के विकास में बाधा पैदा करने के संदेह का एक यह भी कारण है कि इण्डो-आंग्लियन शाही हमारे यहां अब भी सर्वेसर्वा है। क्या आप आशा रखते हैं, कि जिस वर्ग का इतना स्वार्थ अंग्रेजी के भीतर निहित है और जो ही आज वस्तुतः हमारे ऊपर शासन कर रहा है, वह कभी भारत-संघ में हिन्दी और आसाम में आसामी, बंगाल में बंगला, आन्ध्र में तेलगु, उड़ीसा में उड़िया, तमिलनाड में तमिल, केरल में मलयालम, महाराष्ट्र में मराठी, गुजरात में गुजराती, पंजाब

में पंजाबी को अपना सिंहासन संभालने देगा ? इसलिए हिन्दी को अभी भी सावधानी से रहने की आवश्यकता है। हमें यह नहीं समझ बैठना चाहिए, कि नाबालिगी के कारण छिना हुआ हिन्दी का सिंहासन १९६९ ई० में अपने-आप उसे मिल जायगा। कितने ही अहिन्दी-भाषी हिन्दी की स्थिति को गलत समझते रहे थे, कि हिन्दी सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए लड़ रही है। किंतु वास्तविकता यह थी, कि हिन्दी ने भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं की लड़ाई लड़ी। यदि आज संविधान में मंजूर करना पड़ा : "कोई राज्य (प्रदेश या प्रांत) कानून द्वारा राज्य के भीतर प्रयुक्त होनेवाली भाषाओं में से किसी या हिन्दी को उस राज्य के सभी या कुछ राजकीय कामों के लिए प्रयुक्त की जानेवाली भाषा या भाषाएं स्वीकृत कर सकता है—राष्ट्रपति की सम्मति से निर्णय, डिग्री और आदेश के अतिरिक्त कोई राज्य अपने राज्य के उच्च न्यायालय की कार्रवाई तथा सरकारी काम के लिए हिन्दी भाषा या किसी और भाषा को स्वीकृत कर सकता है", और इस प्रकार व्यवस्थापिका-सभा से हाईकोर्ट तक तथा दूसरे सरकारी कामों में जहाँ हिन्दी-प्रदेशों में हिन्दी का अधिकार स्वीकार करना पड़ा, वहाँ हिन्दी के इस युद्ध में बंगाल में बंगला, उड़ीसा में उड़िया, और तमिल-लनाड में तमिल को भी वह स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया। हिन्दी के विरुद्ध जितना ज़ोर-शोर से प्रचार और आँखों में धूल-फुंकाई चला रही थी, उसके कारण हिन्दी के पक्ष को जो नहीं समझ पाते थे, वह भी आगे उसके कृतज्ञ होंगे।

हिन्दी के आगामी प्रोग्राम के बारे में कुछ कहने से पहले अभिनव महाभारत के अंतिम दिनों का बातों का सिंहावलोकन कर देना व्यर्थ नहीं होगा, क्योंकि वहाँ कितनी ही बातें ऐसी कही गईं, जिन पर हमें आगे ध्यान रखकर चलना होगा।

अंग्रेज़ी का स्तुतिगान—पंडित जवाहरलाल ने अंग्रेज़ी की अंध-भक्ति नहीं दिखलाई। उन्होंने सिर्फ कहा : "अंग्रेज़ी ने जो हमें

सिखलाया, उसके लिए हम कृतज्ञ रहेंगे। हमारे लिए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी का महत्त्व अवश्य बना रहेगा।" मेरी समझ में यदि नेहरू जी के इस विचार को स्वीकार किया जाय, तो हमें अंग्रेजों की दासता का भी कृतज्ञ रहना पड़ेगा और क्लाइव-हेस्टिंग्स से लेकर डायर ओडायर तक का, क्योंकि उनकी कृपा से हमें अंग्रेजी जैसा हीरा मिला। यदि अंग्रेजी न मिली होती, तो हम अंधकार-युग में रहते, गुहामानव की स्थिति से ऊपर न उठ पाते! फिर मेकाले से हमें रुष्ट होने की आवश्यकता नहीं, जो कि उसने भारतीय भाषाओं के विरुद्ध अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनवाया और जिसको दुनिया के योग्यतम शिक्षा-विशेषज्ञ हमारे मौलाना आज़ाद अभी १५ सालों तक और रखना चाहते हैं:—"पटना विश्वविद्यालय के भाषण में मैंने ज़ोर दिया था, कि शासन-प्रबन्ध और शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी को तुरंत उठा नहीं देना चाहिए और यह भी कि पाँच वर्ष और अंग्रेजी की शिक्षा का माध्यम बना रहना चाहिए। किंतु अब मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं, कि पाँच वर्ष का समय काफी नहीं है। मैं अय्यंगार जी से सहमत हूं, कि अंग्रेजी को १५ वर्ष तक और जारी रहना चाहिए। जिन प्रांतों और विश्वविद्यालयों ने मनमाने तौर पर अंग्रेजी को हटा देने का निश्चय किया है उनका निश्चय गलत है। इस तरह की जल्दबाजी शिक्षा के उद्देश्य को हानि पहुंचायगी और देश के शिक्षातल को गिरायगी। कचहरियों में भी वही कठिनाई है। यह अफसोस की बात है, कि देश की कोई भाषा ऐसी नहीं है, जिसके पास कानूनी शब्द हों तथा जो न्यायालय की भाषा के तौर पर काम दे सके।"

मेकाले और उसकी सात पीढ़ियों की आत्माएं स्वतंत्र भारत के सुयोग्य शिक्षा-मंत्री मौलाना आज़ाद को दुआएं देती होंगी, इसमें कोई संदेह नहीं। अस्तु।

हमें अंग्रेजी भाषा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। रूस, जापान, जर्मनी सबने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से

ज्ञान-विज्ञान नहीं सीखा। जिस देश को अवसर मिला, उसने अपनी भाषा को समृद्ध किया। यदि अंग्रेजी हमारे ऊपर लादी न गई होती, तो हमारी भाषाएं, जिनके बोलनेवाले करोड़ों की संख्या में हैं और जिनका दिमाग किसी से कम नहीं है—वह कबकी आगे बढ़ गई होतीं। अगले कुछ ही सालों में हम देखेंगे कि वह किसी भाषा से पीछे नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारे लिए अंग्रेजी का महत्त्व जो नेहरू जी बतलाते हैं, वह तभी हो सकता है, जब कि हमारा अंतरराष्ट्र केवल इंगलैंड तथा अमेरिका तक ही सीमित हो। अंग्रेजी का स्थान युक्तराष्ट्र अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड तक सीमित है, जिनकी आबादी मुश्किल से २० करोड़ होगी। हमारे कुछ देश-भाइयों का भी विचार है, कि अंतर्राष्ट्रीयता या विश्व यहीं तक सीमित है। कुछ समझते हैं, कि अंग्रेजी और डालर पर्याय-वाची शब्द हैं, इसलिए जहाँ तक डालर वहाँ तक अंग्रेजी। इस तर्क को समझना बहुत मुश्किल है। लेकिन आजकल का डालर राज्य क्वार के बादलों की छाया से बढ़कर नहीं मालूम होता। ४५ करोड़ का चीन हमारी आँखों के सामने किस तरह डालर की छाया से बाहर निकल रहा है, इसे हम आज अपनी आँखों देख रहे हैं। यदि हम ३५ करोड़ की राष्ट्रभाषा हिन्दी को अकिंचन मान भी लें, और १५ वर्ष बाद भी चीनी भाषा को नगण्य की श्रेणी में गिनें, तो भी विश्व में एक अंग्रेजी ही अंतर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है। रूसी भाषा पोलंद और चेकोस्लोवाकिया से प्रशान्त महासागर के द्वीपों तक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा स्वीकृत की जाती है, और अब लालचीन भी उसी को अन्तर्राष्ट्रीय मानेगा। यह आसानी से समझी जाने वाली बात है, कि विश्व के दो ब्लाकों की भाँति उनकी अन्तर्राष्ट्रीय भाषाएं भी दो हैं, इसलिए केवल अंग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का सर्वेसर्वा मानना भूल है, और हमारे लिए तो केवल अंग्रेजी के झरोखे से विश्व को देखना और भी खतरनाक तथा एकांगिता का शिकार होना है। इसका यह अर्थ नहीं, कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी

की उपयोगिता को नहीं मानते। वस्तुतः रूसी और अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र की दो सबसे अधिक महत्त्व रखनेवाली भाषाएं हैं, और अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जर्मन और फ्रेंच का उनसे कम महत्त्व नहीं है।

लेकिन हमारे इण्डो-आंग्लियन अय्यंगार अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ही नहीं राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अंग्रेजी के महत्व और अनिवार्यता की बात करते हैं। वह नेहरूजी की इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है। "अंग्रेजी ने जो हमें सिखलाया उसके लिए हम कृतज्ञ रहेंगे, लेकिन साथ ही उसने अंग्रेजी-पढ़ों और अंग्रेजी-न-पढ़ों के बीच मे भारी खाई पैदा कर दी। इसे हम आज बर्दाश्त नहीं कर सकते। अंग्रेजी चाहे कितना ही महत्व रखती हो, किंतु हम इस विचार को नहीं मान सकते, कि हमारे यहां एक ओर अंग्रेजी-पढ़ा एक आभिजात्य वर्ग हो, और दूसरी ओर एक बड़ी संख्या अंग्रेजी-न-पढ़े साधारण जनों की हो।"

हिन्दी पर दोषारोपण

"हिन्दी एक प्रादेशिक (प्रांतीय) भाषा-मात्र है" अय्यगार।

"यह मानी हुई बात है, कि हिन्दी एक प्रादेशिक भाषा-मात्र है" गाडगिल।

प्रादेशिक या प्राविंसियल भाषा के दो अर्थ हैं, (१) एक प्रदेश (प्रांत) की भाषा, तथा (२) फ्रांसीसी प्रयोग के अनुसार ग्रामीण भाषा, हिन्दी के लिए इन दोनों अर्थों में प्रादेशिक का प्रयोग अयुक्त है। हिन्दी एक प्रदेश नहीं अनेक प्रदेशों की भाषा है। आज भी (१) युक्त प्रदेश, (२) बिहार (३) मध्यप्रदेश, (४) विंध्य प्रदेश, (५) मालव (मध्यभारत), (६) राजस्थान, (७) हिमाचल प्रदेश, तथा (८) आधे पंजाब, इन आठ प्रदेशों की वह स्वीकृत राजभाषा है। वस्तुतः हिन्दी का राष्ट्रभाषा स्वीकृत होने का यह कारण हुआ, कि वह सिरोही, जैसलमेर से लेकर कठिहार-पूर्णिया तक, तथा हिमालय, मानसरोवर पास से लेकर बस्तर-रतलाम तक पहले ही व्यापक थी। यह वह विशाल भू-

भाग है, जिसमें पुराने वैभवशाली १६ जनपदों के उत्तराधिकारी (१) मगध, (२) मैथिल-अंग, (३) भोजपुरी (काशी, मल्ल), (४) कोसल, (अवध), (५) पंचाल, (६) कुरु, (७) यौधेय, (८) ब्रजवासी (६) मत्स्य, (१०) मरु (मारवाड़), (११) वागड़, (१२) मालव, (१३) निमाड़ी, (१४) बुन्देले (दशार्ण) और (१५) खश (हिमाचलीय) रहते हैं, जिनकी मैथिली, मगही, अवधी, ब्रज तथा मरु (डिंगल) भाषाओं के पास बड़ा यशस्वी लिखित साहित्य है, और दूसरों के पास भी लिखित या अलिखित साहित्य का अभाव नहीं है। हिन्दी-भाषियों पर आक्षेप किया जाता है, कि वह भाषा के सम्बन्ध में पक्षपाती, संकीर्ण-हृदय तथा मतांध होते हैं। मैं हिन्दी भाषा का समर्थक हूँ, किन्तु मेरी मातृ-भाषा भोजपुरी कुरुदेशिया (मेरठ कमिश्नरी की) हिन्दी की अपेक्षा बंगला के नजदीक की भाषा है, दोनों के प्रचीन मागधी की संतान होने से ऐसा होना स्वाभाविक है। बगाली भाई हिन्दी पढने में जो कठिनाई पाते हैं, भोजपुरी बालकों को उस सारी कठिनाई से गुजरकर हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करना पड़ता है। यहां हिन्दी के सम्बन्ध में जो अवस्था हमारी है, वही मैथिलों-मगहियों की भी है। विशाल हिन्दी-भाषा भू-भाग की चौदह भाषा वालों ने आज अपनी मातृभाषा का मोह छोड़-कर उसकी सीमाओं को तोड़कर हिन्दी को अपनाया है, उसे मातृभाषा कहने में भी संकोच नहीं किया और उस पर उतना ही अधिकार प्राप्त किया, जितना कि कुरुवासियों को मातृभाषा होने के नाते हिन्दी पर है। इस पर भी हमारे ऊपर उक्त आक्षेप क्या उचित हो सकता है?

हिन्दी को ग्रामीण के अर्थ में प्रादेशिक कहना तो अत्यन्त हास्या-स्पद और सत्य का अपलाप करना है। इसे वही कह सकते हैं, जिन्होंने हिन्दी के उसके आठवीं सदी से लेकर आज तक के विशाल तथा वर्धमान साहित्य का जरा भी परिचय नहीं प्राप्त किया। हिन्दी कविता-साहित्य दुनिया के किसी भी साहित्य का मुकाबिला कर सकता है, सरह-स्वयंभू पुष्पदंत, अब्दुर्रहमान से लेकर कबीर-जायसी, सूर-तुलसी, मीरा-बिहारी

होते निराला-पंत-प्रसाद तक बहती हिन्दी काव्य-सरिता अपनी पावन गंगा की भांति ही प्रांजल और विशद, गंभीर और विशाल, सुन्दर और मधुर है। और उसका आधुनिक गद्य-साहित्य भारत की किसी भाषा से सभी विषयों में पीछे नहीं है; तो भी अभी कितने ही भाई ३० वर्ष पहले की बात दुहराये जा रहे हैं, कि हिन्दी से अमुक और अमुक भाषा का साहित्य बहुत आगे बढ़ा हुआ है। श्री नजीरुद्दीन अहमद (पश्चिम बंगाल) ने तो यहाँ तक कह डाला : "हिन्दी अत्यन्त आरम्भिक अवस्था (रुडिमेंट्री) है।" बिना कुछ भी देखे-सुने ऐसी अनर्गल बात कह डालना शोभा नहीं देता। साहित्य के बारे में रूस कोई पिछड़ा देश नहीं है और भारत की नई-पुरानी भाषाओं, यहां के साहित्य और संस्कृति की जानकारी में रूसी विद्वान् दुनिया के किसी देश से भी पीछे नहीं हैं। वहां पर आधुनिक भारत के महान साहित्य-निर्माताओं में रवीन्द्र और प्रेमचन्द्र को ही बहुत ऊँचा माना जाता है। लेनिनग्राद-विश्वविद्यालय में दोनों की जयंतियाँ मनाई जाती हैं। इसलिए नजीरुद्दीन साहब का हिन्दी को "रुडिमेंट्री" कहना उनकी अज्ञानता का ही परिचायक है।

अय्यंगार महाशय का यह भी कहना गलत है—"हम जानते हैं कि संघ या राजकीय काम के लिए हिन्दी इतनी काफी विकसित नहीं हुई है।" विकसित भाषा वह है, जिसमें सभी भावों को प्रकट किया जा सके, यदि सभी पारिभाषिक शब्द मौजूद हों। २२वीं सदी के लिए आवश्यक लाखों पारिभाषिक शब्दों के आज न होने से अंग्रेजी अविकसित भाषा नहीं है। हिन्दी भाषा और हमारी बाकी ११-१२ भाषाएं भी पूर्णतया विकसित हैं। उनमें सभी तरह के भावों को प्रकट करने की क्षमता है। मैं तो समझता हूँ, हाईकोर्ट का कोई भी जज, जो अपनी भाषा और साहित्य को अच्छी तरह जानता है, कल से अपने फैसले की परिभाषाओं को अंग्रेजी में रखकर अपनी भाषा में द्रुतलिखित करा सकता है। परिभाषाओं का कोश काफी तैयार हो चुका है। प्रयत्न

किया जाय तो अगले छ महीनों में वह पूर्णतया तैयार हो सकता है। यदि हमारे बूढ़े जज नई परिभाषाओं को सीखना नहीं भी चाहें, तो भी वह अंग्रेजी परिभाषाओं के साथ अपने फैसले को डिक्टेट करा सकते हैं। उनका क्लर्क वैधानिक-परिभाषा-कोश देखकर अंग्रेजी की जगह हिन्दी परिभाषाओं को बैठा सकता है। मैं यह बात सिर्फ हिन्दी के पक्ष में ही नहीं बल्कि सबके लिए कह रहा हूँ, क्योंकि संस्कृत से लिये जाने के कारण उर्दू को छोड़कर भारत की सभी भाषाओं की परिभाषाएं एक रहेंगी।

एक ओर कलकत्ता के बाजार में बोली जाने वाली हिन्दी को सुनकर हिन्दी-साहित्य पर जरा भी दृष्टि डालने की तकलीफ किये बिना करीमुद्दीन साहब उसे अत्यंत प्रारंभिक या रुडिमेंट्री कह देते हैं। और साहित्यिक भाषा के लिए स्वयं वर्षों लगाने के बाद या खुद अंग्रेजों को लगाते देखकर भी शिकायत की जाती है कि हिन्दी बहुत संस्कृतमय है और उसे समझना मुश्किल है।

पंडित जवाहरलाल जी ने राष्ट्रभाषा में दो गुणों का होना आवश्यक बतलाया है– "यदि हिन्दी को बहुत बड़ी भाषा बनाना है, तो दो बातें मन में रखनी होंगी : प्रथम उसे ग्राहिका भाषा होना चाहिए, और दूसरे त्याजिका नहीं होना चाहिए।" हिन्दी ग्राहिका भाषा रही है और सदा रहेगी। यदि तुलसी की एक-एक पंक्ति हमारे लिए अमर है, तो सारी जड़ता और कूपमंडूकता के जोर डालने पर भी हम तुलसी की पंक्तियों में आए "गरीब नेवाजू", "लायक" आदि सैकड़ों विदेशी शब्दों को नहीं छोड़ सकते। जो शब्द किसी देश की भी साधारण जनता की भाषा में घुल-मिल गए हैं, उनके परित्याग करने का प्रयत्न बेकार है। लेकिन ग्राहिका भाषा का यह अर्थ नहीं हो सकता, कि संविधान-सभा की सूची उल्लिखित १२ भाषाओं में जो शब्द प्रचलित और एक-से हैं, किन्तु संस्कृत का होने की वजह से उन्हें त्याग दिया जाय और उनकी जगह उर्दू वालों के आग्रह के कारण अरबी के शब्दों को भरा

जाय। इसी तरह ग्राहिका का अर्थ यह नहीं हो सकता, कि अंग्रेजी पढ़े हुओं के लिए अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में भर दिया जाय, क्योंकि अंग्रेजीवाले हिन्दी परिभाषाओं को सीखने के लिए तैयार नहीं हैं। हम वर्तमान पीढ़ी के बूढ़ों को यह रियायत दे सकते हैं, कि वह अपने व्यवहार में कितने ही अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करें, किन्तु उनके लिए आनेवाली पीढ़ी का रास्ता बिगाड़ना अच्छा नहीं है। उन्हें तो नई परिभाषाएं पढ़नी ही चाहिएं, हिन्दी केवल, अंग्रेजी, फारसी, और अरबी जैसी विदेशी भाषाओं के सम्बन्ध में ही उचित रूप से ग्राहिका नहीं रहेगी, बल्कि, प्रादेशिक भाषाओं से भी हिन्दी को बहुत लेना है। जैसे हिन्दी मातृभाषा न रखनेवाले हम भोजपुरी, मालव या मागध हिन्दी को अपनी मातृभाषाओं की देन से विकसित करते रहे हैं, अब वही काम आसामी, बंगला, उड़िया, गुजराती और मराठी ही नहीं, बल्कि तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़वाले भी करने जा रहे हैं। क्योंकि अब हिन्दी उनके लिए पराई भाषा नहीं रही। हिन्दी ने तमिल भाषा के शब्द 'पंदल' को पंडाल के रूप में ले लिया है, ऐसे ही कितने ही शब्द दूसरी भाषाओं से भी आयेंगे। हम भाषा के सम्बन्ध में कभी शुद्धिवादी नहीं हो सकते। प्रादेशिक भाषाओं का प्रभाव पड़ेगा, उनसे हिन्दी का शब्द-भंडार समृद्ध होगा। कितनी ही जगह पर हिन्दी के व्याकरण का सरलीकरण भी होगा, किन्तु जिनको सीखने में आलस्य है, उनके लिए हिन्दी में परिवर्तन कर दिया जाय, जैसा किसी भाषा में नहीं हुआ है। हम संधिकाल में श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जी-जैसे बड़े-बूढ़ों से यह आग्रह नहीं करेंगे, कि वह कलकत्ता के बाजारों की हिन्दी को छोड़कर शुद्ध हिन्दी बोलें, लेकिन आगे आनेवाले तरुणों से तो अवश्य आशा रखते हैं, कि वह हिन्दी के सीखने में उसका दसांश समय तो अवश्य देंगे; जितना कि अंग्रेजी के लिए दिया जाता था।

अतीत और संस्कृति की मांग—नेहरू जी ने अपने भाषण में कहा था "हमारे देश में आजकल अत्यधिक पुरातन की ओर देखने की

आदत पाई जाती है....जब देश नवयुग के संधिकाल में हो, तो सदा अतीत और अतीतयुग की बातें करना युग-प्रवेश के लिए सहायक नहीं हो सकता। राष्ट्र और जनता की संस्कृति होती है, किंतु साथ ही युग की संस्कृति और युगधर्म भी होता है।" इस वचन में तथ्य है, इसे मानना पड़ेगा। चरमश्रेणी की प्राचीन पंथिता को ही कुछ लोग परम कल्याण का मार्ग समझते हैं, किन्तु यही लोग थे, जिन्हें कल के अंग्रेज शासक धर्मावतार मालूम होते थे। वह इसी प्राचीन पंथिता के कंचुक से अपने हजारों काले कर्मों को छिपाना चाहते थे। बाकी रहा अपने प्राचीन इतिहास और संस्कृति के प्रति सम्मान तथा उससे उत्प्रेरणा लेने की बात, तो उससे कौन इन्कार करता है ? नेहरू जी भी उसे स्वीकार करते हैं :—'अपने अतीत से संबंध-विच्छेद करने का कोई प्रश्न नहीं है। जैसा करना निरर्थक ही नहीं अत्यन्त हानिकारक होगा, क्योंकि हमारा निर्माण अतीत द्वारा हुआ है, हमारी जड़ें अतीत में हैं। यदि हम अतीत से अपने को विच्छिन्न कर लें, तो हम बेजड़ के हो जायंगे, निस्संदेह राष्ट्र की संस्कृति की स्थापना के लिए सुदृढ़ नींव की आवश्यकता है।"

इसी बात को डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने भी हिन्दी के राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिये जाने पर अपने हर्षोद्रेक को प्रकट करते हुए कहा था :—"केन्द्र में प्रयोग की जाने वाली यह भाषा (हिन्दी) हमें एक दूसरे के और समीप लायगी।...अगर अंग्रेजी स्थान में हमने एक भारतीय भाषा को स्वीकार किया है, तो यह अवश्य हमें एक दूसरे के और भी समीप लायगी, क्योंकि हमारी परम्परा एक है, हमारी संस्कृति एक है जो बड़ी-से-बड़ी महत्व की बात हो सकती थी, उसे हमने आज संपादित किया। आज मुझे बड़ी प्रसन्नता और आनंद है। मुझे विश्वास है, आनेवाली पीढ़ियाँ हमें आशीर्वाद देंगी।" आनेवाली पीढ़ियाँ सारी संविधान सभा को आशीर्वाद नहीं देंगी, विशेषकर उन लोगों को, जिनका पूरा प्रयत्न इस बात के लिए था, कि जैसे भी हो अंग्रेजी के

स्थान को अक्षुण्ण रखकर अपने वर्ग के स्वार्थ को बचाया जाय। हां, आनेवाली पीढ़ियाँ जिनको सबसे अधिक आशीर्वाद देंगी, उनमें सर्व प्रथम नाम बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन का होगा। जिनके दृढ़ नेतृत्व ने विरोधियों को झुकाया। दूसरे जिस व्यक्ति को सबसे पहले आशीर्वाद मिलेगा, वह हैं डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद। कितनी ही सभाओं से बद्ध होने पर भी हिन्दी का हित उनके हृदय में सदा रहा और हिन्दी को जल्दी-से-जल्दी राष्ट्रभाषा के योग्य सभी नवीन शब्दावलियों से अलंकृत करने में जिस व्यक्ति से अधिक आशा है, वह भी बाबू राजेन्द्र प्रसाद हैं।

आज़ाद का विलाप—एक ओर संस्कृतियों की एकता और महिमा की बात चल रही थी, स्वतंत्र भारत की अपनी राष्ट्रीय भाषा के स्वीकार करने का आनंद मनाया जा रहा था, तो वहीं कुछ की छाती पर सांप भी लोट रहा था, जिनकी कि मर्मवेदना मौलाना आजाद के मुंह से फूट निकली :—"मैंने कांग्रेस असेम्बली पार्टी में कहा था, कि राष्ट्रभाषा की लिपि देवनागरी हो, किंतु सरकारी सूचना के लिए उर्दू लिपि का भी प्रयोग होना चाहिए। यह मध्य का रास्ता था, और मैंने समझा था, कि इसे सब स्वीकार करेंगे, लेकिन मैं अपने भावों को छिपाना नहीं चाहता। मुझे यह देखकर बहुत निराशा हुई, कि पार्टी ने उसे स्वीकार नहीं किया।....अगर सदस्यों के २० वीं सदी के मस्तिष्क इस तरह के हैं, तो स्वाभाविकतया यह प्रश्न उठता है, कि हम कहाँ जा रहे हैं?.... यहाँ हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने का उतना प्रश्न नहीं है, जितना कि इस बात का, कि इस काम को असहिष्णुतापूर्ण संकीर्ण भावना के साथ किया जा रहा है। ऐसे वातावरण में आगे के लिए यह सोचना बहुत कठिन है, कि राष्ट्रभाषा कभी भी सभी तरह के प्रभावों को आत्मसात कर सकेगी, दूसरी भाषाओं को अपनायगी, और इस देश की सामूहिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करेगी....सरकारी सूचनाओं के प्रकाशन के लिए भी उर्दू लिपि को न मानते हुए हिन्दी के पक्ष में कांग्रेस असेम्बली पार्टी ने जो निश्चय किया, और उसका जो धक्का मेरे हृदय

पर लगा, उसे मैं सहन नहीं कर सकता।"

राजेन्द्र बाबू के उद्गार और मौलाना के इस विलाप में कितना अन्तर है? मौलाना को सदस्यों के २०वीं सदी के मस्तिष्क पर खेद है। लेकिन इस उद्गार से पता लग जाता है, कि मौलाना का मस्तिष्क अवश्य अब भी सातवीं सदी से आगे नहीं बढ़ा। अरब जेहादियों ने कभी किसी संस्कृति से समझौता करने की आदत नहीं सीखी। वह उच्च संस्कृतियों और उनकी कला और साहित्य को पैरों तले रौंदते, नष्ट करते आगे बढ़ते गए। शायद उन्हीं की रूह मौलाना के मुँह से बोल रही थी। किसी ईसाई को तो ऐसा क्षोभ नहीं हुआ, न उसने अपनी किसी अलग भाषा का आग्रह किया। एंग्लो-इण्डियन नेता श्री फ्रैंक अन्थोनी ने हिन्दी के क्लिष्ट रूप की शिकायत की, रोमन लिपि की सिफारिश की, किंतु हिन्दी के स्वीकृत हो जाने पर उन्होंने कोई विलाप नहीं किया। संविधान सभा के उपप्रधान ईसाई होते हुए भी भारतीयता, हिन्दी और अपनी मातृभाषा बंगाल के पक्षपाती हैं। आखिर उर्दू क्या बला है? क्या वह इस्लामिक जेहादियों के भारत-विजय के उपलक्ष में खड़ा किया कीर्तिस्तम्भ नहीं है? क्या स्वदेशी शब्दों की जगह अरबी शब्दों को भाषा में भरना देश में दुर्राष्ट्रीयता का बीजारोपण करना नहीं था? हम मानते हैं कि उनके लिए भारत में यह कोई नई चीज़ नहीं थी। इस्लाम ने जो भी कहा हो, किंतु मुसलमानों ने अपने को देश की धारा का अंग बनने से सदा इन्कार किया। इसी के कारण दो राष्ट्रों का अंकुर उत्पन्न हुआ, और उसी के कारण अन्त में भारत का विभाजन होके रहा। मौलाना के मनोभाव को देखने से पता लगता है, कि वह उक्त साधारण मनोभाव से ऊपर नहीं उठ सके। सच्ची जातीयता, धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठने की मांग करती है। आखिर किस सिद्धान्त के आधार पर मौलाना उर्दू की मांग कर रहे थे। सरकारी सूचनाओं में उर्दू की मांग का अर्थ था अभी तक उर्दू में सरकारी सूचनाएं हिन्दी-भाषा-भाषी कुछ प्रदेशों तक ही सीमित थीं, किन्तु

अब उन्हें सारे भारत के लिए निकाला जाय। असल में तो मौलाना समझ रहे थे, स्वतंत्र भारत इस प्रकार अपनी टूटी हुई इतिहास शृंखला, सांस्कृतिक परम्परा को फिर से जोड़कर उसे उज्जीवित कर रहा है। सहस्राब्दियों का कूड़ा-कर्कट विशाल देश में लुप्त होने जा रहा है। एक जातीयता और सांस्कृतिक परम्परा इस देश के प्रत्येक प्रदेश को एक दूसरे से घनिष्ठ तथा संबद्ध और एक ही नहीं कर देगी, बल्कि भावी भारत का प्रत्येक व्यक्ति भारतीय जाति का अपने को समान अंग समझेगा। जिन विषमताओं ने भारत को राजनीतिक परतंत्रता दी, जिन विषमताओं के कारण पश्चिमी जेहादियों को फलने-फूलने का मौका मिला, और अन्त में अंगरेजों की सहायता से जिसने भारत के दो टुकड़े करने में सफलता पाई। उसे दूर होते देखकर जेहादी कैसे विचलित हुए बिना नहीं रह सकता था। उसे तो अभी और अपने धर्म के फैलाये कितने ही जालों द्वारा भारत में आगे बढ़ना था। उसे आशा थी, कि सात सौ बरस में यदि कुछ हजार से दस करोड़ बनकर हमने भारत के पंचमांश को काटकर अपना कर लिया, उन्हीं के द्वारा हम अभी और काफी आगे बढ़ेंगे। किन्तु यदि नवीन भारत में भारतीयता सर्वेसर्वा होगई, तो हमारी हालत चांदनी में चोर जैसी होगी।

इसका यह अर्थ नहीं है, हम इस्लाम या किसी धर्म के साथ किसी प्रकार की कड़ाई या असहिष्णुता दिखलाना चाहते हैं। किसी भी धार्मिक विचार के लिए हर एक व्यक्ति को स्वतंत्रता रहनी चाहिए। भारत ने इसे सदा से माना। यद्यपि पुरानपंथी जब तक इसके विरुद्ध जोर लगाते रहे, लेकिन इस बात का इतिहास साक्षी है, कि भारत ने कभी उदार भावना को नहीं छोड़ा। अरबों द्वारा उत्पीड़ित पारसियों को किसने अपनाया ? यहूदियों और सिरियन ईसाइयों को किस उदार भावना से शायद भारत ने अपनी गोद में लिया ? यहाँ बौद्ध और जैन जैसे ईश्वर-विरोधी धर्म पैदा हुए, फले फूले, उनका सम्मान हुआ। आज भी आप मेरे जैसे अनीश्वरवादी बौद्ध का सम्मान कर रहे हैं। इस्लाम

के लिए भी कोई डर नहीं, किन्तु जो भाव मौलाना की वाणी से फूट निकले, वही यदि इस्लाम के हैं, तो इससे उस धर्म के अनुयायियों को लाभ नहीं होगा। भारत के मुसलमान इस वक्त एक चौरस्ते पर खड़े है, यहाँ उन्हें स्पष्ट निश्चय करना होगा, कि वह भारतीयता को अपनायेंगे, या अपना प्रेम और आदर्श भारत भूमि से बाहर रखेंगे। भारतीयता को अपनाने का यह अर्थ नहीं है, कि वह हिन्दुओं की देवमाला को मानें, हिन्दू बनें। वह भले पाँच बार नमाज़ पढ़ें, लेकिन क्यों ईश्वरदत्त की जगह फ़ारसी के खुदाबख्श को तो पसन्द करेंगे, किंतु भारतीय नाम को नहीं। इस्लाम का भारतीकरण करना ही हितकर होगा। मौलाना आजाद की यह मनोवृत्ति यदि भारतीय मुसलमानों में रही तो उनकी भक्ति तथा सहानुभूति हमेशा भारत की अपेक्षा पाकिस्तान के साथ रहेगी। यह भावना भारतीय मुसलमानों को छिपा पंचमांगी बनाके छोड़ेगी। आखिर ११वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक अब्दुर्रहमान (मुलतानी), मलिक मुहम्मद जायसी, और कबीर-जैसे हिन्दी के महान् कवि मुसलमानों में हुए थे। भारतीयता का मुसलमानों से आग्रह है कि वह उसको अपनी चीज़ समझें।

मौलाना आज़ाद के हाथ में शिक्षा और संस्कृति-जैसा बहुत महत्त्वपूर्ण विभाग है। हम नहीं समझते कि उनके जैसे मनोभाव रखनेवाले के हाथ में यह विभाग सुरक्षित है। कांग्रेसवालों ने कुछ मुसलमान नेताओं की नाज़बरदारी आवश्यकता से अधिक केवल इसलिए की थी, कि वह हिन्दुस्तान की एकता को कायम रखने में सहायक होंगे, किन्तु मुसलमानों के इतिहास ने इन्हें वैसा पाठ पढाया था, कि इन नेताओं के लिए कुछ नहीं हो सका। अब हमें साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को अवलंब नहीं देना है, और मौलाना में भारतीयता के प्रति अवहेलना और मुस्लिम साम्प्रदायवाद भरा हुआ है।

अपने भाषण में मौलाना ने यह भी कहा :— "व्यक्तिगत तौर से मैं अनुभव करता हूँ, कि भारत के लिए रोमन लिपि सबसे उपयुक्त है।

इस समस्या पर मैंने ३० बरस पहले ही विचार किया था, और इस परिणाम पर पहुंचा था, कि इस अन्तर्राष्ट्रीय लिपि को यहां इस्तेमाल करना चाहिए। मुझे मालूम है, ऐसा समय आयगा जब कि परिस्थितियाँ भारत को रोमन लिपि स्वीकार करने लिए मजबूर करेंगी।

मौलाना की इस रोमन-लिपि-भक्ति में भी नागरी लिपि के प्रति विरक्ति काम कर रही है, अपनी नाक कटे तो कटे, दूसरों का असगुन तो हो। किस वक्त मौलाना आशा रखते हैं, जब कि भारत रोमन-लिपि स्वीकार करने के लिए मजबूर होगा? लक्षण तो बतला रहे हैं, कि पूर्व यूरोप से लेकर प्रशान्त महासागर और चीन तक रोमन लिपि नहीं बल्कि ग्रीक लिपि से निकली रूसी लिपि का बोल-बाला होने जा रहा है। क्या युरेसिया महाद्वीप के लिए जब रूसी लिपि मान्य हो जायगी, उस समय भारत रोमन लिपि को स्वीकार करेगा? मध्य-एसिया की भाषाओं को रोमन लिपि में लिखने का परीक्षण रूस ने कर लिया है। उसे २६ अक्षर की रोमन लिपि में बहुत-से पैबंद लगाकर काम चलाने की जगह ३२ अक्षर की रूसी लिपि से काम चलाना आसान मालूम हुआ। इसीलिए रोमन लिपि को रूसी लिपि के लिए स्थान खाली करना पड़ा।

हिन्दी की जय—आजाद के विलाप और कितनों के प्रलाप के बाद संविधान सभा ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकृत किया। मौलाना हिफजुर्रहमान ने हिन्दुस्तानी के लिए १४ वोट प्राप्त किये और मुहम्मद ताहिर ने उर्दू के लिए १२। रामलिंगम चेट्टियार ने पांच बरस बाद वाले कमीशन को हटाने का संशोधन रखा था, जिसे ९ वोट मिले।

संविधान में राष्ट्रभाषा संबंधी अनुच्छेद—संविधान सभा ने राष्ट्रभाषा के संबंध में जो निर्णय किया, उसके कुछ अंश निम्न प्रकार हैं:—

"३०१, क।

(१) संघ की राजकीय भाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी

होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले अङ्क भारतीय अङ्कों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप में होंगे।

(२) इस संविधान के प्रारम्भ होने के बाद पन्द्रह वर्षों के समय तक अंग्रेजी संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों में प्रयुक्त की जायगी, जिनके लिए कि वह संविधान के आरम्भ होते समय की जा रही थी।

परन्तु, उक्त समय के भीतर भी राष्ट्रपति की आज्ञाद्वारा संघ के किसी राजकीय प्रयोजन के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा और भारतीय अङ्कों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त उनके देवनागरी रूप को भी प्रयोग करने का अधिकार दे सकेगा।

(३) उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि के बाद पार्लमेंट विधान द्वारा,

(क) अंग्रेजी भाषा या.

(ख) अङ्कों के देवनागरी रूप को निश्चित प्रयोजन के लिए प्रयोग करने का बंधान कर सकेगी।" (अंग्रेजी अङ्क नागरी सुलेख में हिन्दी की कलम से कैसे लिखे जायगे, इस पर भी ध्यान दिया होता, तो कठिनाई और अस्वाभाविकता का पता लग गया होता।)

(पांच साल बाद राष्ट्रपति एक कमीशन नियुक्त करेगा—)

३०१, ख। (२) कमीशन का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति के सामने (इन बातों की सिफारिश करे --)

(क) संघ के राजकीय काम के लिए हिन्दी भाषा का क्रमशः अधिक उपयोग करना,

(ख) संघ के सभी या राजकीय कामों के लिए अंग्रेजी भाषा के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाना।

३०१, ग। राजकीय भाषा या भाषाएं (कुछ प्रतिबन्धों के साथ):—

कोई राज्य कानून द्वारा राज्य के भीतर प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी या हिन्दी को उस राज्य के सभी या कुछ राजकीय कामों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा या भाषाएं स्वीकृत कर सकता है।

परन्तु, जब तक राज्य की व्यवस्थापिका सभा कानून द्वारा दूसरा बन्धान नहीं करती, तब तक अंग्रेजी भाषा उन राजकीय प्रयोजनों के लिए राज्य के भीतर प्रयुक्त की जाती रहेगी, जिनके लिए कि वह इस संविधान के प्रारम्भ होने के समय की जा रही थी।

३०१, घ....परन्तु, यदि दो या अधिक राज्य सहमत हों, कि उनके बीच के व्यवहार के लिए हिन्दी भाषा राजकीय भाषा हो, तो ऐसे व्यवहार के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।"

३०१, च (१, ३) सभी आदेश, नियम, आज्ञाएं और उपनियम, जो इस संविधान या पार्लमेंट अथवा राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा बनाये जायं, अंग्रेजी भाषा में होंगे।

(२). इस अनुच्छेद के अनुसार कोई बाधा नहीं होगी, यदि राष्ट्रपति की सहमति से कोई राज्य निर्णय, डिग्री और आज्ञा के अतिरिक्त अपने राज्य के उच्च न्यायालय की कार्रवाई या सरकारी काम के लिए हिन्दी भाषा या किसी और भाषा को स्वीकृत करे।

(३)....जब किसी राज्य की व्यवस्थापिका विधेयक, कानून शक्ति रखने वाली आज्ञा के लिए अंग्रेजी से भिन्न किसी भाषा के प्रयोग को विहित करे, तो उसके अंग्रेजी अनुवाद को राज्य के गवर्नर के प्रमाणीकरण के साथ प्रकाशित किया जायगा और वही इस अनुच्छेद के अनुसार अंग्रेजी का प्रामाणिक रूप समझा जायगा।

३०१, झ। हिन्दी के विकास के लिए आदेशः-संघ का कर्तव्य होगा, कि हिन्दी के प्रचार को बढ़ाये और उसका इस तरह विकास करे, जिससे वह भारत की सामूहिक संस्कृति के सभी तत्वों के प्रकटन की माध्यम बन सके और अपनी स्वाभाविकता में बिना हस्तक्षेप के हिन्दुस्तानी तथा दूसरी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होनेवाली रूप शैली और प्रकटन को हजम करते एवं जहाँ आवश्यक और वांछनीय हो, अपने शब्द-कोष के लिए मुख्यतः संस्कृत और गौणरूपेण दूसरी भाषाओं से लेते, भाषा को समृद्ध बनाने की कोशिश करें।"

(भारत की राज्य स्वीकृत १४ भाषाएं हैं—आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम्, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत)।

हिन्दी राष्ट्र की भाषा—किसी समय हिन्दी मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर तथा आधे देहरादून एवं चौथाई बुलन्दशहर अर्थात पुराने कुरुदेश की भाषा थी, जिसे १९ वीं सदी के अन्त तक प्राचीन सोलह जनपदों के उत्तराधिकारियों ने अपना लिया, और उसे मातृभाषा तक कहना शुरू किया। भोजपुरी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हरिऔध; अवधीभाषी महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट, ब्रजभाषी राजा लक्ष्मन सिंह, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण; यौधेय (हरियाने के) बालमुकुन्द गुप्त, उत्तर-पंचाल पद्मसिंह शर्मा ने उसके भव्य साहित्य-मंदिर का निर्माण किया। आज तो उसके यशस्वी कवियों और साहित्यकारों में मैथिली, मगही, भोजपुरी, कोसली (अवधी), खश (पहाड़ी), ब्रज, कौरवी, यौधेयी (हरियाना), पंजाबी, राजस्थानी, मालवी, बुन्देली सभी मातृभाषाओं के लाल पाये जाते हैं, और सभी राष्ट्रभाषा-प्रेम में एक दूसरे से प्रतियोगिता करने के लिए तैयार हैं। जिस तरह कौरव्यों ने अपनी मातृभाषा हिन्दी को अपनी राष्ट्रभाषा ही नहीं, मातृभाषा कहने पर भी हमारा विरोध नहीं बल्कि इसे अभिमान की चीज समझा; उसी तरह अब समय आ गया है, जबकि आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती भाषाभाषी हिन्दी को अपनी कहेंगे, अपनी अनमोल कृतियों द्वारा राष्ट्रभाषा को सजायेंगे, इसके लिए हमें क्षोभ नहीं हर्ष है।

साहित्य-निर्माण—अब प्रोपेगंडा का युग खतम हो गया, प्रचार का लक्ष्य पूरा हो गया, अब हिन्दी के साहित्य को अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी भाषाओं की श्रेणी में लाने के लिए एक विशाल और सर्वतोमुखीन साहित्य का निर्माण करना है। इसमें साहित्यकारों, पाठकों, प्रकाशकों का सहयोग आवश्यक है। 'थिंकर्स लाइब्रेरी', 'एव्री मैन्स

लाइब्रेरी', 'पेंगुइन', 'पेलिकन' जैसी अंग्रेजी की ग्रन्थमालाओं की भांति हम भी अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी गंभीर कृतियों को सस्ती प्रकाशित करके कुछ सालों के भीतर विश्व की ज्ञानराशि से अपने कोश को भर सकते हैं।

परिभाषा-निर्माण—किन्तु आज के साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग वैज्ञानिक साहित्य है, जिसकी रचना तथा अध्ययनाध्यापन के लिए सबसे पहली आवश्यकता है, हिन्दी में वैज्ञानिक परिभाषाओं की। हमें सभी विज्ञानों को हिन्दी में लाने के लिए पांच लाख पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता है। हम जितनी जल्दी उनका निर्माण कर सकें, उतनी ही जल्दी अंग्रेजी के जुए से मुक्त हो सकेंगे। परिभाषाओं की संख्या पांच लाख कहने से घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। यदि राष्ट्रीय सरकार, हमारी सारी प्रादेशिक भाषाओं के विशेषज्ञों तथा प्रादेशिक भाषा-संस्थाओं का पूरा सहयोग मिले और पचास विद्वान् काम में लग जायं, तो पांचों लाख परिभाषाएं १९५० के अंत तक बन सकती हैं, १९५२ तक उन्हें बना डालना तो बिलकुल आसान है, किंतु परिभाषाएं एक विद्वान् के बूते की चीज नहीं हैं, न किसी एक भाषा के मान की। हां, हिन्दी भी अकेली इस काम को ठीक से नहीं कर सकती। वैज्ञानिक परिभाषाएं हमें सिर्फ हिन्दी के लिए नहीं, बल्कि सारी भारतीय भाषाओं के लिए एक-सी बनानी है। संस्कृत से बनाने के कारण हमारा कार्य आसान है। जिस तरह वेदान्त की परिभाषाएं हिन्दी, आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी में एक है; उसी तरह जीव-रसायन प्रत्यक्ष-शरीर-शास्त्र की परिभाषाएं भी एक बनाई जा सकती हैं, बनाई जानी चाहिएं। यह तभी हो सकता है, जब कि परिभाषा-निर्माण में सभी भषा-भाषी विद्वानों का हाथ हो। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इसी नीति पर अपने परिभाषा-निर्माण का काम कर रहा है। उसके 'शासन-शब्दकोश' में बंगला तथा उड़िया का सहयोग लिया जा सका था। आजकल जो कोश बन रहे हैं, उनमें

सभी भारतीय भाषाओं का सहयोग लिया जायगा।

यहां अप्रासंगिक न होगा, यदि संचालक के तौर पर सम्मेलन के परिभाषा-निर्माण की प्रगति पर मैं कुछ कह दूं। इस समय २४००० परिभाषाओं के निम्न परिभाषा कोश बनकर छप रहे हैं:—

(१) जीव-रसायन	५२०० शब्द	(६) रंग-परिभाषा	२५० शब्द
(२) रसायन इंजीनियरी	५०० ,,	(७) प्रत्यक्षशरीरशास्त्र	१००००
(३) चीनी परिभाषा	६०० ,,	(८) भौतिक शरीर,,	२००० ,,
(४) आसव-परिभाषा	६०० ,,	(९) तेल परिभाषा	१००० ,,
(५) खनिज तेल ,,	३५० ,,	(१०) काच परिभाषा	२५०० ,,

निम्न परिभाषा-कोश (३२००० शब्द) अगले तीन महीने में प्रेस में जायंगे:—

(११) पशु-पालन	१०००० शब्द	(१४) आहार विज्ञान	५००० शब्द
(१२) औषध विज्ञान	५००० ,,	(१५) दर्शन शास्त्र	६००० ,,
(१३) भूतत्त्व	६००० ,,		

निम्न परिभाषा-कोशों (४४०००) में भी हाथ लग चुका है:—

(१६) औषध मिश्रण (फार्मेसी)	३००००	(१८) मनोविज्ञान	५०००
(१७) प्लास्तिक	४०००	(१९) ललित कला	५०००

ये सब मिलकर एक लाख शब्द होते हैं। इनके अतिरिक्त १६००० शब्दों का 'शासन-शब्दकोश' पिछले साल प्रकाशित हो चुका है।

विद्वानों से विचार-विनिमय करके परिभाषा-निर्माण के लिए यह नियम निर्धारित किये गए हैं:—

(१) प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित शब्दों को कायम रखने का प्रयत्न किया जाय।

(२) हमारे साहित्य में जो विदेशी शब्द आत्मसात् कर लिये गए हैं, उन्हें कायम रखा जाय।

(३) शब्दों के निर्वाचन में सर्वभारतीय दृष्टिकोण रखा जाय।

(४) जनता तक चले गए स्टेशन, रेल, इंजन-जैसे शब्दों को न हटाया जाय।

(५) हमारी आधुनिक भाषाओं में जो शब्द नहीं हैं, उन्हें संस्कृत से बनाया जाय, और शब्द बनाने में निम्न बातों का ध्यान रखा जायः

(क) हमारी भाषाओं में 'तत्सम या तद्भव' के रूप में मौजूद या सुपरिचित संस्कृत शब्दों तथा धातुओं से ही नई परिभाषाएं बनाई जायं।

(ख) संस्कृत या प्रादेशिक पर्यायों में प्रादेशिक को स्वीकार किया जाय, यदि वह कई भाषाओं में पाया जाता है।

(ग) शब्दों के लिए सुखोच्चारण का ध्यान रखा जाय।

(घ) शब्दों के लेने में उनके ऐतिहासिक अर्थ तथा रूढ़ियों की अवहेलना न की जाय।

(ङ) महान् वैज्ञानिकों तथा विचारकों से संबंध रखनेवाले शब्दों को अंतर्राष्ट्रीय रूप में ले लिया जाय।

(च) अंतर्राष्ट्रीय संकेत-चिह्नों को विकल्प के तौर पर स्वीकार किया जाय।

(६) प्रत्येक विषय का परिभाषा-कोश अलग-अलग छापा जाय, जिसमें जल्दी नये संस्करण और परिवर्धन करने में सुविधा हो।

(७) प्रत्येक कोश का प्रूफ आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती और पंजाबी भाषा के विशेषज्ञों के पास उनके सुझाव के लिए भेजा जाय, (पहले दो-एक बार कोश-विभाग के विद्वान् स्वयं प्रांतों में जा विशेषज्ञों से मिलकर परामर्श करें)।

(८) प्रत्येक परिभाषा के लिए जितने प्रतिशब्द प्राप्त होंगे, सबको कोश में छापा जायगा, केवल अधिक प्रांतों में प्रचलित शब्दों का टाइप मोटा कर दिया जायगा।

हमें विज्ञान की (१) चिकित्सा, (२) इंजीनियरी, (३) भूतत्त्व,

(४) नौ-विमान-चालन, (५) प्रायोगिक रसायन, (६) कृषि, (७) शुद्ध विज्ञान, (८) ललित कला, (६) कला तथा, (१०) युद्ध शास्त्र के सौ के करीब विषयों पर उतने ही परिभाषा-कोश तैयार करने हैं। इनमें अभी (१), (२), (३), (५), (६), (८) और (६) में ही हाथ लगा है।

जैसा कि मैंने पहले कहा, यह परिभाषाएं सभी भारतीय भाषाओं के लिए बन रही हैं, इसलिए इनके तैयार होने से हिन्दी ही नहीं, बल्कि साथ ही प्रादेशिक भाषाएं भी उन्नत हो उच्च न्यायालय तथा उच्च शिक्षा के माध्यम का काम बहुत सुगमता से कर सकेंगी। इस प्रकार हमारे देश के वाङ्मय की सब जगह सर्वतोमुखीन प्रगति होगी।

हिन्दी-पत्रों के लिए काम—न्यायालय, शिक्षणालय तथा सरकारी कार्यालयों में ही हिन्दी को बैठा देने से काम नहीं चलेगा। हमें पत्र तथा पत्रकार क्षेत्र में भी हिन्दी को प्रभुत्व दिलाना है। हिन्दी भाषा-भाषी पाठक इच्छा न रहते भी अंग्रेजी पत्रों को पढ़ने के लिए बाध्य होते हैं, क्योंकि हमारे हिन्दी पत्र उतनी पाठ्य-सामग्री नहीं दे पाते। जब तक यह त्रुटि रहेगी, तब तक हिन्दी पत्र अंग्रेजी पत्रों को अपने रास्ते से हटा नहीं सकते। हिन्दी के किसी दुअनियां पत्र को अंग्रेजी के दुअनियां पत्र से मिलाइए, आपको उसमें अंग्रेजी पत्र से चौथाई भी पाठ्य-सामग्री नहीं मिलेगी। अधिक सामग्री देने के लिए हमारे टाइप में थोड़ा-सा सुधार करने की आवश्यकता है। टाइप के रूपों को बिना परिवर्तन किये यदि ऊपर-नीचे की मात्राओं को हम अगल-बगल में रख दें, तो टाइपों की संख्या कम होकर डेढ़ सौ हो जायगी, वह दूसरे अक्षरों पर लटकेंगे नहीं, जिसके कारण टूटेंगे नहीं, साथ ही अपने बल पर अपने स्थान में खड़े होने के कारण उनके अंग्रेजी से भी छोटे टाइप बन सकेंगे। इस सुधार को स्वीकार कर लेने पर १२ प्वाइण्ट के फेस के टाइप को हम ७ प्वाइण्ट जगह घेरने वाला बना सकते हैं, और उतने ही मोटे टाइप में हमारे पत्रों के ६ पृष्ठों में छपने वाली सामग्री

साढ़े तीन पृष्ठों में छापी जा सकेगी, टाइप छोटा करने पर तो अंग्रेजी पत्र से भी दुगुनी सामग्री उनके दूने फेस के टाइप में हम दे सकते हैं। इस तरह का टाइप प्रयाग की कैलाश फौंड्री ने बना भी लिया है, किन्तु उनके आलस्य के कारण उस टाइप में छपी कोई पुस्तक मैं आपको नहीं दिखा सकता। हां, पत्र-स्वामियों को तब अधिक पाठ्य सामग्री देने के लिए सम्पादकीय विभाग को बढ़ाना पड़ेगा, जिससे वेतन-व्यय बढ़ेगा, किन्तु साथ ही तब ग्राहक-संख्या भी तो बढ़ेगी, और इस प्रकार स्वतंत्र देश के लिए लज्जा कर अंग्रेजी पत्र से हमारा पिण्ड छूटेगा।

अब प्रचार नहीं साहित्य-निर्माण हमारा लक्ष्य है। मुझे आशा है, हम अपने लक्ष्य को पूरा करके छोड़ेंगे, और अगले दस वर्षों में दो सौ वर्षों की कमियों को पूरा करेंगे।

जय हिन्दी, जय भारत।

इक्कीसवाँ अध्याय

शिक्षा

युधिष्ठिर—सार्वजनिक शिक्षा देश के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। किसी समय संगीत आदि की भांति पढ़ना-लिखना भी सांस्कृतिक जीवन के लिए एक शोभा की चीज था, अथवा युद्ध या राजनीति-संबंधी विद्या का अध्ययन ही जातीय जीवन के लिए विशेष महत्त्व रखता था, लेकिन आज तो शिक्षा और रोटी की समस्या एक दूसरे से सम्बद्ध है। अधिक अन्न उपजाने, कपड़ा तैयार करने आदि सभी बातों के लिए उपयोगी शिक्षा की हमें आवश्यकता है।

रामी—स्त्री-शिक्षा तो वस्तुत: पहले अलंकार के तौर पर ही आरंभ की गई। जैसे स्त्री के मूल्य बढ़ाने के लिए उसके सौंदर्य को आकर्षक बनाने के हेतु अच्छे वस्त्राभूषण की आवश्यकता है, उसी तरह शिक्षा भी सौंदर्य-वृद्धि का एक अंग मानी गई है। शिक्षित तरुणों ने अशिक्षित लड़की के साथ ब्याह करने से इन्कार कर दिया अथवा ब्याह करने पर त्याग दिया, इससे लड़कियों की शिक्षा की अनिवार्यता होने लगी। लेकिन उस शिक्षा का क्या लाभ, जो स्त्री को वही काम करने के योग्य रखे, जोकि उसके बिना भी वह कर सकती थी।

महीप—शिक्षा की आवश्यकता हरेक नर-नारी के लिए है, अब इस बात को सभी समझने लगे हैं। हमारे स्वतंत्र देश के लिए तो शिक्षा की और भी आवश्यकता है। दुनिया में शिक्षा के लिए सबसे अयोग्य किंतु भारत के लिए सबसे योग्य समझे जाने वाले हमारे शिक्षा-

मंत्री मौलाना आजाद ने केन्द्रीय-शिक्षा-परामर्शक-बोर्ड का सभापतित्व करते हुए (जनवरी १९४९ में) इलाहाबाद में कहा था—"जनतंत्रता के युग में आधारिक (बेसिक) शिक्षा का बंधान बहुत आवश्यक है। बिना शिक्षित मतदाताओं के जनतांत्रिकता अपने अनुरूप कार्य नहीं कर सकती। इसके लिए हमें केवल साक्षरता ही की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वयस्क व्यक्तियों का मानसिक विकास होना भी अपेक्षित है, जिसमें कि वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बातों के संबंध में समझते हुए दिलचस्पी ले सकें।"

खोजीराम—हरेक साक्षर या आरंभिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में सूझ रखने लगेगा, यह आशा बहुत अधिक है। साधारण शिक्षा-प्राप्त भी करोड़पतियों के अज्ञान-प्रसारक पत्रों को पढ़कर और भी भ्रम में पड़ सकते हैं।

महीप—सरकार शिक्षा के बारे में कितना प्रयत्न कर रही है, इसको और अपनी कठिनाइयों को बतलाते हुए शिक्षा-मंत्री ने कहा—"आप लोगों को मालूम है, कि पिछले वर्ष के उत्तरार्ध में देश के सामने जो भारी आर्थिक संकट उपस्थित हुआ, मुद्रास्फीति बढ़ी, चीजों का मूल्य इतना ऊपर-से-ऊपर चढ़ता गया, कि सरकार को जांच करने के लिए आर्थिक समिति नियुक्त करनी पड़ी। समिति ने सभी मंत्रि-विभागों के खर्च को कम करने की सिफारिश की और जोर डाला, कि सभी विकास के प्रोग्रामों को रोक दिया जाय।....अपनी इच्छा के विरुद्ध मैंने भी अपने शिक्षा-संबंधी विकास को मंदा कर दिया।....आर्थिक कठिनाई ने हमारे प्रोग्राम को, देश में शिक्षा-विकास की गति को बहुत-से क्षेत्रों में मंद कर दिया।....मुझे स्मरण है, कि भारत में सभी प्रकार की शिक्षाओं के लिए पर्याप्त बंधान नहीं हैं। दूसरे देशों के शिक्षा के खर्च के आँकड़ों से तुलना करने पर मैं अनुभव करता हूँ, कि हमने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रोग्राम को वस्तुतः अभी आरंभ भी नहीं किया है।....मुझे यह कहते अफसोस होता है, कि पिछले वर्ष हमारे सारे केन्द्रीय बजट के ३१५

करोड़ (रेलवे विभाग को छोड़कर) में ३.८५ करोड़ अर्थात् एक सैकड़ा से भी कम शिक्षा पर खर्च किया गया। इसी वर्ष में प्रांतों के २४७ करोड़ रुपये में केवल साढ़े तीस करोड़ शिक्षा पर खर्च हुआ। इस प्रकार सारे भारत की सरकारी आय का पाँच सैकड़ा ही शिक्षा पर व्यय हुआ।"

खोजीराम—पुलिस और सेना पर कितना व्यय होता है, इसे हम कह आए हैं, और केन्द्रीय सचिवालय में जिस तरह सेक्रेटरियों और लिखनीचंदों की वृद्धि करके अंधाधुन्ध खर्च बढ़ाया गया है, उसे भी हम जानते हैं। अपने उसी व्याख्यान में मौलाना आज़ाद ने बतलाया है, कि इंगलैंड के बजट में ११ सैकड़ा—(२९७५९७९००० पौंड में से २१४८९६००० पौंड) शिक्षा पर खर्च होता है। युक्तराष्ट्र अमेरिका में शिक्षा पर १२०५ करोड़ डालर खर्च होता है। हमारा देश शिक्षा में कितना पिछड़ा हुआ है, और उसका क्या कारण है, यह हम समझ सकते हैं।

महीप—मौलाना ने सामाजिक शिक्षा और बेसिक (आधारिक) शिक्षा की भी चर्चा की है—"राष्ट्रीय सरकार का सबसे प्रथम आवश्यक कर्त्तव्य है, सबके लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य बेसिक शिक्षा देना।.... माननीय ब. ग. खेर की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट दी है। उसके अनुसार सार्वजनिक अनिवार्य बेसिक शिक्षा का प्रसार दो पंचवार्षिक और एक छवार्षिक योजनाओं द्वारा सोलहवें वर्ष में पूरा कराया जा सकता है। पहली पंचवार्षिक योजना ६ से ११ वर्ष वाले बच्चों के अधिकांश भाग को बेसिक-शिक्षा के अन्दर ले आयगी। दूसरी पंचवार्षिक योजना उसी आयु के बाकी बच्चों के लिए अनिवार्य करेगी। इस प्रकार दस वर्ष के अन्त में ६ से ११ साल वाले सारे बच्चे अनिवार्य शिक्षा में सम्मिलित होंगे। छवार्षिक योजना सोलहवें वर्ष के अन्त में १४ साल तक के सारे बच्चों को अनिवार्य शिक्षा में ले आयगी।......समिति ने आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करके सुझाव दिया है कि शिक्षा में तीस सैकड़ा व्यय केन्द्र

को देना चाहिए और बाकी ७० सैकड़ा स्थानीय सरकारी संस्थाओं को।"

रामी—मुझे तो यह कलियुग के अन्त तक पूरी होने वाली योजना मालूम होती है। जब तक आर्थिक संकट है, तब तक न पहली योजना आरम्भ होगी, न दूसरी ही। आर्थिक संकट की कुञ्जी या तो अल्लामियाँ के पास है या अमेरिका के पास। यदि कुञ्जी आ जाती, तो शायद १६६५-६६ तक कुछ काम बनता। यह बेसिक-शिक्षा का रहस्यवाद है, जो न जाने किसके भरमाने के लिए तैयार की गई है।

महीप—मौलाना बेसिक (आधारिक) शिक्षा की भी बात करते हैं और सामाजिक की भी। वह कहते हैं—"यह आपको सूचित करते वक्त मुझे प्रसन्नता हो रही है, कि दिल्ली-प्रान्त में (प्राय ३०० गाँवों में) बेसिक और सामाजिक दोनों तरह की शिक्षा का प्रोग्राम आरम्भ किया गया है।......जल्दी-से-जल्दी प्रोग्राम को कार्यरूप में परिणत करने के ख्याल से मैं इसके बोर्ड की प्राय: सभी बैठकों में उपस्थित रहा हूँ। ट्रेनिंग-प्राप्त काफी शिक्षकों के पाने में कठिनाई न हो, इसके लिए दिल्ली की जामिया-मिलिया में थोड़े समय की कक्षाएं खोल के पश्चिमी पंजाब के ट्रेनिंग-प्राप्त शरणार्थी शिक्षकों को तैयार किया गया।.......१ जुलाई १९४८ से पहले ४७ स्कूल खोले गए, नवम्बर १९४८ के उत्तरार्ध से ५० दूसरे स्कूल भी आरम्भ कर दिये गए। १ अप्रैल १९४९ से ५० तीसरे स्कूल आरम्भ होंगे और आशा है, कि १९४९-५० के आर्थिक वर्ष के अन्त तक सारे दिल्ली प्रान्त में बेसिक-स्कूल छा जायंगे।" इस प्रयत्न की प्रशंसा करनी चाहिए। लेकिन मौलाना इस बेसिक शिक्षा के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं—"बेसिक और सामाजिक शिक्षा के प्रोग्राम में ग्रामीणों की तुरन्त दिलचस्पी और उपयोगिता के लिए यह निश्चय किया गया है, कि ये ग्रामीण स्कूल ग्रामीण बच्चों के पठन-स्थान-मात्र ही न हों, बल्कि ग्राम के सामाजिक जीवन के केन्द्र भी हों। वह बच्चों, अल्प-वयस्कों और वयस्कों को शिक्षा देने के साथ-साथ मनोरंजन और खेल के स्थान का भी काम

देंगे। यह भी किया तै गया है, कि उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने, संगठित खेलों और मनोरंजनों द्वारा सामूहिक और सामाजिक चेतना बढ़ाने के लिए ग्रामीणों को किसी शिल्प की व्यावहारिक शिक्षा दी जाय। हमने स्वास्थ्य, श्रम, सूचना-ब्राडकास्ट और कृषि-मन्त्रि-विभागों की भी सहायता लेके एक पंचमेल पाठ्यक्रम तैयार किया है, जोकि क्रमशः इन स्कूलों में लागू किया जायगा।"

भगवानदास—शिक्षा में तो सचमुच ही बहुत व्यापक दृष्टि रखी गई है।

महीप—हाँ, यह शिक्षा की बड़ी योजना कम-से-कम वर्तमान मंत्रि-मंडल के जीवन में नहीं आरम्भ होगी, और जो अनेकों भांति की बातें यहाँ पेश की गई हैं, उनको तो ऐसी ही भरतू बातें समझ लीजिए। हाँ, यदि १९५०-१९६० तक दिल्ली के २०० के करीब गांवों के सभी बच्चे साक्षर हो जायं, तो बहुत सन्तोष की बात होगी। मौलाना ने विश्वविद्यालय की शिक्षा पर भी अपने भाषण में कहा है, लेकिन उनका मन अधिकतर बेसिक-शिक्षा में रमता है। वह कहते हैं - "मैंने आप लोगों से इतनी देर तक बेसिक और सामाजिक शिक्षा के बारे में कहा। विश्वविद्यालय-शिक्षा भी देश की भावी प्रगति के लिए उतनी ही महत्त्व रखती है। हाल के विश्व-युद्ध ने उच्चशिक्षा के उद्देश्य और लक्ष्य के सम्बन्ध में दुनिया के प्रत्येक देश में नये प्रश्न खड़े कर दिये हैं। ऐसी जांच सद्यःप्राप्त हमारी स्वतन्त्रता के कारण और भी अधिक महत्त्व रखती है। तो भी आज इस प्रश्न पर मैं कुछ भी विचार नहीं करूँगा, क्योंकि उच्चशिक्षा के हरेक अंग की समस्याओं की जाँच करने के लिए कमीशन नियुक्त किया जा चुका है।........सेडलर कमीशन विशेषतः एक विश्वविद्यालय (कलकत्ता) तक सीमित था, लेकिन यह कमीशन भारतीय विश्वविद्यालयों तथा अध्ययन और अनुसंधान की दूसरी उच्चशिक्षा-संस्थाओं के सारे ढाँचे की जाँच के काम में लगाया गया है। मुझे बड़ी खुशी है, कि हमें प्रोफेसर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्-जैसा

महान् शिक्षा-शास्त्री कमीशन के अध्यक्ष-पद के लिए मिला है। उन्हें भारत और विदेश के योग्य सहायक मिले हैं। यह और भी खुशी की बात है, कि इंगलैंड और युक्तराष्ट्र अमेरिका के यशस्वी शिक्षा-धुरंधरों ने इस काम के लिए अपनी सेवाएं अर्पित की हैं।"

खोजीराम—तो इस कमीशन में अवश्य बहुत-सी बातें मालूम होंगी, और देश के लिए तो शिक्षा-समस्या हल ही हो जायगी।

महीप—शिक्षा-समस्या हल करने के लिए कमीशन बैठाया गया है या किसी और काम के लिए, यह नहीं कहा जा सकता। हमारी शिक्षा की समस्या चाहे कालेज की हो या स्कूल की, उत्पादन से सम्बन्ध रखती है। कृषि के यंत्रीकरण और देश के उद्योग-प्रधान बनाने तथा दोनों के विकास में संतुलन रखने में जो शिक्षा उपयोगी हो सकती है, वही हमारी सबसे पहली आवश्यकता है। इस कमीशन में शायद कोई भी ऐसा आदमी नहीं है, जिसे इस दृष्टि से समस्या को देखने का तजर्बा है। कमीशन भारत के बड़े-बड़े शिक्षा-केन्द्रों में गया और वहां के अपने जैसे लोगों से मिला। कुछ शिक्षण-संस्थाओं की रिपोर्ट भी लीं। कुछ बातें सवाल-जवाब से भी मालूम कीं। अंग्रेजी में ठाठ के साथ एक रिपोर्ट छापी जा रही है, लेकिन तो भी हम वहां-के-वहां ही हैं।

रामी—मैं तो शिक्षा का ही काम कर रही हूं, लेकिन जो हमारे शिक्षा-विशेषज्ञ हैं, उनके देखने से तो मुझे कोई आशा नहीं होती। उनके दिमाग में शिक्षा के लिए सबसे पहली जो जरूरी बात आती है, वह है, खर्च बढ़ा-चढ़ाके कुछ प्रदर्शन उपस्थित कर देना, जिसमें उनके ऊपर के सज्जन आकर वाह-वाह कर दें।

महीप—और यदि खर्च न पूरा पड़ता हो तो, 'हम परिमाण नहीं गुण चाहते हैं', कहके फोटो खींचने और सूचना-विभाग के फिल्म दिखाने के लिए दस-पांच स्कूल इधर-उधर खोल दिये जायं। न जाने किसको धोखा देने के लिए यह आयोजन होता है।

भगवानदास—हमारे शिक्षामंत्री ने शिक्षा के माध्यम के बारे में क्या कहा ?

महीप—मौलाना ने कहा—"आप लोगों ने जो सिफारिश की थी, उसे भारत-सरकार ने स्वीकार कर लिया; कि प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में हो। सभी प्रांतों ने इस सिद्धान्त को मान लिया। लेकिन मैं समझता हूँ, आप लोग यह मानेंगे, यह साधारण नियम रखा गया है। उस सिद्धांत के विशेष विवरण तथा व्यावहारिक रूप से कठिनाई उपस्थित हुई है। जहाँ विद्यार्थी की मातृभाषा राज की भी भाषा है, वहाँ कोई कठिनाई नहीं है, किंतु जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ कई बातें उठ खड़ी होती हैं। यह साफ तौर से नहीं बतलाया गया, कि किस कक्षा में राज की भाषा द्वितीय भाषा के तौर पर आरंभ की जाय। यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था, कि कब स्कूल की शिक्षा के माध्यम के तौर पर मातृभाषा का स्थान राजभाषा ले लेगी।" शिक्षा के माध्यम के बारे में परामर्शक-बोर्ड की बैठक में निश्चित हुआ कि प्रारंभिक कक्षाओं में मातृभाषा को स्थान मिले। परामर्शदाताओं को साधुवाद देना चाहिए। प्रारंभिक ४ वर्षों के लिए मातृभाषा का उपयोग स्वीकार करना उन बूढ़ों के लिए भी छोटा काम न था। छोटे-छोटे पाकेटों को छोड़कर हिन्दी, आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तामिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी, पहाड़ी यही मातृभाषाएँ हैं। इनकी कुछ उपभाषाएं भी ऐसी हैं, जिन्हें प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम बनाने में दिक्कत नहीं है। राजभाषा का प्रश्न हमारे देश के लिए ही नया नहीं है, बल्कि दूसरे देशों में भी इसका हल निकाला गया है। हमारे देश में तो राजभाषा का निश्चय प्रांतों ने अपने-अपने क्षेत्रों में कर लिया है। राजभाषा और मातृभाषा जहाँ एक नहीं है, वहाँ रास्ता हमारे शिक्षाविभाग को बीहड़ मालूम होता है, किंतु दिल्ली में बैठकर सच ही बीहड़ मालूम हो, स्थान पर जाने में कोई बीहड़ नहीं मालूम होता। हिमाचल का एक छोर तिब्बत से मिलता है, जहाँ एक दर्जन से अधिक

गाँव तिब्बती भाषा-भाषी है। हिमाचल प्रदेश की राजभाषा हिन्दी घोषित है। तिब्बती भाषा-भाषी स्पू या हङ्गो गाँव के लिए प्रारंभिक शिक्षा के लिए क्या कठिनाई है? उनको अपनी मातृभाषा में पढ़ाइये। तीसरी या चौथी कक्षा अथवा ९-१० वर्ष की अवस्था को अनिवार्य द्वितीय भाषा के लिए उपयुक्त सभी जानते हैं, उस वक्त हिंदी को दूसरी भाषा बना दीजिये। प्राइमरी शिक्षा से ऊपर जाने वाले उत्तरी भारत के किसी कोने में भी तीन साल में कामचलाऊ ज्ञान कर लेंगे। भरसक कोशिश कीजिये कि मातृभाषा में आगे की पुस्तकें भी तैयार हो जायं, जिससे हाईस्कूल तक लड़के अपनी मातृभाषा से आगे बढ़ें। यदि विद्यार्थियों की संख्या कम है, जैसे वह ऊपरी सतलज के इन गाँवों के लड़कों को चिनी में जाने पर होगी, ऐसी अवस्था में लड़के आपस के संपर्क से जल्दी हिन्दी सीख जाते हैं। यही अवस्था भारत के किसी भी कोने की होगी। लेकिन मौलाना शिक्षा के माध्यम में मातृभाषा तक ही जाते हैं। भारत के कितने ही राज्य-क्षेत्रों की राजभाषा हिन्दी घोषित हो गई है, किंतु आज़ाद उसका नाम भी अपनी जीभ पर लाना नहीं चाहते।

भगवानदास—क्या जाने पाप लग जाय।

महीप—मौलाना बेचारे जबर्दस्ती इस गद्दी पर बैठाये गए हैं। अरबी के मदरसे का मौलवी होने योग्य व्यक्ति को ३४ करोड़ की शिक्षा का हर्ता-कर्ता बना दिया गया है, यह भारत में ही संभव हो सकता है। या तो हमारे सरताज शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझे या फिर कोई और कारण ढूंढ़ना पड़ेगा, नहीं तो मौलाना को प्रांतों के गवर्नरों की इतनी गद्दियां खाली हो रही हैं, उनमें से किसी पर बैठा दिया जाता। मैं समझता हूँ, लखनऊ की गद्दी उनके लिए बड़ी अनुकूल होती। लेकिन भाग्य को क्या किया जाय? तो भी मौलाना क्षमा के पात्र हैं।

युधिष्ठिर—अब ज़रा रसायन परिषद् के जुबली-महोत्सव के

अध्यक्ष प्रो० प० राय की राय शिक्षा के माध्यम के बारे में सुनकर दुनिया के किसी भी देश का आदमी आश्चर्य-चकित और खिन्न हुए बिना नहीं रहेगा, और संस्कृत का श्लोक 'शास्त्राण्यधीत्यापि' याद आयगा। राय महाशय ने वर्तमान काल की जबर्दस्त समस्या—शिक्षा के माध्यम पर अपने भाषण में काफी कहा है—"एक शताब्दी से कुछ कम ही हुआ, जब भारतीय कालेजों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से साइंस की पढ़ाई आरंभ हुई। कहा जा सकता है, अंग्रेजी का उपयोग जबर्दस्ती लादा गया; किंतु और दूसरा चारा क्या था? केवल वैज्ञानिक शब्दावली और परिभाषा की कमी ही कारण नहीं थी, बल्कि भारत की कोई सार्वत्रिक भाषा नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप विज्ञान का ज्ञान अब तक कालेज या विश्वविद्यालय के शिक्षित वर्ग के बहुत ही थोड़े भाग तक सीमित रहा। विज्ञान देश की जनता के दिमाग तक पहुँचने में सफल नहीं हुआ। लेकिन दूसरी ओर अंग्रेजी के द्वारा साइंस की शिक्षा से यह फायदा हुआ, कि वह सारे भारतव्यापी होके विकसित हुआ।....भारतीय विचार धारा के नेताओं ने अंग्रेजी शिक्षा के हितकारी प्रभाव को मानने से इन्कार नहीं किया, जिसमें कि इस जन-बहुल महाद्वीप के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों के शिक्षितवर्ग के भीतर राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता संपादित की—"

भगवानदास—सांस्कृतिक एकता भी हमारे देश में अंग्रेजों ही की देन है, क्यों?

महीप—डाक्टर राय जो कह रहे हैं। उनका कहना ठीक भी है, क्योंकि जान पड़ता है, अंग्रेजी द्वारा प्राप्त संस्कृति के अतिरिक्त किसी और संस्कृति से वह परिचित नहीं हैं। शायद अंग्रेजी की सहायता बिना जिन देशों ने ज्ञान-विज्ञान सीखा, वह सब संस्कृतहीन रहे—जापान, रूस का उदाहरण दिया जा सकता है, जिन्होंने अपनी भाषा द्वारा शिक्षा पाई। मैं तो कहता हूं, यह औंधी खोपड़ियां कभी किसी चीज को ठीक से समझ नहीं सकतीं। इन पर अंग्रेजों की छाप इतनी अधिक

परिभाषा-निर्माण में कितने ही साधारण नियमों का निर्णय अखिल भारतीय विशेषज्ञों की परिषद् कर दे। इसे सभी प्रान्तों के महान् विद्वान् चार-पाँच दिनों में निर्धारित कर सकते हैं। कहीं नौ मन तेल की शर्त राधा के नाचने के लिए नहीं है, हिन्दुस्तान ही अकेला ऐसा देश नहीं है, जापान को भी यह करना पड़ा था; उसने तो शुरू में भी इस तरह निराशा नहीं प्रगट की। हां, जापान को लाभ था, कि वह प्रो० राम और उनके साथियों की तरह अंग्रेजी चश्मे से ज्ञान-विज्ञान को नहीं देखता था। जापान के विद्यार्थी साइंस पढ़ने फ्रांस भी गये, जर्मनी भी गये, इङ्गलैंड-अमेरिका भी गये। लेकिन लौटकर फ्रेंच, जर्मन या अंग्रेजी में अपने विद्यार्थियों को शिक्षा नहीं दी। राय महाशय आठ-दस वर्ष की बात कर रहे हैं। तब भी अगर ये लोग जिन्दा रहे, तो तेली के कोल्हू की तरह जहाँ-के-तहाँ रहेंगे।

भगवानदास—कहते हैं ये लोग हमें कूपमंडूक, लेकिन ये भी अंग्रेजी कूपमंडूकता में नाक तक डूबे हैं।

युधिष्ठिर—आगे राय महाशय कहते हैं—"इस नई व्यवस्था के अनुसार सभी प्रांतों में उनके स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों में राष्ट्र-भाषा की शिक्षा अनिवार्य कर देनी पड़ेगी; किन्तु बहुत-से अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में, विशेषकर दक्षिण भारत में हिन्दी को अंग्रेजी की भाँति ही विदेशी विषय समझा जाता है। जहाँ तक कम-से-कम इन प्रदेशों का सम्बन्ध है, अंग्रेजी की जगह पर हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना देने पर विदेशी भाषा सीखने में जो श्रम और समय का अपव्यय होगा, उसे कम नहीं किया जा सकता।"

महीप—देह में आग लग गई है युधिष्ठिर भाई, और केवल आपके संकोच से कठोर शब्द नहीं बोल रहा हूँ। दक्षिण भारत में तेलगू, कन्नड, मलयालम तीन भाषाएं ऐसी हैं, जिनमें प्रतिशत जितने शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं, उतने न बंगला में हैं न हिन्दी में। परिभाषाएं ६६ प्रतिशत से भी अधिक सरल संस्कृत से बनेंगी और यह प्रोफेसर

कहते हैं, कि उनके सीखने में उतना ही समय लगेगा, जितना अंग्रेजी में लगता है।

खोजीराम—शिक्षा के माध्यम के लिए बंगाल, उड़ीसा, आंध्र या कर्नाटक में हिंदी की क्या आवश्यकता है, केवल परिभाषाएं एक तरह की बनानी हैं। कालेजों, विश्वविद्यालयों में वहां की भाषा में शिक्षा होनी चाहिए। इसमें कितना समय बचेगा, और अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार होने पर कालेज और विश्वविद्यालय से वञ्चित कितने ही लोग साइंस का ज्ञान प्राप्त करेंगे, इसकी तरफ इनको कुछ भी ख्याल नहीं है।

युधिष्ठिर—अभी ही महीप, देह में आग लगने की बात खतम नहीं हुई, और सुनो—"अहिंदी भाषा-भाषी प्रांतों की बहुसंख्यक जनता के लिए सभी बातों में राष्ट्रभाषा अंग्रेजी की भांति अजनबी भाषा रहेगी। लोग अपनी प्रांतीय भाषा छोड़कर किसी नई भाषा के पढ़ने का प्रयत्न नहीं करेंगे। क्योंकि उसके प्रयोग का उन्हें कम समय मिलेगा।

महीप—इसे कहते हैं "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी।" जहां तक साइंस और दूसरे प्रकार के ज्ञान का संबंध है, कोई हरज नहीं है, यदि लोग अपनी प्रांतीय भाषा छोड़ दूसरी भाषा न पढ़ें। किंतु उस भाषा को उस योग्य तो बना दें, कि सारा ज्ञान-विज्ञान उसमें लिखा जा सके। ऐसी योग्यता लाने के लिए वह पारिभाषिक शब्दावली लेनी होगी, जो कि सारे भारत की भाषाओं में एक-सी हो। राय महाशय को मालूम नहीं है, कि वैज्ञानिक तथा दूसरे विषयों के चार लाख शब्दों में साढ़े तीन लाख से अधिक सारे भारत की भाषाओं में एक समान होंगे। बाकी ५० हजार में भी दर्शनादि की भाषा को लेते तीन-चौथाई से अधिक तत्सम और तद्भव एक-से शब्द मिलेंगे। क्या अंग्रेजी भी इतनी ही नजदीक है? राष्ट्रभाषा का जहां तक संबंध है, अखिल भारतीय कार्य के लिए उसकी आवश्यकता होगी। आज भी मद्रास, काञ्ची और रामेश्वरम् के लोगों को घर बैठे हिन्दी सुनने-बोलने का मौका

मिलता है। राष्ट्रभाषा घोषित न होने पर भी केवल आंध्र में लाखों स्त्री-पुरुषों ने हिन्दी को पढ़ा है। यदि राय महाशय हिंदी के विरुद्ध हैं, तो अच्छी बात है, वह बंगला ही को राष्ट्रभाषा बनाएं। बंगला में भी संस्कृत के उसी परिमाण में अखिल भारतीय शब्द मिलेंगे। यदि स्वतंत्र देश के आत्म-गौरव का ख्याल है, तो कुतर्कों द्वारा अंग्रेजी को सिर पर बैठाये रखने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

युधिष्ठिर—आगे प्रो० राय ने कहा है—"इन परिस्थितियों में मालूम होता है, साइंस के अध्ययन में अंग्रेजी की जगह हिन्दी या हिन्दुस्तानी रखने पर कोई वास्तविक लाभ नहीं होगा, बल्कि यह बिलकुल संभव है, कि इसके कारण हमारी प्रगति में भारी बाधा हो। और भी अंग्रेजी तो हर हालत में हमें स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में अनिवार्य द्वितीय भाषा रखनी होगी; यदि दुनिया की वैज्ञानिक प्रगति के ज्ञान से अपने को अलग नहीं रखना चाहते। हमें वैज्ञानिक साहित्य और पत्रिकाओं के देखने के लिए अंग्रेजी पर निर्भर रहना पड़ेगा, हमें अपनी वैज्ञानिक परिषदों की मुख्य पत्रिकाओं को अंग्रेजी में प्रकाशित करना ही होगा, यदि यूरोप और अमेरिका की उसी तरह की परिषदों के साथ अपने विनिमय का सम्बन्ध हम अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं, और यदि हम चाहते हैं, कि हमारे प्रकाशन को उनके विषय-संक्षेपों में उचित स्थान मिले। वस्तुतः यदि हमारे पाठ्यक्रम से अंग्रेजी को हटा दिया जाय, तो वैज्ञानिक ज्ञान के प्राप्त करने का एक अत्यन्त आवश्यक साधन—विचारों का विनिमय और मानसिक संपर्क—खतम हो जायगा। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं, जिनकी हम बिलकुल उपेक्षा नहीं कर सकते, यदि हम यह नहीं चाहते कि अभिमान और पक्षपात के कारण हमारे राष्ट्रीय कल्याण और राष्ट्रीय प्रगति रुक जायं।" अब कहो महीप ?

महीप—इस आदमी को मालूम नहीं है, दुनिया में रूस भी एक देश है, जहाँ के वैज्ञानिकों में मुश्किल से कोई अंग्रेजी बोल सकता हो।

उनके ग्रन्थ और पत्रिकाएं अपनी ही भाषा में छपती हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के पैदा करने में वह किसी देश से पीछे नहीं है। वहां क्यों नहीं अभिमान पक्षपात के कारण राष्ट्रीय-प्रगति खतम हो गई ?

युधिष्ठिर—अच्छा प्रो० राय की और भी कुछ गम्भीर बातें सुन लीजिए—"भारत ने अभी ही वैज्ञानिक जगत में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। उसे अपनी शिक्षा-व्यवस्था में कोई भी ऐसा जल्दी का तजर्बा नहीं करना चाहिए, जो कि उसके वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं के कार्य में बाधक हो। हमारा वर्तमान वैज्ञानिक शिक्षा-क्रम प्रायः तीन-चौथाई सदी से चल रहा है। कोई उग्र परिवर्तन या रूपान्तर इसमें ऐसा नहीं किया जा सकता, जिससे कि उसकी प्रगति रुक जाय।........ हमारे लिए यह निश्चय ही बड़े लाभ की बात होगी, कि अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिभाषाओं और नामों को बिना बदले कायम रखें, तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों के प्रकाशन तथा 'अखिल भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं में बहस करने के लिए अंग्रेजी के माध्यम का उपयोग जारी रखें।.......चाहे जो भी हो, अध्यापकों को भाषा के चुनने में स्वतन्त्रता होनी चाहिए, और शिक्षण-योग्यता में हानि पहुंचाने के लिए कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए। यह भी बतला देना है, कि दुनिया के वैज्ञानिक प्रकाशन आधी शताब्दी से ऊपर से अंग्रेजी में निकल रहे हैं, और बहुत-से यूरोपीय देशों में अपने वैज्ञानिक परिणामों को अंग्रेजी में प्रकाशित करने का रुझान बढ़ रहा है।" आप लोगों ने देखा न कि राय साहब यह सोचने की तकलीफ गवारा नहीं करते, कि एक रूसी या जापानी उनकी इस बात को सुनकर हमारे प्रोफेसर के प्रति कोई अच्छी धारणा नहीं रखेगा। एक जर्मन उनकी बात को अपने लिए अपमान की बात समझेगा, फ्रेंच भी यही कहेगा, कि ऐसी बात एक हिन्दुस्तान का प्रोफेसर ही कह सकता है। उच्च शिक्षा और भाषा के माध्यम तथा साहित्य के बारे में एक विदेशी मित्र ने हमारे एक प्रमुख मन्त्री के साथ बात करते वक्त यही दलीलें सुनीं और उनको इस बात

का बहुत खेद हुआ, कि भारतीय शिक्षित अब भी अपनी कूपमंडूकता से बाहर आना नहीं चाहते। जो दलीलें प्रो० राय ने दी हैं, और जिन हानियों की भविष्यद्वाणी की है, उनके अनुसार तो साइंस के सम्बन्धों में फ्रांसीसियों, जर्मनों और रूसियों को अफ्रीका के हब्शियों की तरह होना चाहिए। रही विदेशी भाषा पढ़ने की बात, सो अंग्रेजी ही क्यों? हमारे साइंस के अनुसन्धान-कर्ताओं को यूरोप की चार भाषाओं में कम-से-कम तीन का इतना ज्ञान होना चाहिए, कि उनमें वे निकलती अनुसन्धान-पत्रिकाओं को समझ सकें। राय महाशय अध्यापकों को भाषा की स्वच्छन्दता प्रदान करना चाहते हैं, लेकिन उनको पता नहीं है, १९४८ से दो-तीन बरस पहले मैट्रिक पास करके यूनिवर्सिटी में पहुँचे लड़के मुश्किल से अपने अध्यापक के अंग्रेजी-व्याख्यानों को समझ पाते हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय के दर्शन के प्रोफेसर को यह दिक्कत इतनी आई, कि अन्त में उन्हें हिन्दी माध्यम को स्वीकार करना पड़ा। पाँच बरस और बीतने पर अंग्रेजी के ज्ञान का तल और भी नीचे चला जायगा। राय महाशय अपने अध्यापक-बन्धुओं के लिए स्वतन्त्रता चाहते हैं, चाहे विद्यार्थी चूल्हे-भाड़ में जायं। कोई निश्चय नहीं है, कि जो अंग्रेजी में अपने विचार को प्रकट कर सकता है, वह अपने विषय का अच्छा जानकार भी हो। जो अपने विषय का जानकार है, उसके लिए अनिवार्य नहीं, कि अंग्रेजी में अपने विचारों को ठीक से प्रकट कर सके। राय की तरह भारत में अब भी बहुत-सी ऐसी खोपड़ियां है, जो अपनी कूपमंडूकता, अतीतकाल की दास-मनोवृत्ति, भविष्य के प्रति दायित्वहीनता, देश में सार्वत्रिक विज्ञान-प्रचार की आवश्यकता को न समझते हुए अपनी बातें दुहराए जाते हैं। इससे यह भी पता लगता है, कि हमारी दूसरी समस्याओं को जिस तरह पकड़ के रख छोड़ने की कोशिश की जाती है, वैसी ही शिक्षा और विज्ञान के विषय में भी चेष्टा हो रहा है।

बाईसवाँ अध्याय

बृहत्तर हिमाचल

युधिष्ठिर ने कहा—प्रान्तों के अस्तित्व को स्वीकार करने में हमारे यहां दूरदर्शिता से काम नहीं लिया जा रहा है। जब कोई प्रान्त अपने कटे हिस्सों को मिलाने या अंग्रेजों द्वारा ज़बरदस्ती दूसरों के साथ मिले-जुड़े होने पर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की माँग करता है, तो इसे संकीर्ण प्रान्तीयता कहकर दबा देने की कोशिश की जाती है। प्रान्तों के स्वतंत्र अस्तित्व को मान लेने पर भारत की एकता छिन्न-भिन्न हो जायगी, यह बड़ी ग़लत धारणा है। मध्यप्रान्त, हैदराबाद और बम्बई में बँटा महाराष्ट्र यदि एक हो जाय, तो इससे भारत की एकता पर कहाँ आघात लगता है? इसी तरह हैदराबाद, मैसूर, बम्बई और मद्रास के चार प्रान्तों में बँटा कर्नाटक एक हो जाय, तो इससे कहाँ हमारा देश छिन्न-भिन्न हो रहा है? हमें भाषा के अनुसार प्रान्तों की इकाई अन्त में माननी पड़ेगी। एक भाषा-भाषी जनता को एक प्रान्त के रूप में संघटित करके जो हम उसकी शक्ति को बढ़ा देते हैं, वह हमारे सारे देश की अपनी शक्ति है। प्रान्तों की इकाई को छिन्न-भिन्न करके ही हम वस्तुतः प्रान्तीय संकीर्णता का बीज बोते हैं।

रामी—हिमाचल के बारे में आप क्या समझते हैं?

युधिष्ठिर—हिमाचल की समस्या को और गहराई में उतरकर देखने की आवश्यकता है। प्रान्तों के निर्माण की समस्या में हिमाचल को भी सम्मिलित करना है। अभी इस ओर हमारा ध्यान नहीं

गया है। हिमाचल का छिन्न-भिन्न होना, उसके अधिकांश भाग का शिक्षा और राजनीति में पिछड़ा होना भी इस उदासीनता का कारण है। तो भी शिमला से तिब्बत की सीमा तक के दस लाख की आबादी वाले भूभाग को हिमाचल-प्रदेश का रूप देना बतलाता है, कि चाहे अनजाने ही सही, स्वतंत्र हिमाचल-प्रदेश की नींव पड़ गई है। हिमाचल-प्रदेश सिर्फ शिमला की ३०-३१ रियासतों तक ही सीमित नहीं है। वह जम्मू से आसाम की सीमा तक फैला हुआ है।

और उसका क्षेत्रफल और जनसंख्या (१९३१ ई०) हैं—

	जनसंख्या (हजार)	क्षेत्रफल (वर्गमील)
शिमला की रियासतें	३३१	४९६०
पंजाब की ,,	४३८	५२९२
पंजाब के जिले—		
कांगड़ा	८०१	६८५८
गुरदासपुर[1] (हिमालय)	६१	२३०
होशियारपुर[2] (,,)	१२९	५४४
युक्तप्रदेश के जिले—		
अलमोड़ा	५८३	५३८९
गढ़वाल	५३४	५६१२
नैनीताल	२७७	२७२१
टेहरी गढ़वाल	३५०	४१८०
नेपाल	५६००	५४०००
सिक्किम	११०	२८१८
दार्जिलिंग	३२०	१२१२
भूटान	३००	१८००
	९८३४,०००	९८६१६

१. गुरदासपुर जिले का पाकिस्तान-विभाजन से पहले क्षेत्रफल का आठवां और २. जनसंख्या का १९ वां भाग हिमालय में था।

सिर्फ़ हिमाचल पर्वत के कारण मैं यह नहीं कह रहा हूँ ! इस सारे प्रदेश में एक तरह की संस्कृति, एक तरह का इतिहास और लोगों के जीवन में एक-सी बहुतेरी बातें मिलती हैं। जातियाँ-उपजातियाँ और भाषाएं अधिक बतलाई जाती हैं ; लेकिन सबका समावेश सिर्फ दो भाषाओं और दो जातियों में हो जाता है—खस (खश) और भोट। उत्तर में भोट (तिब्बत) से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण हमारी उत्तरी सीमा के सदा हिमाच्छादित डाँडों से निकलकर भारत की ओर आने-वाली नदियों के ऊपरी भाग में सभी जगह भोट-भाषा-भाषी गाँव मिलते हैं, और बाकी स्थानों में खस-जाति बसती है। यह सुनकर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। आसाम के पास तक फैले हुए गोरखा लोगों की भाषा को खसकुरा (खस-भाषा) कहा जाता है। कुमायूँ-टेहरी शिमला-काँगड़ा-मण्डी-चम्बा—सभी इलाकों में बसनेवाली जातियाँ अभी कुछ समय पहले तक और बहुत जगह आज भी खस या खशिया कहके पुकारी जाती हैं। सारा हिमाचल इन्हीं भोट और खस जातियों से बसा है। (कनौरों और नेवारों में भी यह तत्त्व अधिक हैं,) भोट-भाषा-भाषी यहां पांच-ही-सात सैकड़े होंगे ; किन्तु बृहत्तर हिमाचल-प्रदेश में भोट-भाषा-भाषियों को समुचित स्थान देना होगा। कोई-कोई इलाके, जैसे स्पिती, लाहुल, ऐसे भी हैं, जहां तिब्बती भाषा ही मुख्य भाषा है। तिब्बती भाषा बहुत समृद्ध भाषा है। वह संस्कृत की भांति सभी तरह के विचारों को व्यक्त करने की क्षमता रखती है। अस्तु, तिब्बती भाषा की अवहेलना नहीं की जा सकती। उसके बाद जो भाषा इस बृहत्तर हिमाचल-प्रदेश में बोली जाती है, वह बृहत्तर खस (खश) भाषा है, जिसकी स्थानीय भाषाओं में आपस में बहुत कम अन्तर है। गोरखा, अल्मोड़ा-नैनीताल-गढ़वाल-टेहरी (कूर्माचली)-भाषा, बुशहर, कांगड़ा आदि की बोलियों में बहुत-थोड़ा अन्तर है। ये सभी खस-भाषा की बोलियाँ हैं।

खोजीराम—हिमाचल की एकता सिद्ध है।

युधिष्ठिर—भाषा और भौगोलिक एकता के अतिरिक्त बृहत्तर हिमाचल की सांस्कृतिक एकता भी है। खसों के संगीत-नृत्य, उनकी स्त्रियों में स्वतंत्रता का अधिक सम्मान, भोजन-छाजन में भी बहुत हद तक उन्मुक्तता, उनका परिश्रमी स्वभाव और सैनिक मर्दानगी, जीवन और धन के प्रति उदारता तथा बेफिक्री—यह सभी चीज़ें सारे हिमाचल की सन्तानों में एक-सी पाई जाती हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि परिश्रम और निर्भयता में हिमाचलवासी अद्वितीय हैं।

भगवानदास—हिमाचल की प्राकृतिक संपत्ति अकूत है।

युधिष्ठिर—हिमाचल अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति—कृषि, खनिज, जंगल की उपज—सभी स्थानों में एक-सी रखता है। यहाँ की कृषि को बहुत विकसित नहीं कहा जा सकता, किन्तु भारत के दूसरे भागों से यह पिछड़ा भी नहीं है। हिमालय के नर-नारियों ने खून-पसीना एक करके दुरारोह पर्वतमालाओं के डाँडों तक को खेतों की सीढ़ियों से सजा दिया है। जनसंख्या की वृद्धि के अनुसार खेतों को बढ़ाया गया और जंगलों के महत्त्व को न समझकर अदूरदर्शिता से काम लिया गया है; किन्तु इसके लिए सिर्फ उन्हीं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। पुराने शासकों ने लोगों की शिक्षा की ओर ध्यान ही कहाँ दिया था? हिमाचल के जंगलों में देवदार-जैसी श्रेष्ठ लकड़ी है। अंग्रेज-सरकार ने बहुत पीछे ही सही, इसकी ओर थोड़ा-बहुत ध्यान दिया; लेकिन लकड़ी को छोड़ जंगल की उपज से देश को समृद्ध बनाने की कोशिश नहीं की।

रामी—फलों की तो हिमाचल खान है।

युधिष्ठिर—हिमाचल में फलों के लिए बड़ी संभावना है, किन्तु उसकी पैदावार बढ़ाने के लिए कभी उचित ध्यान नहीं दिया गया। कुलू-कोटगढ़ के सेबों तथा सिक्कम की नारंगियों का श्रेय सरकार को नहीं, बल्कि कुछ निजी तौर से प्रयत्नशील व्यक्तियों को देना होगा। मेवों का स्रोत पेशावर, बलूचिस्तान अब हमारे देश में नहीं है; लेकिन

वहां के सारे मेवों को और पहले से अधिक मात्रा में हमें हिमाचल का एक खंड—किन्नर देश (ऊपरी सतलज-उपत्यका)—दे सकता है। सारा हिमाचल तो प्रयत्न करने पर कुछ ही वर्षों में सारे भारत को सेब, नासपाती, नारंगी, आड़ू, आलूचा आदि से पाट सकता है।

रामी—और श्वेत इंधन।

युधिष्ठिर—हिमाचल की सबसे बड़ी सम्पत्ति है बिजली और खनिज पदार्थ; इन्हें तो अभी छुआ तक नहीं गया है। इनके स्रोतों और आंकड़ों को अभी हम जमा नहीं कर पाए हैं। हिमाचल अपने उदर में सब तरह की खनिज-सम्पत्ति छिपाए हुए है। कालिमाड़ें के इलाके में चार-ही-पांच साल से कोयले की खानों में काम होने लगा है। नेपाल में नरम कोयले को थोड़े ही दिनों से जलाने के काम में लाया जा रहा है। हिमाचल की तांबे, सीसे, लोहे, गंधक, अभ्रक आदि की खानें तो अभी उस भविष्य की प्रतीक्षा में हैं, जबकि हमारे वैज्ञानिक ऐटामिक दौड़ का खयाल छोड़ इनकी सुविधा लेंगे, सरकार बड़ी-बड़ी योजनाएं बनायगी और हिमाचल को परिश्रमी जनता उससे भी अधिक उत्साह के साथ पहाड़ों के उदरों को अपने हाथों से विदारण करेगी, जैसा कि उसने इन पहाड़ों को खेतों से ढाँककर किया है? बिजली के लिए तो हिमाचल भारत ही नहीं, संसार का एक अद्वितीय खज़ाना है। पेट्रोल से वंचित हमारे देश के लिए उसकी बड़ी आवश्यकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिमाचल में आज जो दरिद्रता दिखलाई पड़ रही है, उसके रहने का कोई कारण नहीं है। हिमाचल की कुक्षि से दरिद्रता और अज्ञान को भगाना हमारे हाथ में है, और उन्हें भगा के ही रहना होगा!

भगवानदास—हिमाचल का भविष्य उज्ज्वल है।

युधिष्ठिर—हिमाचल का भविष्य उज्ज्वल है, यह कहते हुए हमें उसके रास्ते की अड़चनों को भी हटाना होगा। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इकाईवाले हिमाचल को हमें राजनीतिक तौर से भी एक इकाई

में परिणत करना पड़ेगा। आजकल दस-पांच लाख आबादी का भूखंड कोई बड़ी योजना बनाकर चालू नहीं कर सकता। योजनाओं के लिए जो आरम्भिक खोज की आवश्यकता होती है, वह भी उसके बूते की बात नहीं होती। साल-भर के बने हिमाचल-प्रदेश के सामने ये अड़चनें दिखलाई पड़ रही हैं। सारा बृहत्तर हिमाचल आसाम की सीमा से जम्मू की सीमा तक, तिब्बत की सीमा से तराई तक फैला हुआ है। इसकी जनसंख्या डेढ़ करोड़ से ऊपर होगी। इतनी भूमि और इतने हाथों के एक होने पर हम हिमाचल की बड़ी-से-बड़ी समस्या को आसानी से हल कर सकते हैं। लेकिन इस राजनीतिक एकता को वास्तविकता का रूप देने में कई बाधाएं हैं। पहले तो सभी छोटे राजा अपने को चक्रवर्ती समझते थे और पांच गांव की सीमा को भी हिलाने डुलाने के लिए तैयार नहीं थे। जिन जगहों में राजाओं की निरंकुशता दूर हो गई, वहां भी प्रजा के नेताओं में मंत्री और प्रधान-मंत्री बनने का लोभ इतना बढ़ा, कि वे बड़ी इकाई में मिलने के लिए तैयार नहीं होते थे। पांच लाख की रियासत टेहरी के प्रजापची मन्त्री तक इस संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ सके और वे डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग रखने के लिए पूरा ज़ोर लगाते रहे। वही हालत सिक्कम की है, जिसकी जनसंख्या एक लाख से कुछ ही अधिक होगी। अभी तक तो वहां के महाराजा यह भी नहीं तय कर पाए थे, कि प्रजा को अधि-कार देने चाहिएं या नहीं। शायद अब वे इसे अनिवार्य समझने लगे हैं, किन्तु प्रजा के नेताओं को यह मनवाने की कोशिश कर रहे हैं कि सिक्कम की एक लाख की जनसंख्या का एक स्वायत्त शासित पृथक् राज्य बना रहे। भला यह समझने की बात है, कि इतना छोटा इलाका कैसे अपने यहां की बिजली-खान-जंगल-फल की योजनाओं पर करोड़ों लगा सकेगा और कैसे काम के लिए विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त कर सकेगा। आशा है, सिक्कम के राजा और प्रजा-नायक दूरदर्शिता से

काम ले अपनी अलग इकाई का आग्रह नहीं करेंगे और दार्जिलिंग में मिल जायंगे।

रामी—हिमाचल का विस्तार बहुत है।

युधिष्ठिर—पश्चिमी हिमाचल में कांगड़ा ज़िला, होशियारपुर तथा गुरुदासपुर की पहाड़ी तहसीलें पूर्वी पंजाब में हैं। शिमले का भी कुछ भाग पंजाब में रखा गया है। वहां भी उक्त भूभाग को हिमाचल से अलग रखने के पक्ष में तरह-तरह की थोथी दलीलें दी जा रही हैं। जिस प्रकार दार्जिलिंग निवासियों को अपने को किसी स्वतंत्र हिमाचल-प्रदेश का अंग बनने से रोकने का प्रयास पूर्वी बंगाल की ओर से नहीं होना चाहिए, उसी तरह पश्चिमी पंजाब के हिमाचल के टुकड़ों की ओर लालच-भरी निगाह से देखना भी उचित नहीं है। यह दूषित मनोवृत्ति पंजाब के लिए भी स्थायी हित की बात नहीं होगी। उसके इस भाग के निवासी हिमाचल-प्रदेश में जाना चाहते हैं, तो उन्हें खुशी से जाने देना चाहिए। जमींदारी-जागीरदारी का ज़माना लद गया, इसे याद रखना चाहिए।

खोजीराम—और युक्तप्रांत में जो हिमाचल अंश है।

युधिष्ठिर—टेहरी राज्य का युक्तप्रांत में मिल जाना अवश्यम्भावी है: किन्तु हिमाचल की इकाई को अक्षुण्ण रखने और उसे दृढता-पूर्वक आगे बढाने के लिए आवश्यक है, कि अलमोड़ा-नैनीताल-गढ़वाल के तीनों ज़िले टेहरी रियासत तथा देहरादून का पहाड़ी इलाका (जोनसार) बृहत्तर हिमाचल-प्रदेश का अभिन्न अंग बने। किसी समय कुमायूँ वाले हिमाचल का एक प्रदेश बनाने के लिए सबसे आगे थे, लेकिन अब वहां किसी की आवाज़ इसके पक्ष में नहीं निकलती। शायद वे समझते हैं, कि पन्तजी छः करोड़ के युक्तप्रान्त के महामंत्री हैं, अलग होने पर हमारा आदमी ऐसे पद पर कैसे पहुंचेगा? लेकिन हिमालय में प्रतिभा की कमी नहीं है। हिमाचल के सपूत युक्तप्रान्त क्या, सारे भारत के कर्णधार बन सकते हैं। फिर कुमायूँ वालों को

यह भी तो सोचना चाहिए, कि पन्तजी के बाद भी बराबर उन्हीं के यहां के महामंत्री नहीं हुआ करेंगे। सचमुच ही कुमायूँ की इस विषय की चुप्पी बहुत खेदजनक मालूम होती है और उनकी अदूरदर्शिता की परिचायक है।

महीप—हिमालय को एक करना होगा?

युधिष्ठिर—बंगाल, युक्तप्रान्त, पंजाब और कई रियासतों में बिखरे हिमाचल के भागों को एक कर देना चाहिए, तभी उसकी चौमुखी उन्नति हो सकती है, इस बात को माननेवाले काफ़ी मिलेंगे और वे यह भी मानेंगे, कि सिक्कम-सहित दार्जिलिंग को भी हिमाचल-प्रदेश में मिला देना चाहिए। कोई-कोई आपत्ति कर सकते हैं, कि बीच में नेपाल के कारण दार्जिलिंगवाले हिमाचल को पश्चिमवाले हिमाचल से कैसे एक प्रदेश के रूप में मिलाया जा सकता है? लेकिन यह शंका करनेवाले भूल जाते हैं, कि अलग प्रदेश होने का अर्थ यह नहीं है, कि वह भारतवर्ष से अलग है और हमारे लिए भारत का हर-एक प्रदेश एक-दूसरे से असम्बद्ध परम स्वतंत्र इकाई का रूप रखता है। क्या हर्ज है, यदि बंगाल, बिहार और युक्तप्रान्त के भीतर से होकर हिमाचल-प्रदेश के दोनों भाग एक-दूसरे से संबंध रखें?

खोजीराम—क्या यह स्थायी हल है? और नेपाल?

युधिष्ठिर—इसे भी हमें अस्थायी हल मानना होगा। अन्ततोगत्वा तो हमें सारे हिमाचल को बृहत्तर हिमाचल का रूप देना होगा, जिससे नेपाल और भूटान को अलग नहीं किया जा सकता। नेपाल का नाम लेना कुछ लोगों के लिए कुफ्र है। वे खयाल करते हैं, कि नेपाल को भारत का समकक्ष स्वतंत्र अस्तित्व रखने का अधिकार है। हमारे कितने ही राजनीति-धुरंधरों के लिए अंग्रेज़ों की खींची सारी रेखाएँ सीता की कुटिया के किनारे लछमण द्वारा खींची रेखा की भांति दुर्लंघ्य या पापमय हैं। लेकिन क्या हमें मालूम नहीं है, कि अंग्रेजों ने रियासतों को जिस अभिप्राय से पाल-पोस के रखा था, उसी कूटनीति का एक

अंश नेपाल का अस्तित्व भी है। समय पर न चेतने पर नेपाल हमारे लिए भारी ख़तरे की चीज़ सिद्ध होगा। हैदराबाद की स्वतंत्रता के षड्-यंत्र को हमने अपने पेट में छुरी भोंकना समझा, किन्तु नेपाल की स्व-तंत्रता का षड्यंत्र हमारी खोपड़ी में पिस्तौल का निशान है। क्या नेपाल का राजवंश हिन्दू है और निज़ाम मुसलमान था, इसलिए दोनों में भारी भेद हो गया? नेपाल की जनता उसी तरह हमारे रक्त-मांस से सम्बन्ध रखती है, जिस तरह हैदराबाद की जनता। निज़ाम की निरंकुशता के विरुद्ध बोलनेवाले किस मुंह से नेपाल के मुट्ठी-भर राणाओं की ताना-शाही को सह्य मान सकते हैं!

रामी—नेपाल की जनता उठ खड़ी हुई है।

युधिष्ठिर—नेपाल की जनता आज अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है और बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ कर रही है। भारत के नेता और उसके समाचार-पत्र क्रूर चुप्पी साधे हुए हैं। क्या डचों के इण्डोनेशिया और फ्रांसीसियों के हिन्दचीन में स्वेच्छाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने ही तक हम अपनी न्यायप्रियता को सीमित रखना चाहते हैं? क्या अपने बन्धुओं की सौ साल पहले खून की होली खेलकर नेपाल को हाथ में करके अंग्रेज़ों के वरदान पर जीते आते राणा-वंश के हाथ में छोड़ना कभी उचित है? नेपाल के बारे में हमें अपना रुख साफ़ करना होगा और कहना होगा, कि नेपाल के वर्त्तमान तानाशाहों को हम उसी श्रेणी में रखते हैं, जिसमें हैदराबाद को हमने रखा।

खोजीराम—नेपाल की शासन-व्यवस्था तो असह्य है।

युधिष्ठिर—नेपाल में दो राजा हैं, एक का नाम महाराजाधिराज है, जिसे राज-काज में कोई अधिकार नहीं है। हाँ, उसे एक मोटी रक़म पेंशन के रूप में मिल जाती है। नेपाल के वास्तविक शासक राणा जंगबहादुर के भाइयों की सन्तान हैं, जिनमें से हर एक नेपाली प्रजा के जान-माल को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। वहाँ सरकारी पैसे कौड़ी का कोई हिसाब नहीं, कि प्रजा की गाढ़ी कमाई में से कितना

लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरे उपयोगी काम में ख़र्च किया जाय। सारी आमदनी राणा-वंश की मिल्कियत है। राणा-खान्दान एक तरफ प्रजा को निहत्थी, निरीह और अशिक्षित बना के रखना चाहता है और दूसरी ओर आपसी षड्यंत्रों से भी जनता के ऊपर और अधिक आर्थिक भार डालता है। कुछ ही वर्षों के भीतर राणा-खान्दान के दो-दो राजा निकाल बाहर किये गए हैं, और शायद आगे भी किसी को कुछ करोड़ लेकर बाहर आते सुनेंगे। प्रजा के साथ ज़रा भी नरमी दिखलानेवाला कभी वहां टिक नहीं सकता। यह असह्य है। स्वतन्त्र जनतान्त्रिक भारत के कण्ठ के पास ये भीषण अभिनय और घृणित अत्याचार कब तक होते रहेंगे?

महीप—नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय नीति का अखाड़ा बन रहा है।

युधिष्ठिर—हां, नेपाल हमारी घरू राजनीति की ही दृष्टि से, अपने रक्त-मांस-सम्बन्धी बन्धुओं के ऊपर किये जाते अत्याचारों के कारण ही, हमारे ध्यान को आकृष्ट करने का हक़ नहीं रखता, बल्कि हमारी वैदेशिक राजनीति में वह हमारे लिए अन्तर्राष्ट्रीय अखाड़ा बनता जा रहा है। हैदराबाद के निज़ाम की कमर तोड़ने की, उसे शासनहीन बनाने की, ज़रूरत हमें इसीलिए पड़ी कि अंग्रेज़ उसे ट्रान्सजोर्डन बनाना चाहते थे, हमारी छाती पर वहां सैनिक हवाई-अड्डा तैयार करना चाहते थे। वही बात 'स्वतंत्र' नेपाल शुरू कर रहा है। वहां के राणाओं को जनतांत्रिक भारत पर उतना विश्वास नहीं है, जितना बाहरी साम्राज्य-वादियों पर। इसीलिए वह उनसे और अधिक घनिष्ठता करना चाहते हैं। खनिज-विशेषज्ञों के नाम पर बाहर से सैनिक विशेषज्ञों को बुला के नेपाल का सर्वे करा रहे हैं। फिर वहां खनिज के कामों के लिए करारनामे-पट्टे लिखे जायंगे। व्यापारिक अड्डों के नाम से सैनिक हवाई-अड्डों को बनने से कौन रोक सकेगा? और अब तो चीन में कम्युनिस्टों का प्रभुत्व हो जाने पर तिब्बत चीन का अभिन्न अंग माना जाने के कारण नेपाल की उत्तरी सीमा ही कम्युनिस्ट चीन की दक्षिणी सीमा

होगी। फिर कम्युनिस्ट दुनिया के चारों ओर सैनिक अड्डों के बनाने का जिस तरह काम चल रहा है, नेपाल भी उसका अंग होगा। नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का हमारे लिए एक भयंकर अखाड़ा बनके रहेगा, यदि हम स्वतंत्र नेपाल के नाम पर राणा तानाशाहों की पीठ ठोकते रहे। यह राजनीति का अजीर्ण होगा, यदि हम इतनी बात को भी नहीं समझ पाए और नेपाल के राष्ट्रसंघ के सदस्य होने में सहायता भी करते गए। इसलिए नेपाल को वहां आना होगा, जहां ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और स्वयं वहां की प्रजा उसे रखना चाहती है। उसे बृहत्तर हिमाचल-प्रदेश का अंग बनना है, यदि प्रजा से पूछा जाय, तो मुट्ठी-भर राणाओं और उनके पिछलग्गुओं को छोड़ सारी नेपाली प्रजा इससे सहमत होगी।

भगवानदास—भूटान के बारे में क्या करना है?

युधिष्ठिर—भूटान के बारे में भी अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। वह नेपाल से भी छोटा राज्य है। वहां भी निरंकुशता का अखंड ताण्डव हो रहा है, जो अंग्रेज़ों के लिए मनोरंजक हो सकता था, किन्तु हमारे लिए कभी नहीं। भूटान हिमाचल का सबसे पिछड़ा भाग है। उसकी अक़्ल तो उसी वक्त दुरुस्त हो जायगी, जिस वक्त उसकी उत्तरी सीमा पर चीन की नई शक्ति का प्रदर्शन होने लगेगा। भूटान की जनता में भीतर-ही-भीतर आग सुलग रही है। आशा है, अपनी भलाई का ख़याल करके भी वहां के शासक प्रजा और भवितव्यता के सामने सिर झुकाने से आनाकानी नहीं करेंगे। इस प्रकार भीतरी-बाहरी राजनीतिक स्थिति का हित भारत की समृद्धि और सुरक्षा इस बात की मांग कर रही है, कि भूटान से जम्मू तक का सारा हिमवंत बृहत्तर हिमाचल का रूप ले। हिमाचल की जनता अब जाग उठी है। उसे अपने ध्येय को भी स्पष्ट देखना चाहिए। फिर कोई शक्ति उसके रास्ते में बाधक नहीं हो सकती।

तेईसवां अध्याय

प्रवासी भारतीय

भगवानदास—दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के ऊपर जैसी गुजर रही है, उसकी खबरें समाचार-पत्रों से मिलती रहती हैं। विश्व के दूसरे भागों में भी भारतीय गये हैं, आज उनके बारे में विचार करना चाहिए।

युधिष्ठिर—यद्यपि हमारे यहां समुद्र पार जाना कई शताब्दियों तक निषिद्ध रहा। पंडित लोग व्यवस्था देते रहे, कि समुद्र पार होते ही हिन्दू का धर्म नहीं रह जाता। लेकिन यह कूपमंडूकता देश में सदा से नहीं थी। ब्राह्मणधर्मी हिन्दू जावा-सुमात्रा, बाली-बोर्नियो, चम्पा-कम्बोज से फिलिपीन द्वीप तक फैले हुए थे, उनके जगह-जगह उपनिवेश थे; इसलिए यह कहना, कि हिन्दू समुद्र पार नहीं जाते थे, अपनी अज्ञानता को प्रगट करना है। यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है। उस समय भारतीय स्वतन्त्र मानव के तौर पर एक उच्च संस्कृति को लेकर द्वीप-द्वीपान्तरों में पहुँचे थे। बीच में सूत्र टूटने के बाद पिछले सौ वर्षों में भारतीय दुनिया के बहुत-से भागों में मियादी कुली बनकर गये। आजकल उनकी तथा कुछ स्वतन्त्र रूप से भी बाहर जा बसे भारतीयों की संख्या ३७ लाख से ऊपर है।

रामी—३७ लाख से ऊपर है? वह कहां-कहां पहुंचे हैं?

युधिष्ठिर—सबसे अधिक अपने पड़ोसी बर्मा में गये हैं। उसके बाद लंका, मलाया, दक्षिणी अफ्रीका, मारीसस, ट्रीनीडाड, ब्रिटिश-गायना आदि में हैं। उनकी आजकल की संख्या तो मालूम नहीं है,

किन्तु पुराने कागजों से भारतीयों की जो संख्या मालूम हुई है, वह निम्न प्रकार है—

प्रवासी भारतीयों की संख्या

(ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर)

एसिया में—

लंका[1]	६,८२,५७०	(१६३८)
मलयद्वीप	५५०	(१६३३)
बर्मा	११,२०,०००	(,,)
मलाया	७,५४,८४६	(१६३७)
अदन	८,१६८	(,,)
हाङ्काङ्	४,७४५	(१६३१)
उत्तरी बोर्नियो(बृ)	१२६८	(,,)

अफ्रीका में—

केनिया[2]	४२,३६८	(१६३७)
तंगानिका[2]	२३,४२२	(१६३१)
युगांडा[2]	१८,८००	(१६३७)
जंजीबार	१४,२४२	(१६३१)
न्यासालैण्ड	१,६३१	(१६३७)
नताल	१,८३,६४६	(१६३६)
ट्रान्सवाल	२५,५६१	(,,)
केपकालोनी	१०,६६२	(,,)
दक्षिणी रोडेसिया	२,१८४	(,,)
उत्तरी ,,	४२१	(१६३७)
मारीशेस	२,६६,७०१	(,,)

अफ्रीका में—

ट्रीनीडाड	१,५४,०८३	(१६३७)
जमैका	१८,६६६	(१६३६)
ग्रेनाडा	५००००	(१६३२)
सेंटलुइस	२१८६	(१६२१)
बृटिशगायना	१,४२,६७८	(१६३७)
बृटिश होंडूरास	४६७	(१६३१)
कनाडा	१५,६६	(,,)

आस्ट्रेलिया में—

आस्ट्रेलिया	२,४०४	(१६३३)
न्यूज़ीलैंड	१,०६६	(१६३२)
फीजीद्वीप	८६,३३३	(१६३७)

(बृटिश साम्राज्य के बाहर)

एसिया में—

इण्डोनेसिया	२७,६३८	(१६३०)
इण्डोचीन	६,०००	(१६३१)
स्याम	५,०००	(१६३१)
इराक	२,५६६	(१६३३)
ईरान	२,०००	(,,)
बहरैन	५००	(,,)

---

१. चाय बगान के कमकरों को छोड़कर।

२. पूर्वी अफ्रीका में अब १६८ हजार भारतीय रहते हैं।

मस्कत	४४१ (१९३३)
अफ्रीका:—	
मदगास्कर (फ्रांस)	७,९४५ (१९३१)
पोर्तगीज़ पश्चिमी अफ्रीका	५,००० (,,)
रियुनियाँ (फ्रांस)	१,५३३ (१९३३)
अमेरिका:—	
डच गायना	३७,९३३ (१९३२)
उत्तरी अमेरिका के राज्य	५,८५० (१९३०)
ब्राजील	२,००० (१९३१)
	३६,८८,२०२

खोज़ीराम—यह संख्या काफी है और मैं समझता हूं, लका में चाय, रबर के बगीचे में काम करने वाले तथा दूसरे भारतीय कमकरों को लेकर आज संख्या करीब ५० लाख पहुंच जाती है।

महीप—संख्या कितनी ही पहुँच जाती हो, लेकिन हमारे ये भाई गुलाम देश से गये थे, इसलिए उन्हें बराबर अपमानित होना पड़ा है। अंग्रेजी साम्राज्य में तो और भी। दक्षिणी अफ्रीका में हम जानते हैं, उनकी क्या हालत हो रही है। उन्हें मनुष्य नहीं समझा जाता, शहरों में उन्हें साधारण सड़कों से हटाकर किसी कोने में बसने के लिए मज़बूर किया जाता है। यूरोपीय होटलों में बड़े-से-बड़े भारतीय को ठहरने का अधिकार नहीं। रेलों और ट्रामों में उनके बैठने के लिए अलग डब्बे और स्थान बने हुए हैं। उन्हें कोई नागरिक अधिकार नहीं है। भारतीयों का जो अपमान दक्षिणी अफ्रीका के गोरों ने किया है, वैसा कभी किसी स्वतन्त्र देश के साथ किया जाता तो युद्ध घोषित हुए बिना नहीं रहता, नेहरूजी उसी साम्राज्य से हमें चिपका रहे हैं, जहां कि हमारा इतना अपमान हो रहा है। हमें उन्हीं बूटों को चाटने के लिए कहते हैं जोकि हमें ठोकर लगाते आ रहे हैं।

खोजीराम—दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की संख्या नेटाल में १,८३,६४६, ट्रान्सवाल में २५,५६१ और केपकालोनी में १०,६५२ कुल २ लाख से ऊपर है। अब सुनते हैं, कि दक्षिणी अफ्रीका वाले गोरे भारतीयों को वहां से भगाना चाहते हैं। जब दक्षिणी अफ्रीका आबाद नहीं था, सिंह और जंगली दरिन्दे वहां फिरा करते थे, जंगलों को काटकर बस्तियां बसानी थीं, उस वक्त हमारे भाई कुली बनाकर वहां भेजे गए। अब, जब वह आबाद हो गया, तो वहां के गोरे पहले तो लांछित अपमानित करते रहे, अब भाग जाने के लिए कह रहे हैं। यह खून का घूंट पीना है। युक्त राष्ट्र-संगठन में यह मामला गया, वहां से अफ्रीकन सरकार से न्याय करने के लिए कहा गया, लेकिन निर्बल के साथ दुनिया में कोई न्याय करने के लिए तैयार नहीं।

रामी—भारतीय स्वतंत्रता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ?

युधिष्ठिर—क्या प्रभाव पड़ेगा, नेहरू जैसे पारगामी राजनीतिज्ञ बृटिश-साम्राज्य के देशों के सम्मेलन में लन्दन गये, भारतीयों के साथ दक्षिण अफ्रीका में होते अपमान की बात कहने तक की उनकी हिम्मत नहीं हुई। मज़दूर साम्राज्यवादी एटली ने कह दिया—खबरदार, दक्षिण अफ्रीका का मामला मत ले आना। नेहरू ने अच्छे शिष्य की तरह मौन धारण किया। भारतवर्ष को बृटिश साम्राज्य का अंग बनवा के उन्होंने अपने को सफल समझा। अंग्रेजी अखबारों ने उनकी प्रशंसा की, जिस पर वे फुल-फुल हो गए और समझने लगे, कि वह २० वीं शताब्दी के बिस्मार्क हैं। भला इस तरह देश के अपमान को दूर किया जा सकता है ? नेहरू को कहना था, दक्षिण-अफ्रीका का कान पकड़ो, उसे न्याय करने के लिए मज़बूर करो, या इस सम्मेलन से काला मुंह करके भगा दो, तभी भारत साथ रहने की बात कर सकेगा। लेकिन वह तो गजूं बन गए थे।

महीप—मलाया में जो नंगा नृत्य अंग्रेजी साम्राज्यवाद कर रहा है, उसे छिपाने की कोशिश हमारे पत्र और समाचार-एजेन्सियां कर

रही हैं; तब भी कभी-कभी कोई सच्ची खबर आ पहुंचती है। उस दिन गणपति को फांसी चढ़ाए जाने की खबर कानों में पड़ी, तो सारा भारत चौंक उठा। भारत ने बृटिश सरकार के पास गणपति के बचाने के लिए ज़ोर लगाया, लेकिन उस तरुण को बचाया नहीं जा सका। कितनी धृष्टता की बात—मलाया के चीफ सेक्रेटरी अलेकज़ेण्डर न्युबोल्ट ने १२ मई (१६४६) को सिंगापुर में वक्तव्य देते हुए कहा—"गवर्नमेण्ट को इस पर संतोष है कि गणपति के संबंध में न्याय किया गया है।" न्याय यही था, कि झूठ या सच हथियार के साथ पकड़े जाने के आरोप में मलाया के मज़दूरों के इस महान् नेता को, जो पहले ही से अंग्रेजों की आंखों का कांटा बना हुआ था, फांसी पर लटका दिया गया। न्युबोल्ट ने स्लेंगा के सुलतान को न्याय का जिम्मेदार बनाके छुट्टी ले ली। उसने तपाक से कहा—"प्राणदान करने के लिए (ब्रिटिश) राजमंत्री को कोई वैधानिक अधिकार नहीं है, न भारत-सरकार को ही वैसा अधिकार है।" जब इस बृटिश तानाशाह से पूछा गया, कि गणपति के मामले के बारे में भारतीय सरकार को क्यों नहीं सूचना देते रहे, तो उसने जवाब दिया—मलाया की संघ-सरकार अपनी अदालतों में होते हुए किसी मामले के बारे में दूसरी सरकार को सूचित करने के लिए बाध्य नहीं है। बाध्य तो बृटिश गवर्नमेण्ट और उसकी पुछल्ली मलाया-सरकार का बाप होता; यदि भारत के राजनीतिज्ञों में आत्मसम्मान होता और भारत की भुजाओं में बल होता। यह है अंग्रेजों के साम्राज्य के भीतर भारत के रहने की बात स्वीकार कर नेहरू के भारत लौटने के तुरन्त ही हमारे मुख पर चपत! न्युबोल्ट ने गणपति के अपराध के बारे में कहा—"वह गैर-कानूनी तरीके से बारूद और हथियार रखने का अपराधी था, जिसके लिए मृत्यु-दंड का विधान माना गया है।"

खोजीराम—और यह नेहरू की विलायत-दिग्विजय के तुरन्त बाद हुआ है।

महीप—डा० पट्टाभि सीतारमैया को भी इस अत्याचार और अपमान को देखकर कहना पड़ा—"ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भारत के सदस्य होने के हस्ताक्षर के होने और भारत सरकार तथा उसके मलाया में मौजूद विदेश-विभाग के उपमंत्री डा० केसकर के विरोध करने पर भी हमारे आदमी को फांसी पर चढ़ा दिया गया। यह बतलाता है, कि भारत के शब्द और विचारों के सम्बन्ध में अपने अधीन देशों मे अंग्रेज शासक कैसा व्यवहार करते हैं।"

खोजीराम—तो अंग्रेजों के लिए मलाया के जंगलों को काटकर रबर के बगीचे लगाने वालों, ज़मीन का उदर विदारकर टिन निकालने वाले भारतीयों के साथ यह है बर्ताव अंग्रेजी साम्राज्यवाद का, जिसे नेहरू 'खतम हो गया' कहते हैं। हमारे आठ लाख भाइयों का भविष्य मलाया में अंधकारपूर्ण है; यदि अंग्रेजी साम्राज्य वहां जम के बैठा रहा।

महीप—अंग्रेजी साम्राज्यवाद मलाया और बर्मा में भी जमकर बैठा रहे, यही तो हमारे देश के कर्णधार करना चाहते हैं; वह मलाया की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले देश-भक्तों को अंग्रेजों की ही भांति डाकू कहके अपने पत्रों में छापने दे रहे हैं।

भगवानदास—खबर देने वाली तो रूटर की एजेन्सी है।

महीप—रूटर कहके आप छुट्टी ले लेना चाहते हैं? अब तो रूटर के आप भागीदार बन गए हैं। रूटर पराई चीज़ नहीं है; इसीलिए रूटर में आपको भागीदार बनाया गया; जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य की राजनीतिक एकता में सहायता करने वाली इस साम्राज्यवादी समाचार-एजेन्सी को आपका भी समर्थन मिले। अब रूटर जो खबर देगा, उसी को ठीक समझकर मानना होगा।

रामी—बर्मा में भारतीयों की अवस्था के बारे में क्या कहा जा सकता है; जब कि अभी बर्मा का भाग्य स्वतंत्रता और ब्रिटिश मायाजाल के बीच में लटक रहा है।

महीप—कोशिश की जा रही है कि ब्रिटिश मायाजाल बर्मा में सफल रहे, किंतु उसकी कोई आशा नहीं मालूम होती। अंग्रेजों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर हमारी सरकार भी थाकिनन् की सरकार को कायम रखने की कोशिश कर रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाया किसी रूप में भी बर्मा में रह जाने पर आशा नहीं रखना चाहिए, कि वहां अधिकांश भारतीयों के साथ न्याय होगा। दक्षिणी अफ्रीका की भांति अपमान-जनक कानून न भी बनाया जाय, किंतु बहुत-से भारतीयों को बर्मा छोड़ने को मजबूर किया जायगा।

भगवानदास—दूसरे देशों में बस गए भारतीयों को क्या भाव रखना चाहिए ?

युधिष्ठिर—भारतीय जहां स्थायी तौर से बस गए हैं, उन्हें उस देश को अपना देश समझना चाहिए, यदि वह ऐसा नहीं कर सकते, तो कैसे आशा रख सकते हैं, कि उस देशवाले बिना भेद-भाव के उन्हें अपना सहनागरिक मान लेंगे। सिंहल (लंका) में ७ लाख के करीब भारतीय बस गए हैं और उससे कम चाय, रबर के बगीचों में काम करने वाले भारतीय मज़दूर नहीं हैं। पीढ़ियों से बस गए भारतीय भी सिंहल लोगों के साथ उतना बंधुता का संबंध नहीं रखते, जितना कि उस देश का निवासी होने के कारण रखना चाहिए। यहीं से भेद-भाव शुरू होता है। स्मरण रखिए लंका भारत-संतान है; लंका-निवासी भारतीय संस्कृति की औरस संतान हैं। यदि हमारे भारतीय भाई मुसलमानों का अनुकरण करना चाहेंगे, तो लंका और बर्मा के प्रति-गामियों के हाथ खेलेंगे। इन दोनों देशों के निवासियों को इस बात का खतरा मालूम होता है कि, "भारतीय अधिक संख्या में आकर हमारे देश में छा जायंगे; एक ओर हमें उनके विदेशीयता से मुकाबिला करना पड़ेगा, दूसरी ओर अपने निम्न जीवन-तल के कारण भारतीय हमारे देश के मज़दूरों के बुरे प्रतिद्वन्द्वी होंगे। सस्ती मज़दूरी के कारण उनका भी जीवन-तल गिर जायगा।" भारत को ख़याल रखना होगा

कि जहां हमारी संख्या हर साल ५० लाख बढ़ रही है वहां दो-चार लाख के बर्मा या लंका में भेज देने से हमारी समस्या हल नहीं होती, दूसरी ओर हम ऐसा करके बर्मा और लंका-निवासियों की उचित शिकायत पर ध्यान न देकर उन्हें अपना विरोधी बना लेंगे। यदि भारत का जीवन-तल लङ्का के जीवन-तल से अधिक ऊंचा होता तो शायद यह सवाल भी नहीं उठते। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि लङ्का बहुत दिनों तक ब्रिटिश साम्राज्य का नौसैनिक अड्डा नहीं रह सकता। ट्रंकोमाली (त्रिकोणमलय) का नौसैनिक अड्डा आखिर भविष्य में किसके विरुद्ध इस्तेमाल करने के लिए है? चीन वहां से बहुत दूर है, भारत ही उसके नजदीक में है। नई परिस्थितियों में उसे भारतीय समुद्र पर अपना प्रभुत्व रखने के लिए अंग्रेजों का नौसैनिक अड्डा मानना पड़ेगा। जिस तरह अंग्रेजों ने थाकिन नू को बर्मा में पाया है; उससे भी बढ़कर अंग्रेजों का पिट्ठू लङ्का का प्रधान-मंत्री सेनानायक है। जब तक वह नायक रहेगा, तब तक भारत के साथ वैमनस्य के कारणों के दूर होने की संभावना नहीं है। भीतर-बाहर जैसे भी हो मुस्लिम लीगियों की तरह वह भी भारतीयों के विरोध में अपने को अग्रणी रखके अपना नेतृत्व कायम रखना चाहेगा। यह दूसरी बात है कि मौका पड़ने पर वह मीठी-मीठी बातें भी करेगा—"वचने का दरिद्रता"। जिन हाथों ने लङ्का के जंगलों को काटकर वहां काफी, चाय और रबर के बगीचे लगाके देश के धन को बढ़ाया, उनके बारे में सेनानायक कहता है—"मैं नहीं समझता कि मैं यह कहकर ऐतिहासिक तथ्य का अपलाप करता हूं, कि भारतीय मजदूर सदा के लिए बस जाने के खातिर लङ्का नहीं आये, बल्कि उनका मुख्य प्रयोजन यही था, कि काफी, चाय और रबर के बगीचों में जो उदारता-पूर्वक मजदूरी की जा रही थी, उससे फायदा उठाएं। स्वतन्त्र भारत के ऊपर यह कोई आक्षेप की बात नहीं है, यदि यह कहा जाय, कि इसके कितने ही पुत्र विदेशी पूंजीपतियों के शासन के अधीन किये

गए प्रबन्ध के अनुसार काम और अच्छा पारिश्रमिक ढूंढने के लिए लंका आये। उस समय प्रवासी जिन असंतोषजनक शर्तों के साथ यहां आये, उनके लिए स्वतन्त्र लङ्का को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता।" सेनानायक को केवल इतना ही ख़याल है, कि भारतीय मजूर अंग्रेज प्लांटरों के प्रलोभन पर ही लङ्का पहुंचे थे। इन मजूरों ने अपने हाथों से जो लङ्का में निर्माण का काम किया, अपना खून-पसीना एक करके दुर्गम पहाड़ियों को आबाद किया, उनका उसके बाद उस भूमि में कोई हक नहीं रह गया। सेनानायक के दिमाग में भी वही मनोवृत्ति काम कर रही है, जो दक्षिणी अफ्रीका के गोरी तानाशाही में— आये और यहां सारी जवानी लगाके काम किया, तो अच्छा किया। अब भला इसी में है, कि तुम अपने घर चले जाओ।

रामी—वहां चले गए हमारे भाइयों को नागरिकता का अधिकार देने में क्या उजुर है?

युधिष्ठिर—वही तो उजुर की सबसे बड़ी बात है। वह चाहते हैं, कि कम-से-कम भारतीय लका के नागरिक हो सकें। हमें अधिक-से-अधिक भारतीयों के वहां के नागरिक बनने का आग्रह नहीं होना चाहिए, किन्तु जिन्होंने वहां काम नहीं किया और न बस गए; उनके नागरिक बनने का आग्रह नहीं होना चाहिए, किंतु जिन्होंने वहां काम किया और बस गए उनके नागरिक होने में क्यों हीला-हवाला किया जाता है? वस्तुतः हमारा झगड़ा भारतीयों के हक का झगड़ा है, सिंहल-कमकरों और नागरिकों से नहीं है। अभी तक वहां बस गए भारतीयों को एक बार अधिकार मिल जाने पर फिर झगड़े की गुंजाइश नहीं रह जाती, क्योंकि भारत अपने और आदमियों को वहां नहीं भेजना चाहता। लेकिन स्मरण रहे लंका में भारतीय उपनिवेशियों का विरोध करना प्रतिगामियों के लिए राष्ट्रीयता का परिचायक है, वहां के वाम-पंथी करीब-करीब सेनानायक के दल को हटाने में सफल हो गए थे, लेकिन आपस की फूट ने काम बनने नहीं दिया।

महीप—तो हमें लङ्का और बर्मा में गये अपने भाइयों के अधिकार के बारे में बात करते यह ध्यान रखना होगा, कि यह दोनों देश हमारे पड़ोसी हैं। दोनों का भविष्य हमारे साथ घनिष्ठता से सम्बद्ध है। इसीलिए तत्कालिक लाभ के लिए कोई गलती नहीं करनी चाहिए। विशेषकर निम्न जीवन-तल के भारतीय कमकरों के उन देशों पर धावा बोलना, जो अधिक उच्च जीवन-तलवाले वहां के कमकरों के सामने खतरा है।

रामी—और दूसरे द्वीपों में जो हमारे भाई गये हैं, उनकी अवस्था को कैसे सुधारा जा सकता है?

युधिष्ठिर—उनकी अवस्था के बिगड़ने का कारण भारत की परतंत्रता थी। स्वतंत्र भारत इस बात की गारंटी है, कि सर्वत्र हमारे भाइयों के साथ मानवोचित सम्मानपूर्ण व्यवहार हो। १५ मई (१९४९) को लंदन में बृटिश गायना, ट्रीनीडाड और मारिशस के भारतीयों के नेता एकत्रित हुए थे। उन्होंने बतलाया, कि भारत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की भावना रखते हुए भी भारतीयों को अपने चिर प्रवास वाले देशों की नागरिकता को स्वीकार करना पड़ेगा। सभी मानते थे, कि भारत की स्वतंत्रता से हमारा भविष्य उज्ज्वल है। वस्तुतः जैसा कि पोर्टलुई (मारिशस) के 'एडवान्स' पत्र के सम्पादक अनाथबी जादू ने कहा था—"हमारे लिए दो-दो राज्यों की नागरिकता स्वीकार करना अच्छा नहीं है।" मारिशस द्वीप अब भारतीयों के बहुमत का द्वीप है, वहाँ भी ४,४०,००० की जनसंख्या में २,७०,००० भारतीय हैं।

महीप—दक्षिणी अमेरिका में गायना तो भारतीयों का एक अच्छा उपनिवेश है। ब्रिटिश गायना की ३,८०,००० की जनसंख्या में १,७६,००० भारतीय हैं (बहुमत से थोड़ा ही कम)। पास में डच गायना है। वहाँ भी भारतीयों की संख्या आधे लाख के करीब पहुँच गई है। ब्रिटिश गायना चीनी, चावल और मूल्यवान धातुओं से सम्पन्न है। वहाँ की जलवायु भी भारत से मिलती-जुलती है। राजनीतिक

अवस्था में सुधार तो होगा, किन्तु नवीन भारत का यह भी आवश्यक कर्तव्य है, कि वहाँ हमारे सांस्कृतिक दूत भेजे जायं, और मातृभूमि के साथ लोगों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो।

युधिष्ठिर—आस्ट्रेलिया के पास फीज़ी द्वीप भी भारतीय उपनिवेश है। यह मारिशस और गायना की तरह भारतीयों की पिछली एक शताब्दी की तपस्या का फल है। वहाँ के हमारे बंधु कई बातें नवीन भारत से सीखना चाहेंगे। इन उपनिवेशों में कहीं-कहीं भारतीय राज-प्रतिनिधि भेजे गये हैं, लेकिन आवश्यकता इस बात की है, कि हम उनके बारे में अधिक जानें।

रामी—विदेशी राज्यों में फ्रांस के अधीन मदगास्कर द्वीप है। अभी सुना था, कि वहां के पन्द्रह हजार भारतीयों के ऊपर फ्रेंच सरकार ने कोप किया है।

युधिष्ठिर—उस दिन (७ मई १६४६) मदगास्कर के भारतीय व्यापारी श्री फिदाली कादिर भाई ने कहा—फ्रेंच सरकार की ओर से भारतीयों को उस द्वीप से भगाने की कोशिश की जा रही है। बीस भारतीय व्यापारी द्वीप छोड़ने के लिए मजबूर किये गए, उन्हें यह भी नहीं बतलाया गया, कि क्यों बाहर किया जा रहा है। यह हमारे भाई अपने परिवार के साथ सबसे पहले द्वीप छोड़ने वाले स्टीमर से भेज दिये गए। उन्हें ५०-५० साल के वासी होने पर भी अपनी सम्पत्ति में से १२-१३ सौ रुपया से अधिक साथ ले जाने की आज्ञा नहीं दी गई। कादिर भाई ने बतलाया, कि राजधानी तनानरिव तथा तमानवे, सम्बबे आदि नगरों में बसे हुए भारतीयों की स्वत्व-रक्षा के लिए एक भारतीय कौंसल की आवश्यकता है। भारतीयों को वहाँ १६४७ में आर्डिनेन्स निकाल कर सम्पत्ति रखने की मनाही कर दी गई। भारतीय लड़कों को प्राइमरी से अधिक पढ़ने का सुभीता नहीं; क्योंकि फ्रेंच स्कूलों में उन्हें भरती नहीं किया जाता। क़ादिर भाई का कहना था, कि भारत के भीतर के फ्रांसीसी अधिकृत इलाकों से फ्रेंच सरकार को

बोरिया-बधना बांधकर लौटने के लिए जो मजबूर किया जा रहा है; उसी का बदला लेने के लिए फ्रेंच शासक मदगास्कर में ऐसा कर रहे हैं। फ्रांस के हाई कमिश्नर ने मदगासी लोगों की सभा में कहा था—"भारतीय तुम्हारे शत्रु हैं, उन्हें कह देना होगा, कि तुम द्वीप से चले जाओ।"

महीप—मदगास्कर दुनिया का पाँचवाँ सबसे बड़ा द्वीप है, जिसका क्षेत्रफल २,२८,००० वर्गमील है। हमें मालूम है कि मदगासी लोगों ने अपनी जन्म-भूमि को विदेशियों के चंगुल से निकालने के लिए चीन की भांति कुर्बानियां कीं। फ्रांस ने सारी शक्ति लगाके उन्हें दबा दिया। यदि हम मदगासी लोगों के साथ सहानुभूति दिखायंगे, जो कि हमारे लिए उचित है, तभी हमारे देशभाइयों का वहां मान बढ़ेगा।

चौबीसवाँ अध्याय

नव-एसिया

भगवानदास—हमारी गोष्ठी अब समाप्त होती मालूम हो रही है। अब वर्षा भी होने लगी है, कल आषाढ़ पूर्णिमा भी होने वाली है। कल के बाद स्वामीजी चातुर्मास्य मनाने के कारण अस्सी के इस पार नहीं आयंगे। वह बहुत चाहते हैं, कि आज एसिया की राजनीति के बारे बातचीत हो।

युधिष्ठिर—बहुत बेस, विश्व-राजनीति की बातचीत में कुछ संकेत तो इसके बारे में हो ही गया था, किंतु इस विषय में हमें और स्पष्ट विचार करने की आवश्यकता है। देख रहे हैं ना हमारी आंखों के सामने विश्व का नक़शा बदल रहा है। यूरोप ने एक शताब्दी से अधिक राहु बनकर एसिया को ग्रस रखा था। किंतु दो विश्व-युद्धों ने यूरोप के राहु के मुख में से एसिया को निकाल बाहर करने में धाई का काम किया। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद भारत का अंग्रेजों के पंजे से निकलना एक बड़ी घटना है। महीपजी शायद कहना चाहेंगे, कि अभी भारत अंग्रेजों के पंजे से अलग नहीं हुआ। मैं कहूंगा अलग होने पर भी अपनी इच्छा से उसे पंजे के भीतर रखने की कोशिश की जा रही है, जिसके लिए तरह-तरह के बहाने ढूंढ़े जाते हैं। किंतु, एक बात स्पष्ट होती जा रही है, कि यदि ऐसा हुआ तो भारत एसिया-वासियों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा नहीं कर सकेगा, उनका विश्वास खो देगा।

खोजीराम—आश्चर्य तो यह है, कि जिन बातों को पहले स्पष्ट शब्दों में शपथपूर्वक दोहराते रहे, अब निःसकोच हो उनसे उलटा जाने को ही हम अपनी गतिशीलता का प्रमाण मानते हैं।

रामी—अब भी समझते हैं, कि एसिया की स्वतंत्रता के अग्रदूत और उसकी प्रगति के नेता हम हैं।

महीप—अब तो अंग्रेजों और अमेरिकनों की समाचार-एजेंसियां जो भी कहती हैं, उसी पर इनको विश्वास होता है। वेद को प्रमाण मानने पर शायद क्या निश्चय ही हमारे कर्णधार मज़ाक़ करके उड़ा देते, किंतु अब तो एंग्लोअमेरिकन पत्र इनके लिए स्वतः प्रमाण हैं। भारतवर्ष अब एसिया में एंग्लोअमेरिकन-साम्राज्यवाद का समर्थक बन गया है, इसलिए उनके समाचार-पत्र क्यों नहीं सारी उपाधियों की वर्षा हमारे नेताओं पर करेंगे।

खोजीराम—पहले अंग्रेज हर नववर्ष और राजा के जन्म-दिनों पर उपाधि-वर्षा किया करते थे। जिन्हें दो अक्षर मिल जाते, गद्गद् हो जाता। आज उपाधि-वितरण समाचारपत्र करते हैं।

भगवानदास—तो एसिया में किसका नेतृत्व भारतवर्ष कर रहा है?

महीप—एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद के हित-साधन के सिवा और किसी बात में भी भारतवर्ष नेतृत्व करता नहीं दीख पड़ता। द्वितीय विश्व-युद्ध की अग्नि से भड़की बहुत-सी स्वतंत्रता की चिनगारियां एसिया के परतंत्र देशों में फैली हुई हैं। उनको बुझाने में वहां के प्रतिगामियों का नेतृत्व अवश्य भारत कर रहा है। बर्मा में इसे देख रहे हैं। मलाया में भी वही बात है। स्याम के फासिस्त विपुल-संग्राम अब हमारी मित्रता के पात्र हैं। सात अंवे का पका टोरी लंका का प्रधानमंत्री सेनानायक उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा का पात्र है। ईरान में प्रतिगामी शक्तियों का फिर से प्रचंड प्रभुत्व जम जाना उनके लिए आराम की सांस है। चीन में कम्युनिस्टों की विजय से अंग्रेजों और अमेरिकनों को जितना अफसोस हुआ, उससे कहीं अधिक देहली को है

और अब भी चाङकैशक के राजदूत का वक्तव्य कालम-का-कालम छापा जा रहा है। इंगलैंड के मजूर साम्राज्यवादी अभी भी कम्युनिस्ट पार्टी को वैध रखे हुए हैं, किंतु भारतवर्ष में कुछ प्रांतों में वह प्रकट अवैध घोषित है और कुछ में अप्रकट।

भगवानदास—लेकिन जब वह हिंसा और विध्वंसन पर उतर आये, तो गवर्नमेन्ट के लिए चारा क्या है?

महीप—वह हिंसा और विध्वंसन पर नहीं उतर आये, बल्कि उन्हें इसके लिए मजबूर किया जा रहा है; उनके लिए दूसरा रास्ता नहीं रखा गया। आखिर इंगलैंड में भी कम्युनिस्ट पार्टी है, उसके भी वही ध्येय और साधन हैं। वहां उनको लिखने-बोलने, काम करने का मौका है, इसलिए वहां तो कहीं ध्वंस या हिंसा नहीं दिखलाई पड़ती। हम अपने यहां के ध्वंसवाद के बारे में नहीं कहना चाहते, उस समस्या को भारत-सरकार जैसे चाहे तैसे हल करे। लेकिन यह तो नहीं होना चाहिए, कि जहां बड़े-बड़े साम्राज्यवादी देश तक चीनी कम्युनिस्टों से हाथ मिलाने को तैयार हैं, इसी में वह अपना लाभ समझते हैं, वहां हमारे तीसमारखां अपनी आन पर डटे हैं।

भगवानदास—क्या भावी एसिया में चीन का कोई स्थान रहेगा?

रामी—जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों में चीन एसिया का सबसे बड़ा देश है। वह भावी एसिया में महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखेगा तो कौन रखेगा?

महीप—आप अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रचारक "स्टेट्समैन" को उठाकर देख लीजिए। "स्टेट्समैन" और उसके गुरू विलायती "टाइम्स" नये चीन के साथ समझौते का कोई रास्ता ढूंढ़ रहे हैं। माउ-से-तुंग के स्पष्ट भाषाणों में वह आशा की किरणों खोज निकालने की कोशिश कर रहे हैं, और किसी तरह चाहते हैं, कि कम्युनिस्ट चीन के साथ व्यापारिक संबन्ध जल्दी-जल्दी पक्का हो जाय। बल्कि पक्का होने की प्रतीक्षा किये बिना ही, उनके व्यापारिक पोत शांघाई और तियन् चीन

की यात्रा भी कर रहे हैं चाङ् के सामुद्रिक घिराव की बात बिलकुल न मानकर अंग्रेज एड्मिलर ब्रिन्ड कह रहा है—कोई हमारे जहाजों पर सामुद्रिक या हवाई आक्रमण करेगा, तो अंग्रेजी युद्ध-पोत उसे बंद कर देंगे।

भगवानदास—अंग्रेजों का अब चाङ् पर भरोसा नहीं रह गया। बनियों का देश है, इसलिए वह कैसे उसे छोड़ सकते हैं ?

युधिष्ठिर—तो देख रहे हैं न भगवान भाई, "जैसी बहे बयार पीठ वैसी ही कीजे", इस नीति का पालन अंग्रेज और अमेरिकन करने के लिए तैयार हैं। अमेरिकन, अंग्रेजों और दूसरों से मिलकर कोई उपाय सोच रहे हैं, जिसमें एक ही साथ चीन के साथ कोई समझौता किया जा सके, लेकिन राजनीति की अजीर्णता के कारण हम अभी इसके बारे में कुछ सोच ही नहीं पाये हैं।

खोजीराम—समय तो अभी है, जबकि दोनों देशों के संबन्ध को बेहतर बनाने की कोशिश की जा सकती है। एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्य-वादी चाहते हैं, कि पहले ही से आगे बढ़कर नवीन चीन के मन से पिछली कड़वाहटों को भुलवा दिया जाय। आप देखेंगे, चीन में कम्यु-निस्टों की केन्द्रीय सरकार होते ही भारत से भी पहले हाथ मिलाने के लिए एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद तैयार होंगे। यह कह देंगे, हम कम्युनिज्म के विरोधी हैं, लेकिन चीनी कम्युनिस्ट बहुत भले आदमी हैं।

भगवानदास—हमारे राजनीति-विशारद सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं। वह पश्चिमी कूट नीतिज्ञों की भांति "मुँह में राम बगल में छुरी" को नहीं पसन्द करते।

महीप—अर्थात् वह एकबोला हैं, एक बार जो बात मुंह से निकल गई—उसे ब्रह्मगांठ या बंदर की मुट्ठी मान लेते हैं। लेकिन मैं कहूंगा, कि उन्हें कुछ सूझता ही नहीं, इसलिए पहले की बात पकड़े रहते हैं। जब कोई झकझोरता है और ठोकर लगाता है, तब कुछ मिनटों के लिए देखने-सुनने की कोशिश करते हैं।

रामी—शायद उनको ख्याल होगा, कि पेपिंग और नानकिंग हमसे बहुत दूर हैं, अभी जल्दी क्या पड़ी है ?

युधिष्ठिर—पेपिंग और नानकिंग दूर होंगे रामी बहिन, किंतु मानसरोवर और शिप्की दूर नहीं हैं, हमारा सीमान्त उनसे मिलता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि तिब्बत चीन के भीतर है।

मुखपात्री—तो हमारा मानसरोवर तीर्थ और सदाशिव का कैलाश चीनी कम्युनिस्टों के हाथ में जाने वाला है ?

महीप—उनके लिए चिंता न करें स्वामीजी, कम्युनिस्टों के आ जाने पर तो हम काशी से दो घंटे में उड़कर मानसरोवर पहुँच जायंगे। सबेरे आठ बजे जलपान करके चलने पर कैलाश-मानसरोवर का दर्शन ही नहीं परिक्रमा भी करके दो बजे काशी लौट आयंगे।

मुखपात्री—बड़ा आनन्द रहेगा नारायण, मेरी बड़ी इच्छा दर्शन करने की है; किंतु सुनता हूं वहां जाना मुश्किल है, रास्ते में बहुत बर्फ पड़ती है।

महीप—उसकी चिंता न करें; कैलाश-मानसरोवर की परिक्रमा भी विमान पर बैठे-बैठे हो जायगी। सर्दी थोड़ी मालूम होगी, उसके लिए जरा कंबल लपेटने की आवश्यकता पड़ेगी। आठ बजे काशी से चले, दस बजे मानसरोवर के किनारे पहुंचे, फिर उसे अच्छोद सरोवर के हिमशीतल जल में, हिम्मत हुई तो, एक डुबकी लगाई, और विमान पर बैठे कैलाश-मानसरोवर की परिक्रमा करके लौटकर काशी।

मुखपात्री—इसी वक्त क्यों नहीं विमान-यात्रा का प्रबंध हो जाता ? हमारे भाई करपात्री जी तो आजकल केवल विमान ही की यात्रा करते हैं, मैं तो केवल कैलाश-मानसरोवर की लालसा रखता हूँ।

महीप—वह तिब्बत की सीमा के भीतर है, तिब्बती सरकार विमान के आने की आज्ञा नहीं देती।

भगवानदास—बेवकूफ हैं, यदि उनके देश और भारत के बीच में

विमान उड़ने लगें, तो कम्युनिस्टों के आने पर भागनेवालों को बहुत सुभीता रहेगा।

महीप—कोई-कोई चाहते भी हैं, किंतु दूसरों के डर के कारण मुंह खोलकर कहते नहीं। तिब्बत भी चीन के भीतर है। चीन सारा कम्युनिस्टों के हाथ में जा रहा है, क्या इसमें कोई संदेह है? उस वक्त हमारा जो आसाम से लेकर लद्दाख तक चीन के साथ एक सीमान्त होगा, उसे देखते हुए हमें भावी चीन के बारे में अपनी कोई नीति निर्धारित करनी चाहिए या नहीं?

भगवानदास—जरूर करनी चाहिए।

मुखपात्री—अवश्य करनी चाहिए। मुझे तो कैलाश-मानसरोवर का ख्याल आता है।

महीप—उसके लिए निश्चिन्त रहें स्वामीजी, चीनी कम्युनिस्ट सभी ऐसे दुर्गम स्थानों में वैमानिक यातायात स्थापित करेंगे। ल्हासा से मानसरोवर तक उनके विमान उड़ते रहेंगे। वह खुशी से भारतीय तीर्थयात्री-विमानों को मानसरोवर जाने की इजाज़त दे देंगे, और अपने विमान भी गया और बनारस ले आया करेंगे।

मुखपात्री—फिर तो कैलाश-मानसरोवर की यात्रा भारतीयों के लिए बहुत सुगम हो जायगी और हर साल पचासों हजार आदमी वहां जाया करेंगे। उनके लिए यह कोई घाटे का सौदा नहीं रहेगा; जो यात्री जायंगे, वह वहां खर्च करेंगे ही। विदेशी सिक्का जमा करने के लिए यात्रियों का आना बहुत लाभदायक होता है।

भगवानदास—तो हमें नवीन चीन के लिए कैसा बर्ताव करना चाहिए?

युधिष्ठिर—सबसे पहले हमें नवीन चीन का स्वागत करना चाहिए। वह हमारा शक्तिशाली पड़ोसी है। उसका हमारा पुराना सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध है। हम दोनों मिलकर यूरोपीयनों के दुःशासन को एसिया से सदा के लिए खतम कर सकते हैं।

खोजीराम— बर्मा, स्याम, इन्दोचीन में हमारी नीति क्या होनी चाहिए ?

युधिष्ठिर—उदीयमान सूर्य को लोग अर्घ्य देते हैं, अस्त होनेवाले को नहीं। एसिया के सभी देशों में नई शक्ति उदीयमान हो रही है। सारे एसिया की मुक्ति अवश्यम्भावी है, फिर एसिया अपने ऊपर यूरोपीय प्रभुता को बर्दाश्त नहीं कर सकता। हमें तय करना होगा, कि हम इस उदीयमान शक्ति का साथ दें या अस्त होनेवाली शक्ति का।

महीप—मुझे तो जान पड़ता है, अस्त होनेवाली शक्ति का साथ देना हमारी सरकार पसन्द करती है। वह कम्युनिज्म के विरोध में इतनी पागल और अन्धी हो गई है, कि उचित-अनुचित, संभव-असंभव का विचार नहीं कर सकती। कोरिया में दोनों शक्तियों का संघर्ष है। उत्तरी कोरिया में नवीन कोरिया का जन्म हुआ है, और दक्षिणी कोरिया में जापानी साम्राज्यवादियों का स्थान अमेरिका ने लिया है। हमारे प्रतिनिधि वहां अमेरिका का साथ दे रहे हैं।

भगवानदास—वह तो युक्तराष्ट्र-संगठन की ओर से नियुक्त होकर गये हैं।

महीप—किसी युक्तराष्ट्र-संगठन के हों, किन्तु हैं वह अमेरिकन गुट के साथ। नवीन कोरिया को उसके उत्तरी इलाके तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, वह अवश्य दक्षिण में जाकर रहेगा। कोरिया दो टुकड़ों में सदा बँटा नहीं रहेगा। सड़ी-गली सामन्ती-पूँजीशाही व्यवस्था को अमेरिकन तोपें बहुत दिनों तक दक्षिण कोरिया में नहीं कायम रख सकेंगी। तब हमारे व्यवहार का भावी प्रभाव कोरिया के ऊपर कैसा पड़ेगा ?

रामी—और जापान में ?

युधिष्ठिर—आज की दुनिया में कोई सभ्य शिक्षित देश अधिक दिनों तक गुलाम नहीं रखा जा सकता, न उसे विद्या और संस्कृति के नीचे तल पर उतारा जा सकता है। अमेरिका को जापान के स्कूल जारी

रखने पड़े। कुछ समय तक अमेरिका जापान के बड़े-बड़े कारखानों—विशेषकर अस्त्र-शस्त्र के कारखानों—को उखाड़ ले जाना चाहता था, पर अब उसका रुख बदल रहा है। अमेरिकन साम्राज्यवाद समझ रहा है, कि रूस के मुकाबले के लिए जापान और जर्मनी को सैनिक तौर से मज़बूत रखना चाहिए। अमेरिका की इस चाल से आस्ट्रेलिया और न्युजीलैंड बड़े चिन्तित हो उठे हैं; एक बार जापान फिर उठा, तो वह चीन की ओर नहीं आस्ट्रेलिया और न्युजीलैंड की ओर जायगा, और एक महाद्वीप के बराबर के आस्ट्रेलिया को एक करोड़ से भी कम श्वेताङ्ग छेंके नहीं रह सकते। जापान के आक्रमण के समय डर लग रहा था, कि आस्ट्रेलिया की भी वही हालत न हो, जो इन्दोनेसिया, इन्दोचीन और बर्मा की हुई। आज अमेरिका के जापानी सैनिक शक्ति के प्रोत्साहन देने से न्युजीलैंड और आस्ट्रेलिया उसी तरह चिन्तित हैं, जैसे जर्मनी सैनिक शक्ति को प्रोत्साहन देने से फ्रांस। जापान में भी नवीन और प्राचीन स्वार्थों का संघर्ष है। सभी जगह प्राचीन स्वार्थों की रक्षा के लिए अमेरिका तत्पर दिखाई पड़ता है, लेकिन जापानी जनता अमेरिका के परमाणु बम का मजा भी चख चुकी है और जापानी सामन्तों और उनके सूर्यवंशी मिकादो की तानाशाही को भी। प्रगतिशील शक्तियां वहां सिर उठा रही हैं। "सोवियत् रूस ने एक लाख से भी अधिक कैदियों को अपने यहां बन्द करके दास बना रखा है," कहते उन्हें वापस भेजने की मांग जापानी सरकार और उनके अमेरिकन संरक्षकों ने बड़े ज़ोर-शोर के साथ की; लेकिन जब डेढ़-दो हजार जापानी सैनिक जापान में पहुँच कम्युनिस्ट नारे और गीत गाते जापानी नगर की सड़कों से गुजरे, तो जापानी सरकार और मेकआर्थर के सिर में दर्द होने लगा। अब वह पछता रहे हैं, कि क्यों हमने मांग की। जान पड़ता है, रूसियों ने अपने यहाँ इन जापानी सैनिकों को रखके उनकी मत फेर दी। अभी तो और भी आने वाले हैं। कम्युनिज़म की बीमारी फैलाने वाले ढेर-के-ढेर कीटाणुओं का यह आवाहन है।

भगवानदास—जान पड़ता है यह महामारी किसी देश को नहीं छोड़ेगी। आस्ट्रेलिया के कोयला की खानवाले मजूर एक हड़ताल कर देते हैं, कि "कम्युनिस्ट" "कम्युनिस्ट" कहकर त्राहि-त्राहि मच जाती है। यदि इंगलैंड में रेलवे मजूर या बन्दर के खलासी काम छोड़ देते हैं, तो वहाँ भी कम्युनिस्टों का नाम लिया जाता है। हमारे यहां भी हर हड़ताल का दोष कम्युनिस्टों के ऊपर थोपा जाता है।

युधिष्ठिर—कम्युनिस्टों को इतना सर्वशक्तिमान मानना अपने पक्ष को निर्बल करना है। दरअसल सभी जगह कम्युनिस्ट नहीं पहुँचते, न वह प्रेरक होते हैं, लेकिन उचित तकलीफों को दूर करने के लिए मांग की जाती है, तो कम्युनिस्टों की आड़ में पूँजीपति अपना काम बनाना चाहते हैं। यह "भेड़िया आया भेड़िया आया" की गुहार बहुत बुरी है। सवाल यह है, चाहे कम्युनिस्ट के मत्थे या किसी दूसरे प्रगतिवादी दल के मत्थे थोपिये, यदि आप उन तकलीफों को दूर करना नहीं बल्कि केवल बल से दबाना चाहेंगे, तो इससे कोई फायदा नहीं होगा।

भगवानदास—सभी जगह तो परस्पर विरोधी शक्तियाँ देखने में आती हैं, एसिया का कोई देश नहीं, जहां यह द्वन्द्व न चल रहा हो। हमारे लिए यही निश्चय करना मुश्किल है, कि किसके साथ सहानुभूति दिखलाई जाय।

युधिष्ठिर—भगवान भाई, आप सिर्फ अपनी बात कह रहे हैं। जिनको नीति निर्धारित करनी है, वह तो निश्चय करके उस पर अमल भी करने लगे हैं। सवाल इतना ही है, कि भारतवर्ष का हित किसमें है—एसिया की प्रतिगामी शक्तियों और उनके पोषक एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों का साथ देने में, या एसिया की नई शक्तियों के साथ होने में? कौन-सी नई शक्तियां हैं और कौन प्रतिगामी, इसे समझना मुश्किल नहीं है। जो एंग्लो-अमेरिकन-साम्राज्यवाद के बल पर खड़ी हैं, वह सभी प्रतिगामी शक्तियां हैं। एंग्लो-अमेरिकन-साम्राज्यवाद की ओर से इतना बल पाने पर भी उनके पक्ष में विजय के

पचीसवाँ अध्याय

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान

रामी ने कहा—जिस वक्त भारत का विभाजन घोषित हुआ, उस वक्त हम लोगों को बहुत धक्का लगा। कितने ही लोगों को तो विश्वास नहीं होता था, कि कैसे एक ही हिन्द दो देशों में बँट जायगा। लेकिन आज दो साल होने को आये, अब देखते हैं तो कोई न विभाजन का नाम लेता है, न अखंड हिन्दुस्तान का। पिछले साल तक कुछ लोग गंभीरतापूर्वक कहते थे—अखंड हिन्दुस्तान फिर से स्थापित करके रहेंगे, लेकिन अब उसकी कोई बात नहीं करता।

युधिष्ठिर— विभाजन को फिर से मिटाना और अखंड हिन्दुस्तान बनाना वस्तुतः अब हमारे लिए चर्चा की भी बात नहीं है। हम जानते हैं, कि पाकिस्तान को मिटाके फिर भारत को एक करना सारी दुनिया की राय के विरुद्ध है और उसे केवल अपनी मजबूत सैनिक शक्ति के बल से ही किया जा सकता है। अंग्रेजों को देख ही रहे हैं, वह पाकिस्तान की सीमा उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत की सीमा तक ही नहीं मानते, बल्कि कबीलों को भी पाकिस्तान के अन्तर्गत बतला रहे हैं। पश्तो बोलने वाली जनता दो राज्यों में बँट रही है, इसके लिए वह कहेंगे—यह तो पहले से भी था।

भगवानदास—यदि कहीं पाकिस्तान की मत मारी जाय, और वह स्वयं ही सैनिक छेड़खानी शुरू कर दे?

युधिष्ठिर—छेड़खानी तो शुरू किये हुए है। काश्मीर में अपनी

सेना भेजकर कुछ दिनों तक इन्कार करता रहा, जब अंग्रेजों की शह मिली, तो उसने स्वीकार कर लिया, कि हमारी सेना स्वतंत्र काश्मीर के लिए लड़ रही है। लेकिन उसका उत्तर क्या हमने पाकिस्तान पर आक्रमण करके दिया ? यद्यपि इसका हमें पूरा अधिकार था, कि यदि उसने हमारी भूमि पर आक्रमण किया है, तो दुश्मन के देश पर आक्रमण करें।

भगवानदास—तो क्या हम सदा पाकिस्तान की इस तरह की छेड़खानी को बर्दाश्त करते रहेंगे ?

युधिष्ठिर—नहीं बर्दाश्त कर सकते। यदि कहीं पाकिस्तान ने काश्मीर के बाहर भी भारत की सीमा के भीतर आक्रमण कर दिया, तो इसमें शक नहीं, तब हमें पाकिस्तान से लड़ना होगा।

महीप—मैं तो समझता हूँ, एक बार शस्त्र-परीक्षा अच्छी तरह हुए बिना पाकिस्तान की अकल ठिकाने नहीं लगेगी। यह माना, कि अंग्रेजों ने पाकिस्तान को अच्छे सैनिक-विमान—बमवर्षक और योधक दे रखे हैं, जिनसे हमारे नगरों को नुकसान पहुंचेगा, किन्तु तो भी इसके डर के मारे हम पाकिस्तान की छेड़खानी पर चुप नहीं रह सकते। पाकिस्तानी मुल्लों को बतला देना होगा, कि भारत के साथ युद्ध कोई खेल नहीं है। लेकिन तब भी यह आशा न रखें, कि आप सारे पाकिस्तान को हड़प कर जायंगे। हां, यह निश्चित है कि उसके फलस्वरूप पठानिस्तान अलग हो जायगा। यह भी निश्चित है कि पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होकर भारत से मित्रता रखने वाला एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायगा। इस युद्ध का यह भी परिणाम हो सकता है, कि अंग्रेज कमीशन ने भारत-पाकिस्तान की सीमा निर्धारित करने के समय खामखाह भारत को दिक करने तथा झगड़े की जड़ बनाये रखने के लिए जो गड़बड़ी की है, वह मिट जाय, पूर्वी पाकिस्तान में कलकत्ता-दार्जिलिङ्ग रेलवे लाइन सारी भारत में आ जाय, और कटिहार से अमीनगाँव जानेवाली लाइन भी भारत की हो जाय, पूर्वी पंजाब की

सीमा भी पश्चिम की ओर कुछ हट जाय। इन परिवर्तनों के अतिरिक्त, मैं नहीं समझता, अखण्ड भारत को फिर से बनाने के लिए इस पीढ़ी को कोई मौका मिलेगा।

भगवानदास—क्या कभी भी ऐसा अनुमान कर सकते हैं, कि भारत फिर से अखण्ड हो जायगा?

युधिष्ठिर—यह तो भगवान भाई, आप ज्योतिषियों से पूछी जानेवाली बात मुझसे पूछ रहे हैं। मैं ज्योतिष पर विश्वास नहीं रखता, इसलिए इस बात में आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। हां, एक ही रास्ता मालूम होता है, जिसके कारण शायद फिर भारत एक हो जाय। वह है भारत में पूर्ण समाजवाद की स्थापना और उसके बाद सारी शक्ति लगाकर अपने देश को उद्योग-प्रधान देश बना डालना। भारत के पास उद्योग-धन्धे के जितने साधन हैं, पाकिस्तान के पास उतने नहीं हैं। उतने क्या दशांश भी नहीं हैं। समाजवादी तथा उद्योग-प्रधान देश होने पर हमारे जनसाधारण का जीवनतल ऊँचा हो जायगा। यदि वह तल इतना ऊँचा हो, जितना कि सोवियत्-रूस में है, तो सीमा के परले पार के लोगों पर उसका भारी असर होगा और बहुत मुश्किल से वहां क्रान्ति को रोका जा सकेगा। लेकिन इसके लिए साथ ही भारत में साम्प्रदायिकता का ज़ोर न बढ़ना चाहिए। सरकार धर्म के सम्बन्ध में निष्पक्ष रहे। भारतीय-संस्कृति को पूर्णतया अक्षुण्ण रखते धार्मिक विचार रखने में हरेक व्यक्ति स्वतन्त्र रहे और साथ ही पाकिस्तान की प्रतिगामी शक्ति की पीठ ठोकने के लिए बाहरी शक्तियों में सामर्थ्य न रह जाय।

रामी—यह तो नौ मन तेल की शर्त है।

युधिष्ठिर—तो समझ लें, "न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।" लेकिन यदि कोई भारत के एक होने का कारण हो सकता है, तो शर्त है शोषण-विहीन समाजवादी राजनीति द्वारा देश के धन में बहुत भारी वृद्धि, और उसमें सारी जनता का सहभागी होना।

महीप—ऐसा होने पर तो लङ्का और बर्मा को भी भारतीय प्रजातन्त्र में सम्मिलित होने में कोई बाधा नहीं रहेगी।

युधिष्ठिर—ठीक कहा। फिर तो सारे एसियाको एक युक्तराष्ट्रसंघ में सम्मिलित किया जा सकता है।

भगवानदास—तो हमारे जो भाई पाकिस्तान से भाग आये हैं, जो अत्याचार उन पर हुए हैं और उनकी जो करोड़ों की सम्पत्ति वहां छूट गई है, इन सबका कुछ नहीं होगा ?

युधिष्ठिर—हमारे भाइयों को जो अत्याचार सहना पड़ा और मुसलमानों को भी हमारे सीमान्त के भीतर, चाहे पीछे ही सही, कम जुल्म नहीं सहना पड़ा, यह कुछ भी नहीं होता, यदि बँटवारे के लिए काम करने वाली शक्ति के बल और छल को हमारे लोग समझ पाये होते। कितने ही लोग इसका सारा दोष कांग्रेस नेताओं के ऊपर थोपते हैं, लेकिन यह बिलकुल ठीक नहीं है। देश के नेताओं के लिए चारा क्या था, जबकि अंग्रेज भारत को बांटने पर तुले हुए थे। सैनिक शक्ति उनके हाथ में थी और उनके शह देने पर मुसलमान बहुमत वाले भूखंडों में और भी खूनखराबी होती। अंग्रेज द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण अत्यंत निर्बल हो गए थे, ऊपर से अमेरिका और दूसरे देशों का दबाव पड़ रहा था, कि वह हिन्दुस्तान को छोड़ दें। भारत के भीतर भी स्वतन्त्रतापक्षीय बड़ी शक्ति तैयार हो गई थी। यह सभी मजबूरियां उन्हें भारत छोड़ने के लिए संकेत कर रही थीं। तो भी इस बात को अंग्रेजों ने मजबूती से पकड़ रखा था, कि मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों को हिन्दुओं के हाथ में नहीं देंगे—"या तो देश का बँटवारा स्वीकार करो, नहीं तो हम तुम्हारी छाती पर बैठे रहेंगे। यदि हमसे झगड़ा करोगे, तो मुसलमानों को भड़काकर सारे भारत को खून में डुबा देंगे, और निःशस्त्र तुम हमारी सेना और इस्लामी जहादियों का मुकबला नहीं कर सकते।" यह ऐसी स्थिति थी, जिसमें वह छोड़ और कुछ नहीं किया जा सकता था, जो कि कांग्रेस के नेताओं ने किया।

भगवानदास—कुछ लोग कहते हैं, कि हमें विभाजन न स्वीकार करके लड़ाई जारी रखनी चाहिए थी।

युधिष्ठिर—यह उन लोगों की तरफ से कहा जाता है, जो कि विश्व-युद्ध में अंग्रेजों के सहयोगी बने रहे, और जिनमें से कुछ तो अंग्रेजों की अधिक खुशामद और सद्भावना से स्वराज्य पाने की आशा रखते थे। हिन्दूसभा के पदवीधारी, अंग्रेजों के खुशामदी जमींदार और सामंत, सेठ और पंडित कहां लड़ाई जारी रखने की हिम्मत रखते थे, सो भी अंग्रेज तथा मुसलमान दोनों के विरुद्ध। छोड़िए इन अंग्रेजों के पिट्ठुओं की बातें। अब बीती बात की चिंता फजूल है। आज जो बहादुरी की डींग मारते कांग्रेस के नेताओं को विभाजन स्वीकार करने के लिए बदनाम करते हैं, वह उनकी केवल बकवाद है।

भगवानदास—तो हमें मानना होगा, कि कांग्रेस नेतृत्व ने बँटवारे को स्वीकार किया, वह इसलिए, कि उनके सामने और कोई रास्ता नहीं था। यदि अब भी कुछ लोग समझते हैं, कि भारत को अखण्ड रखा जा सकता था, तो कांग्रेसियों ने देश को स्वतन्त्र कराके दो साल तक सुरक्षित रखके जो लोगों में एकता और सैनिक-शक्ति दृढ़ कर दी है, अब वह मैदान में आके और इस शक्ति को लेकर फिर भारत को अखण्ड बनाने की कोशिश करें।

रामी—आप कह रहे थे बंटवारे के समय की खूनखराबी के बारे में, क्या उसे रोका जा सकता था?

युधिष्ठिर—हाँ, बहुत हद तक रोका जा सकता था। जब बंटवारा निश्चित-सा मालूम हो चुका, तो आवश्यकता इस बात की थी, कि दोनों ओर के निवासियों का विनिमय कर लिया जाय, अर्थात् पाकिस्तान क्षेत्र में पड़े हिन्दुओं को हिन्दुस्तान भेज दिया जाता, और सारे मुसलमानों को इधर-से-उधर भेज दिया जाता। सत्ता हस्तान्तरित करने के पहले यह किया जा सकता था। लेकिन हमारे नेताओं ने इस विषय में दुनिया के इतिहास को कम पढ़ा। जान पड़ता है, वह सोते रहे

यूनान और तुर्की में सीमाओं का हेर-फेर होते समय निवासियों का परिवर्तन किया गया था। पोलैंड के भीतर २० साल से रहने वाले उक्रैन और पश्चिमी बेलोरुसिया के भाग को मिलाकर जब भाषा की सीमा को सीमांत माना गया, उस समय भी निवासियों का विनिमय किया गया; यद्यपि रूस और पोलैंड दोनों समाजवादी तथा एक संस्कृति के देश थे, लेकिन डर था कि कहीं शताब्दियों के छिपे वैमनस्य के कारण झगड़ा न उठ खड़ा हो। हमारे लिए भी यह ध्यान रखना आवश्यक था, और बंटवारे के साथ-साथ निवासियों का विनिमय किया जाता। पहले ही से घोर अशांति के लक्षण दीख रहे थे, इसलिए यह समझ लेना मुश्किल नहीं था, कि निवासियों का विनिमय करना प्रथम करणीय है। उस समय वह खून खराबी होने की कम संभावना होती। लेकिन हमारे नेता तो अखण्ड भारत के अस्तित्व को ध्रुव मानते थे, और मीठी-मीठी बातें करके आशा रखते थे, कि शताब्दियों के वैमनस्य को वह फूट निकलने नहीं देंगे। आज भी खतरा गया नहीं है। मुसलमानों की मनोवृत्ति बदली नहीं है, जो भाषा और संस्कृति के विषय में उनके घोर विरोधी भाव बतला रहे हैं, और जो उन्हें अवश्य पंचमांगी बना रखेंगे।

खोजीराम—हमने समस्याओं पर काफ़ी विचार करते, अपनी कमजोरियों तथा दोषों को भी दिखलाया। क्या उन्हें देखकर पाकिस्तान को हमारे ऊपर कुदृष्टि डालने की संभावना नहीं है?

युधिष्ठिर—पाकिस्तान कभी भांग खा ले और घातक मूर्खता कर उठे, यह बिलकुल असंभव नहीं है, क्योंकि पाकिस्तान के नेता अब भी बृहत्तर इस्लामवाद को बड़े गर्व के साथ पकड़े हुए हैं, और लियाकत अली तथा ख़लीकुज़्ज़मा जैसे उत्तरदायी नेता बंगाल की खाड़ी से, बल्कि इन्दोनेसिया को लेते हुए, मराको तक इस्लामिस्तान बनाने का खब्त सोच रहे हैं। इतिहास बतलाता है कि धर्म के नाम पर इस्लामी मुल्कों को एक राष्ट्र के रूप में कभी नहीं परिणत किया जा सकता।

अफगानिस्तान-पाकिस्तान के झगड़े को हम देख रहे हैं। ईराक, ट्रांस-जार्डन और सऊदी अरब के बीच के उग्र वैमनस्य को भी हम जानते हैं। काबा की मस्जिद में १३ सौ वर्ष पहले की तरह देश-देशान्तरों के मुसलमानों का तहमद बांध लेटके नमाज पढ़ डालना दूसरी बात है, और सारे मुसलमानों को एक संगठित राज्य में परिणत करना बिलकुल दूसरी बात है। हाँ, इस बृहत्तर इस्लामवाद से एक जरूर लाभ या हानि हुई है, वह यह कि मुसलमान दुनिया की सबसे पिछड़ी जातियों में रह गए हैं।

रामी—पिछड़ी क्या, जंगली जातियों में।

युधिष्ठिर—जंगलीपन से मेरा मतलब नहीं, बल्कि इस्लामिक स्वतन्त्र जातियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठाकर जितना आगे बढ़ने का अवसर था, उनको धर्मांधता ने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। "अरब जातियों में क्रांति की आवश्यकता है। इस्राईल के ६ लाख यहूदियों ने उन्हें हरा दिया, क्योंकि वह अब भी सामन्ती युग की उद्योग-धंधे में पिछड़ी जातियां हैं।"[1] कितने हिन्दू अब भी पाकिस्तान को बड़े भय की दृष्टि से देखते हैं, उनको मालूम होता है, कि मुसलमान बहुत लड़ाके हैं, और उनकी पीठ पर मिश्र और तुर्की तक के सारे इस्लामिक राज्य हैं।

भगवानदास—क्या यह बात ठीक नहीं है? क्या धार्मिक कट्टरता के नाम पर सभी जहाद करने के लिए तैयार नहीं हो जाते? क्या हमारे यहां रह गये साढ़े तीन करोड़ मुसलमान अपनी अपरिवर्तनीय मनोवृत्ति से हमारे लिए खतरे की चीज नहीं हैं?

युधिष्ठिर—छुरेबाज जहादियों का जमाना लद गया। आज के समय में बंदूक और तमंचे को भी छुरा ही समझ लीजिए। आधुनिक ढंग के सैनिक अस्त्र-शस्त्र के उत्पादन का जितना सुभीता हमारे पास

---

१. लुई फिशर "हिंदुस्तान टाइम्स" (दिल्ली ३१-७-४६)

है, उतना पाकिस्तान को नहीं है। सेना-संचालन और यंत्रीकरण को सफलतापूर्वक पूरा करने और उसके इस्तेमाल करने की जितनी क्षमता हमारे पास है, और जितने परिमाण में, वह पाकिस्तान के पास नहीं है। हम जितने सुशिक्षित यंत्र-निष्णात सैनिक मैदान में ला सकते हैं, उसका एक चौथाई भी पाकिस्तान नहीं ला सकता।

भगवानदास—लेकिन दूसरे इस्लामिक-देश भी अगर मिल जायं, तो?

युधिष्ठिर—दूसरे इस्लामिक देश कहने से आपको आधे दर्जन नाम सुनाई देते हैं, लेकिन आपको यह नहीं मालूम है, कि वह सब मिलकर पाकिस्तान की जनसंख्या के आधे ही होंगे; सैनिक शिक्षा प्राप्तों में तो वह पाकिस्तान के चौथाई से भी कम होंगे। तुर्की छोड़कर और किसके पास आधुनिक ढंग की सेना है? फिर आपको मालूम नहीं है, कि इस्लामिक देशों में आपस में कितना वैमनस्य है।

खोजीराम—अफगानिस्तान और पाकिस्तान का झगड़ा हमें मालूम है।

युधिष्ठिर—और उसके मिटने की तब तक संभावना नहीं, जब तक कि पाकिस्तान के भीतर के पश्तो भाषा-भाषी पठान उससे निकल न जायं, अथवा अफगानिस्तान को भी पाकिस्तान जीतकर अपने भीतर मिला न ले। एक ही जाति को दो टुकड़ों में बाँटके अलग राज्यों में रखना भयंकर झगड़े की जड़ है। तुर्की फिर बृहत्तर इस्लामवाद के फेर में पड़ने नहीं जा रहा है, न छुरा-युग में अब भी वर्तमान शिया ईरान ही इस्लामी देशों के साथ मिलकर भारत के विरुद्ध अभियान करने के लिए तैयार हो सकता है। हमारे भाई जिस वक्त पाकिस्तान से मिश्र-मराको तक के इस्लामी राज्यों की बात करते हैं, तो समझते हैं, कि उनमें से एक-एक करोड़ों जनसंख्या वाले महान् आधुनिक राष्ट्र हैं। इस्लामिक राज्यों में सुलतान अब्दुल्ला का ट्रांसजार्डन भी है, जो हमारी एक छोटी-सी तथा गरीब तहसील (सब-डिवीज़न) से बढ़कर नहीं है।

उससे थोड़े ही बड़े ईराक और शाम के राज्य हैं।

रामी—फिर तो यह झूठा भ्रम है।

युधिष्ठिर—और क्या? हमारे अनजाने भाई इस्लामिक राष्ट्रों के नामों को सुनकर रोब में आ जाते हैं। उन्हें यह पता नहीं, कि तुर्की को छोड़ ये सारे इस्लामी राज्य पुराने युग में हैं। वहाँ आधुनिक साइंस के बड़े शिक्षणालयों का पता नहीं है, न उनकी भाषाओं में आधुनिकतम विज्ञान के ग्रंथों का नाम है। ख़लीक़ुज़्ज़मा बृहत्तर इस्लामवाद का झंडा फहराने के लिए कराची से निकले हैं, इसका कोई महत्व नहीं है।

भगवानदास—फिर पाकिस्तान किसके बल पर कूदता है।

युधिष्ठिर—न इस्लाम के बल पर, न इस्लामी देशों के बल पर। वह कूदता है एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों के बल पर, जो चाहते हैं, कि हिन्दुस्तान पाकिस्तान का वैमनस्य जारी रहे, जिसमें दोनों मुट्ठी से बाहर न जायं। चीन में आधी शताब्दी तक यूरोपीय साम्राज्यवादियों की सफलता रही—वहाँ गृहयुद्ध बनाये रख कर। भारत में भी इस वैमनस्य को स्थायी रूप देने के लिए अंग्रेजों ने भारत का बँटवारा कराया। अब लियाकत अली ईद (जुलाई १९४९ ई०) के अवसर पर भारत में रह गए अपने परतंत्र भाइयों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते उनकी स्वतंत्रता की कामना करते हैं। यदि हिंदी मुसलमानों के मन से अब भी दो राष्ट्रों की भावना दूर नहीं हुई, तो हमारे लिए यह होगी बड़ी खतरे की बात। धर्म में ईसाइयों की भाँति स्वतंत्र रहते हुए भाषा और संस्कृति में दूसरे देशभाइयों से एक हो जाने में ही हमारा और उनका दोनों का कल्याण है।

महीप—धार्मिक कट्टरता तो जान पड़ता है, जातियों के लिए महंगी चीज है। इस्लामी जातियां अपनी कट्टरता का गर्व करती हैं, किंतु उसके कारण उन्हें कूपमंडूकता और पिछड़ेपन के सिवा कुछ नहीं हाथ आया।

भगवानदास—लेकिन यदि यह दोष था, तो इस्लाम ने सफलता कैसे प्राप्त की ?

युधिष्ठिर—इस्लाम की सफलता किसी उच्च दार्शनिक विचार, महान् सदाचार या भव्य आदर्शवाद के कारण नहीं हुई। आप कुरान को उठाकर किसी धर्म के प्रमुख ग्रंथ से मिलाके देख लीजिए, वह हर तरह से बहुत निम्नकोटि का जंचेगा। हां, पीछे इस्लामी देशों में ऐसे महान् आदर्शवादी कवि और दार्शनिक पैदा हुए, लेकिन उन्हें इस्लाम की उपज नहीं कह सकते। उनमें कितने ही ईरान के थे, जो पहले ही से बहुत उच्च संस्कृति का धनी था। कितने ही मध्य-एसिया के थे, जहाँ ईरान और भारत ने मिलकर संस्कृति की ऊंची अट्टालिका खड़ी की थी। यही बात इस्लामिक स्पेन के बारे में कह सकते हैं, जहां के दार्शनिक ग्रीक-प्रभाव से प्रभावित हुए थे। यदि इस्लामी सफलता का कारण ढूंढ़ें, तो यही मालूम होगा, कि विजित देशों की जनता अत्यन्त पतित सामंतों के जुए के नीचे कराह रही थी। इस कमजोरी का लाभ अरबों ने बड़ी होशियारी से उठाया। दूसरी सफलता की कुंजी थी : जैसे भी हो स्त्रियों को रखके औलाद पैदा करके बढ़ाना। धर्मप्रचार का यह अनूठा ढंग आप किसी धर्म के लिए शोभा की बात नहीं कह सकते। अस्तु। पाकिस्तान से, सिवाय छोटी-मोटी पंचमांगी कठिनाइयों के, हमारे लिए भय का कोई कारण नहीं है, यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं है, कि हम अपने सैनिक बल को न बढ़ाएं तथा अपनी सामाजिक विषमताओं और सहस्राब्दियों की सड़ी गली रूढ़ियों को पकड़े रहें।

भगवानदास—पाकिस्तान से डरने की बात न हो, लेकिन पाकिस्तान की पीठ ठोंकनेवाले उसे हथियारबंद करनेवाले अंग्रेज तो मौजूद हैं।

युधिष्ठिर—तो क्या आप अंग्रेजों के असली रूप को पहचानने लगे? पहचानने लगे तो उनके साम्राज्य में रहने के लिए लालायित क्यों? वस्तुतः अंग्रेज अभी अपनी चाल से बाज नहीं आये। अदन,

त्रिंकोमली (लंका), सिंगापुर और हांगकांग से चिमटे रह, हमारे समुद्र पर हावी रहते अब भी वह अपनी साम्राज्य-वासना में मस्त हैं। हमें यदि किसी से डर है, तो उन्हीं से। भारत के किनारे ही नहीं, एसिया के किनारे से भी इन्हें विदा करके ही हम निश्चिन्त रह सकते हैं। पाकिस्तान अपनी पिछड़ी मनोवृत्ति के कारण पिछड़ा और अंग्रेजों के हाथ का खिलौना रहेगा। एसिया को उसके इस दारुण शत्रु से मुक्ति तभी मिल सकती है, जबकि नवीन चीन और नवीन भारत मित्रता के घनिष्ठ सूत्र से बँध जायं। हमें पाकिस्तान से चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। यदि उसे पागल कुत्ता काट जाय, तो हम घाटे में नहीं रहेंगे, और साथ ही एक ही झोंक में पाकिस्तान के तीन टुकड़े बन जायँगे।

महीप—आपकी बातों में क्या इस्लाम-विरोधी धार्मिक पक्षपात नहीं काम कर रहा है?

युधिष्ठिर—जो कुछ मैंने कहा, उसे तथ्य और ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरूप कहा। मैं यदि इस्लामिक धर्मांधता का विरोधी हूँ, तो हिन्दू धर्मांधता, उसके जात-पांत और सैकड़ों हानिकारक रूढ़ियों का भी उससे कम शत्रु नहीं हूँ। भारतीय संस्कृति और उसके भव्य इतिहास के प्रति मेरा सम्मान है, किन्तु साथ ही मैं ईरान की संस्कृति और इतिहास, ग्रीस की संस्कृति और इतिहास, दुनिया की किसी भी संस्कृति और इतिहास का सम्मान करता हूँ; स्वयं इस्लाम के भीतर भी बनी अब्बासिया और अकबर के यशस्वी कार्यों का प्रशंसक हूं। वस्तुतः हमें धार्मिक-संकीर्णता छोड़कर किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए।

भगवानदास—भारत के भीतर रह गए मुसलमानों की मनोवृत्ति अब भी बदली नहीं मालूम होती। अब भी वह भारतीयता के अपनाने को तैयार नहीं हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के संघर्ष में यह मनोवृत्ति उन्हें पंचमांगी बनाये बिना नहीं रहेगी। क्या यह भारत के लिए खतरे की चीज नहीं है? क्या जो लोग मुसलमानों को इस ज़िद के लिए प्रोत्साहन देते हैं, वह वस्तुतः उनके हितैषी हैं?

युधिष्ठिर—वैसे "रिपु रुज पावक पाप, इनहि न गनिये छोट करि" का नीतिवाक्य गलत नहीं है, किन्तु मैं तो मुसलमानों के लिए इसे भयंकर अदूरदर्शिता कहूंगा, यदि वह भारतीयता-विरोधिनी अपनी पुरानी मनोवृत्ति को कायम रखेंगे। १९४७ के दंगों को हम देख चुके हैं, जब एक बार साम्प्रदायिक वैमनस्य की बाढ़ फूट निकलती है, तो उस समय रोकना असंभव हो जाता है। यदि कहीं पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में शस्त्र-परीक्षा होने लगी, तो मुसलमानों की यह मनोवृत्ति उनके लिए भारी खतरे का कारण होगी।

महीप—किन्तु, वैसी साम्प्रदायिकता से तो हमें लड़ना है।

युधिष्ठिर—एक सांप्रदायिकता दूसरी सांप्रदायिकता को पैदा करती है। मुसलमान इस्लाम को मानें, इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, किन्तु यदि वह वेशभूषा, भाषा, संस्कृति में अपने को विदेशी रखना चाहते हैं, तो समझ लें, यह उनके लिए भारी आफत लायगी।

भगवानदास—युधिष्ठिर भाई, आप जानते हैं, मैं महात्मा जी की सारी बातें मानता था, किन्तु मुस्लिम साम्प्रदायिकता के साथ समझौता मुझे पसंद नहीं था। क्या सात सौ वर्षों में एक-चौथाई लोगों को मुसलमान करके जैसे उन्होंने पाकिस्तान बना लिया, उसी तरह उनकी सांप्रदायिकता को इसी तरह घात लगाये बढ़ने देकर हम और भी अपने भूभाग को उनके पाकिस्तान में देते जायंगे? यह कभी नहीं हो सकता।

युधिष्ठिर—इतना उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं, अब बंदर-बाट के लिए यहाँ अंग्रेज बने नहीं हैं। बाकी अपने स्थायी हित के लिए मुसलमानों को उसी तरह भारतीयता को अपनाना पड़ेगा, जैसे ईसाइयों और बौद्धों ने अपनाया है। पंचमांगी ढंग की एकमात्र वही टीका है।

छब्बीसवां अध्याय

तृतीय विश्व-युद्ध

आज गोष्ठी का अंतिम दिन था। मुखपात्रीजी आज की गोष्ठी में भी नहीं शामिल हुए और वही आदि के पांचों पंच रह गए थे। गोष्ठी आरम्भ करते हुए युधिष्ठिर ने कहा—आज की राजनीतिक समस्याओं में विश्वयुद्ध का आतंक भी एक बड़ी विचारणीय बात है।

रामी—परमाणु-बम ने हिरोशिमा का जो भयानक संहार किया था, उसे सुनकर मैं तो स्तब्ध हो गई थी। इधर बिकिनी-खाड़ी में जो नये ढंग के परमाणु-बमों के तजरबे हुए हैं, उनकी बातें सुनकर डर लगता है, कि मानव के भाग्य में क्या बदा है? यदि कहीं तीसरा विश्व-युद्ध छिड़ गया, तो सौ परमाणु-बम एक करोड़ को मारने के लिए पर्याप्त होंगे।

महीप—रामी बहन, तुम समझती हो, कि परमाणु-बम से भयानक पहले कोई हथियार तैयार नहीं हुए थे। ऐसी विषैली गैसें तैयार हो चुकी हैं, जिनको उड़न्तू बमों के भीतर डालकर फेंक देने पर लंदन जैसे नगरों के कई लाख आदमी चंद घंटे में मर जायँगे। भयंकर रोग-कीटाणुओं के दस उड़न्तू बम सारे इङ्गलैंड को दो सप्ताह में साफ करने के लिए पर्याप्त हैं।

रामी—मैं तो समझती हूँ, कि यदि कोई तृतीय विश्वयुद्ध रूस और ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्टों के बीच हुआ, तो इंगलैंड की तो खैरियत नहीं, यदि इस तरह के दस भी उड़न्तू बम वहां गिरा दिये गए।

उड़न्तू बमों को तो कोई रोक भी नहीं सकता, वह तो दस क्या सौ भी गिराये जा सकते हैं। लेकिन आश्चर्य तो यह है, कि वही इङ्गलैंड लड़ाई की बात करने में अमेरिका से भी आगे बढ़ा हुआ है।

महीप—यदि तीसरी लड़ाई निश्चित होती, तो इङ्गलैंड कभी बढ़-बढ़कर बातें न करता। बेविन का "युद्धं देहि" का चिल्लाना यही बतलाता है, कि उस मजूर-साम्राज्यवादी के दिल में तृतीय विश्वयुद्ध के न होने का पूरा विश्वास है।

भगवानदास—तब फिर इतना चिल्लाने से क्या फायदा?

महीप—इंगलैंड को बहुत फायदा है। इसी तृतीय युद्ध के नारे के भरोसे तो इंगलैंड की चार साल से मक्खन-रोटी चल रही है।

खोजीराम—हां, यदि रूस और अमेरिका का मनोमालिन्य न रहता, तो अमेरिका क्यों अरबों रुपयों का खाद्य-पदार्थ तथा दूसरी चीज़ें इंगलैंड को देता।

रामो - तब तो इंगलैंड कभी नहीं चाहेगा, कि अमेरिका और रूस का मनोमालिन्य दूर हो।

महीप—जिसके भरोसे पेट चल रहा हो, उसे कैसे कोई मिटने देगा। जब तक अमेरिका का डालर आता रहेगा, तब तक इंगलैंड के राजनीतिज्ञ तथा समाचार-पत्र तृतीय महायुद्ध की बात दोहराते रहेंगे। इसके अतिरिक्त युद्ध के हल्ले का एक और भी फायदा है। "तीसरा युद्ध होगा, उसमें अधिक शक्तिशाली होने से ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट जीतेगा। यदि रूस ने कुछ भी विरोध किया, तो अमेरिका परमाणु-बमों द्वारा थप्पड़ का जवाब घूंसों से देगा।" इन बातों ही के कारण इटली और फ्रांस के प्रतिगामियों को हिम्मत हुई, नहीं तो जर्मनी की पराजय के बाद यूरोप के सबसे बड़े इन दोनों देशों में साम्यवादी दल सभी दलों से अधिक शक्तिशाली और संगठित हैं। उसके मारे इन देशों के सारे प्रतिगामी दल और व्यक्ति हाथ-पैर ढीला कर चुके थे, वह बिना प्रतिरोध के आत्म-समर्पण करने जा रहे थे। युद्ध के हल्ले की चर्चा से

की जनता सहमी और इनकी हिम्मत हुई। इस प्रकार आज दोनों देशों में प्रतिक्रियावादियों का जोर है।

भगवानदास—यह तो अमेरिका का दूसरे देशों में हस्तक्षेप करना है; यदि रूस में शक्ति होती, तो वह इसका उसे जवाब देता।

महीप—यदि इससे रूस को अशक्त साबित करना चाहते हैं, तो मैं और भी बातें बतला सकता हूँ, जिनसे आप अपनी बात को और भी पुष्ट कर सकते हैं। तुर्की रूस की सीमा पर है। उसने १९२० ईसवी में निवासियों के भयंकर हत्याकांड के बाद अर्मेनिया के दो जिले दखल कर लिये। उस समय जो भी अर्मेनियन पुरुष या स्त्री हाथ आये, उन्हें तुर्कों ने मार डाला। लेकिन सोवियत् अर्मेनिया अब एक यांत्रिक-कृषि और उद्योग-प्रधान प्रजातंत्र है। अर्मनी जनता अपने उन दोनों जिलों को वापस मांगती है, जिन्हें क्रांति के समय निर्बल देखकर तुर्कों ने बड़े खूनी जुल्म के साथ हड़प लिया। आधुनिक अर्मेनिया की मांग से तुर्की घबड़ाने लगा, फिर सारे न्याय और शिष्टाचार की बात को ताक पर रखके अमेरिका ने तुर्की की पीठ ठोंकी। आज वह तुर्की को हथियारों और सैनिक परामर्शदाताओं द्वारा मदद दे रहा है। यह तो रूस की बिलकुल सीमा पर आकर ताल ठोंकना है। ईरान में भी अमेरिका के दखल और प्रोत्साहन के कारण ईरानी आजुर्बाइजान से जनता का स्वायत्त-शासन नष्ट हुआ—ईरान में भी गोया सीमा पर पहुंच के अमेरिका ताल ठोंक रहा है। भारत के ऊपर भी वह डोरा फेंक रहा है; यहाँ यदि थोड़ी सहायता से काम चलता, तो वह बड़ी खुशी से देता, किंतु चीन की तरह यहाँ का मामला चार-छ अरब डालर का है। तो भी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान से चिपककर अमेरिका रूस से लाग-डाँट लगाना चाहता है। और तो और नेपाल में भी वह अपने हवाई अड्डों की तदबीर में है, जिसमें कम्युनिस्ट संसार की सीमा पर पहुँचा रहे।

खोजीराम—नेपाल के उत्तरी सीमान्त पर तिब्बत कम्युनिस्ट चीन के भीतर है ही।

महीप—चीन में अब दाल गलती दिखाई नहीं पड़ रही है, यद्यपि अमेरिका ने ढाई अरब डालर दाव पर लगाकर चीन से साम्यवाद को उखाड़ देना चाहा। जापान और कोरिया में भी वहाँ की प्रतिगामी शक्तियों को अमेरिका मजबूत कर रहा है—केवल रूस से विरोध करने के लिए ही। उत्तरीय अमेरिका में अलास्का की मोर्चेबंदी रूस ही के खिलाफ की गई है और रूस पर ही हवाई आक्रमण के सुभीते के लिए उत्तरी कनाडा में अमेरिका ने बहुत-से सैनिक हवाई-अड्डे तैयार किये हैं। इंगलैंड को तो अमेरिका का रूस के विरुद्ध विमानवाहक पोत माना जाता है। पश्चिमी यूरोप को जो एक गुट्ट में अटलान्टिक संधि-पत्र के अनुसार बाँधा गया है, यह भी रूस के विरुद्ध ही। बल्कान में घुसकर ग्रीस में अमेरिका गृह-युद्ध जारी किये हुए है, जिसका इसके अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं है, कि रूस और रूस के साथियों के सीमा पर हथियार लेके पहुँचा रहे। इस चारों ओर के घेरे को देखकर आप कह सकते हैं, कि रूस डर रहा है। तभी तो दुश्मन के घर में आकर ताल ठोंकने पर भी मुँह नीचे करके पड़ा हुआ है।

भगवानदास—महीप बाबू, मैं जो कहता, उससे कहीं अच्छा आप ने कह दिया। सचमुच ही इससे तो मालूम होता है, कि रूस युद्ध से भाग रहा है।

महीप—भाग रहा है इसमें संदेह नहीं है, क्योंकि वह एक और भीषण नरसंहार में सहायक नहीं बनना चाहता। लेकिन युद्ध से भागने की उसकी एक सीमा है, जहाँ तक वह युद्ध में पड़ना नहीं चाहेगा। वह जानता है, कि द्वितीय महायुद्ध की विपत्तियों को भोगे हुई इंगलैंड और अमेरिका की जनता युद्ध करना नहीं चाहती, लेकिन वहाँ के लाश-खोर गिद्ध आगा-पीछा देखने के लिए तैयार नहीं हैं। कोई बहाना मिलते ही वहाँ के पूंजीपति फिर तीसरे महायुद्ध में ढकेल देंगे। तो भी रूस खास सीमा के भीतर के हस्तक्षेप को नहीं सह सकता, इसे अमे-

रिकन साम्राज्यवाद भी जानता है, और उसका ख्याल रखके आगे बढ़ रहा है।

रामी—तो तुम्हें विश्वास है, कि उस खास सीमा के भीतर घुसने पर रूस पैर पीछे नहीं हटायगा ?

महीप—जरूर। अमेरिका इसीलिए रूस और तथाकथित लोह-परदे के भीतर पैर रखना नहीं चाहता। बर्लिन में रूस ने नौ-दस महीने रास्ता बन्द कर दिया, यह तो अमेरिका के लिए ललकार थी, फिर क्यों वह कोयला तक हवाई-जहाज पर ढो-ढो बर्लिन में उतारते रहे ?

भगवानदास—लेकिन अंत में रूस को झख मारके अपना घेरा हटाना भी तो पड़ा।

युधिष्ठिर—मैं बतलाऊँ भगवान भाई, रूस समझता है, कि पूँजीवादी देशों के लिए गोले से भी भारी घाव डालर के लुटने का है। वह समझता है, कि अमेरिका के पास अनंत डालर-राशि नहीं है, जो पचासों बरसों तक वह दुनिया के सभी देशों में डालर-वर्षा करता रहे। चीन में हमने देख ही लिया, ढाई अरब स्वाहा करने के बाद उसने टें बोल दिया और अब चाङ्कैशक के पापों का भंडाफोड़ करने के लिए अमेरिकन सरकार पोथा छापने जा रही है। रूस को तो कुछ खरच करना है नहीं। चीन को देख लीजिये, वहां रूस ने न पैसे-धेले न सेना से ही मदद की, जबकि अमेरिका का मदद करने में दीवाला निकलने लगा। रूस विश्वास रखता है, कि साम्यवाद को बाहर से नहीं टपकना चाहिए, बल्कि उसे देश के भीतर जड़ जमाके बढ़ना चाहिए।

रामी—चीन में ऐसा ही हुआ। चीन अपने आत्मत्याग और साहस से आगे बढ़ा है। अमेरिका का अरब रुपयों का सैनिक सामान चीनी कम्युनिस्टों को मिला। यद्यपि यह उसकी इच्छा के बिलकुल विरुद्ध था, लेकिन चाङ् की सेना ने अमेरिकन हथियारों को चीनी कम्युनिस्टों के पास पहुंचाने का काम किया। ग्रीस में भी वहां के देशभक्त कम्युनिस्ट लड़ रहे हैं। वह अपने पैरों पर खड़े हैं, जबकि उनके प्रतिक्रियावादी

शत्रु अमेरिकन डालर और हथियार के भरोसे लड़ रहे हैं। अमेरिका के नमक को हलाल करने के लिए बृटिश सेना वहां पर पड़ी हुई है और जहाँ-तहाँ हस्तक्षेप भी करती है, किंतु तो भी हमारे दो जिले भर के छोटे से देश ग्रीस के गोरिल्ले पांच साल से लड़ रहे हैं और उन्हें साम्राज्यवादी दबा नहीं पा रहे हैं।

भगवानदास—साम्यवादी देश के भीतर पैदा होते हैं। लेकिन उनके बारे में तो कहा जाता है, कि वह रूस की मदद से सब काम कर रहे हैं।

युधिष्ठिर—किसी का मुंह कैसे छेंका जा सकता है? साम्यवादी देश के भीतर से पैदा होते हैं। गीता के शब्दों में कहिए, "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।" जब-जब मानवता का उत्पीड़न और कष्ट चरम सीमा पर पहुंच जाता है, तब-तब उससे निकलने का कोई साधन वहीं तैयार होता है; और आज वही साधन है यह साम्यवाद। आप चोरबाजारी बन्द करने में असमर्थ हैं, रिश्वत को रोक नहीं सकते, सरकार के अंधाधुंध खर्च को और बढ़ाते जा रहे हैं, जिसका बोझ लोगों के ऊपर पड़कर वह दाने-दाने को मुहताज हैं। इन सब आफतों से निकलने का कोई रास्ता तो होना चाहिए।

भगवानदास—हां, इससे तो मालूम होता है, कि साम्यवाद के लिए क्षेत्र उसके विरोधी तैयार कर रहे हैं।

रामी—अच्छा, तो रूस की सैनिक शक्ति कैसी मालूम होती है?

युधिष्ठिर—जिस वक्त अटलांटिक पैक्ट को बारह राज्यों ने स्वीकार किया, उसी समय पूंजीवादी देशों के पत्रों ने बड़ा संतोष प्रकट करते हुए दोनों पक्षों की सैनिक शक्ति की तुलना की। १८ मार्च को वाशिंगटन से भेजे रुटर के संवाददाता का कहना था—

(१) अटलांटिक राज्यों के पास सोवियत् से १२% सैकड़ा अधिक जन शक्ति है।

(२) सोवियत् से तीन गुना अधिक जहाजों, विमानों, टैंकों, तोपों

और दूसरे सैनिक साधनों के बनाने के लिए इस्पात के उत्पादन करने की क्षमता है ।

(३) कारखानों, प्लांटों और रेलों में जलाने के लिए दो गुना कोयले का उत्पादन है ।

(४) लातिन अमेरिका तथा सारे अटलांटिक देशों के पास आठ गुना अधिक पेट्रोल है ।

(५) सैनिक सामान और दूसरी चीजों को ढोने के लिए २४ गुने टनवाले भारवाही पोत हैं ।

(६) कार, लॉरी और बस प्रायः तीस गुना अधिक हैं ।

हां, रूसी गुट्ट के पास पश्चिमी राज्यों से सवाई सेना है । सबके ऊपर अमेरिका के पास परमाणु बम और नये ढंग के अमेरिका के ३६ नम्बरवाले बमवर्षक की अमोघ शक्ति है । इसी तरह उसके ७३१ सैनिक पोत अटलांटिक में हैं । अमेरिका अटलांटिक-संधि के बाद के पहले बारह महीने के भीतर साढ़े तीन करोड़ डालर का हथियार अपने सहायकों को भेजने के लिए तैयार है ।

रामी—इससे तो मालूम होता है, कि रूसी जमात के पास सवाई अधिक सेना रहकर भी बेकार थी, यदि नये-से-नये हथियार उसके पास नहीं ।

महीप—लेकिन सुना न रामी बहन, अमेरिकन ट्रूमेन ने स्वयं रूस के पास परमाणु बम होने की घोषणा की ।

रामी—लेकिन कुछ अमेरिकन पत्रों ने ही यह भी कहा है, कि बम फूटने का यह अर्थ नहीं, कि युद्धोपयोगी परमाणु-बम रूस ने तैयार कर लिये ।

भगवानदास—यह हास्यास्पद बात है रामी बहन, जब शक्तिशाली परमाणु बम पूर्वी रूस के किसी भाग में छोड़े गए हैं, तो वह खाली दीवाली के पटाके नहीं हो सकते । रूसियों ने पहले ही कह दिया था, कि परमाणु बम में अब रहस्य नहीं रह गया ।

भगवानदास—तब तो दुनिया-भर के पूंजीवादियों की जो एक-मात्र आशा अमेरिका के परमाणु बम पर लगी थी, वह भी खतम हो गई।

महीप—उनकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया है। रूस की सेना लड़ने में कितनी वीर है, इसे द्वितीय विश्व-युद्ध ने बतला दिया है। हिटलर को परास्त करने में ६०% से अधिक श्रेय रूसी सेना को है। अमेरिकन और अंग्रेज रणबांकुरों की वीरता और युद्ध-कौशल की तुलना हम उस वक्त अच्छी तरह कर रहे थे, जब पूरब से लाल सेना और फ्रांस के समुद्री तट से एंग्लो-अमेरिकन सेना जर्मनी पर आक्रमण कर रही थी। जर्मनी की तीन-चौथाई से अधिक सेना रूस से लड़ रही थी, तो भी जिस गति से रूसी आगे बढ़े, उसके सामने एंग्लो-अमेरिकन सेना का बढ़ाव चींटी की चाल की तरह था।

खोजीराम—यह बात तो स्पष्ट देखी जा रही थी, एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादी चाहे मुँह से कुछ भी कहते हों, लेकिन दिल से वह भूल नहीं सकते, कि रूसियों के साथ लड़ना हँसी-ठट्ठा नहीं है।

महीप—अखबारों के बाद पूँजीवादी-जगत में सर्व-स्वीकृत एक सैनिक विशेषज्ञ कर्नल मिक्स्चे का भी अनुमान दोनों पक्षों की सेनाओं के बारे में सुनिए। वह कहता है—यदि संसार तीसरे विश्व-युद्ध से नहीं बच सका, तो पूरब और पश्चिम के युद्ध में रूसी गुट्ट अपने प्रबल जनबल के आधार पर पश्चिमी शक्तियों के सभी पोतों, विमानों और स्थल-सेना के अड्डों पर अधिकार कर लेगा। अपनी विशाल जन-शक्ति के कारण यद्यपि रूस स्थल-भाग पर अधिकार कर लेगा, किन्तु वायु और समुद्र पर अधिकार करने की उसमें क्षमता नहीं है और अन्तिम विजय इन्हीं दोनों के आधार पर होगी।

भगवानदास—विमान तो रूसी तिगुना बना रहे हैं, यह अमेरिकन ही स्वीकार कर चुके हैं।

खोजीराम—बच्चों की-सी बात है, हम जानते हैं अगर रूस की

स्थल-सेना नहीं होती तो एंग्लो-अमेरिकन सेना यूरोप के तट पर न उतर सकती, हिटलर को हराने की बात तो दूर रही।

भगवानदास—हिटलर का रूस के ऊपर आक्रमण करना भयंकर भूल थी, इसे सभी मानते हैं।

महीप—कर्नल आगे कहता है—चाहे सारे स्थल-भाग (अर्थात् सारे यूरेसिया महाद्वीप) पर रूस का अधिकार हो जाय, तो भी पश्चिमी राज्य बड़े शक्तिशाली शत्रु रहेंगे, क्योंकि उनके पास अमेरिका महाद्वीप, ब्रिटिशद्वीप, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका का भी अधिक भाग रहेगा।

भगवानदास—कर्नल तो भी स्वयं पश्चिमी शक्तियों की कमजोरी प्रकट कर रहा है।

महीप—यह भी समझिए, यह ऐसा-वैसा कर्नल नहीं है, इसे बिड़ला के पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और दूसरे देशों के पत्र भी 'प्रसिद्ध युद्ध-विद्या-विशारद' कहके उसके लेखों को उद्धृत करते हैं।

रामी—तब तो और भी पश्चिमी गुट्ट के लिए अधिक आशा नहीं मालूम होती, सारा एसिया और यूरोप-खण्ड तथा उत्तरी अफ्रीका तक को रूसी पक्ष ले लेगा—अर्थात् अदन, मस्कत, बसरा, कराची, लङ्का, सुमात्रा, सिंगापुर, सैगोन, कोरिया तक सारे विशाल भूखण्ड में रूसी सेनाओं के पहुंच जाने पर फिर अमेरिका शायद यही समझ ले, कि झगड़ा छोड़ो, चलो अपने घर बैठें।

खोजीराम—सच तो है, आखिर किस आशा पर वह लड़ेगा और फिर कर्नल ने अपने अनुमान में साम्यवादी चीन पर पूरा ध्यान नहीं दिया है।

महीप—इसीलिए कहा—"इतने बड़े भूभाग को अधिकार में रखना सम्भव नहीं, क्योंकि इससे भी मुश्किल है सैनिक महत्व के स्थानों में पर्याप्त सेना का रखना।" चीन की ४५ करोड़ जनता के साम्यवाद के भीतर आ जाने से अब ऐसी शंका की गुंजाइश नहीं रह जाती।

कर्नल का कहना है —"यह असंभव मालूम होता है, कि एक ही समय सर्वत्र सेना मौजूद रहे और यह भी असंभव-सा ही है, कि केवल यंत्रों के बल पर यूरेसिया जैसे महान् भूखण्ड पर आधिपत्य रखा जा सके। निस्सन्देह ऐसी परिस्थिति में पूरब और पश्चिम के बीच का युद्ध जन-बल और यन्त्रोत्पादन के बीच लम्बे संघर्ष के रूप में परिणत हो जायगा।" युक्तराष्ट्र अमेरिका के उद्योग-धन्धे के बारे में कर्नल ने कहा है—"द्वितीय विश्वयुद्ध ने युक्तराष्ट्र अमेरिका की आर्थिक और औद्योगिक शक्ति को इतने ऊँचे तल पर पहुंचा दिया, जिसका इतिहास में दृष्टान्त नहीं मिलता। हमारे युग में कोई दूसरा राज्य वहां तक नहीं पहुंच सकता। अमेरिका के उद्योग-धन्धे आज दुनिया की उपज का आधा पैदा करते हैं, जो उपज लड़ाई के वक्त में और भी बढ़ जायगी। सोवियत्-संघ एंग्लो-अमेरिकन उद्योग-धन्धे के पंचमांश से अधिक उत्पादन नहीं कर सकता; लेकिन सारे यूरेसिया पर अधिकार हो जाने पर जर्मनी, बेलजियम, फ्रान्स आदि के उद्योग-धन्धों की सहायता से रूस का उत्पादन एक-तिहाई तक जा सकता है।

रामी—फिर तो एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्य के लिए कोई डर नहीं है।

महीप—लेकिन कर्नल फिर कहता है—"किन्तु यदि रूस ने पश्चिमी यूरोप को ले लिया, तो उसका अर्थ है ब्रिटिश-चेनल के तट पर उसकी वायु-सेना का रहना, जो इंगलैंड के उद्योग-धंधे को बहुत हानि पहुँचा सकता है। ऐसी अवस्था में सोवियत् वायुसेना का काम पश्चिमी राज्यों की अपेक्षा बहुत आसान होगा, क्योंकि कैले से लन्दन बहुत नजदीक है, जबकि इंगलैंड से उड़ने वाले विमानों के लिए रूस भी दूर है। यह बिलकुल सम्भव है, कि तीसरे विश्वयुद्ध में पूरब की अपेक्षा इंगलैंड को हवाई हमले से बहुत अधिक क्षति उठानी पड़े, क्योंकि उड़न्तू बम तथा दूसरे युद्ध साधन तब से अब बहुत आगे बढ़ गए हैं। यह भी हो सकता है, कि भीषण वायु-संघर्ष

में रूसी अंग्रेजों के उद्योग-धन्धे को चौपट कर दें।"

भगवानदास—बेविन-एटली अथवा उनके उत्तराधिकारी एडन-चर्चिल के लिए कर्नल का फैसला बहुत रुचिकर नहीं मालूम होगा।

महीप—रुचिकर ? चर्चिल तो तैयार ही है, इंगलैंड को युक्तराष्ट्र अमेरिका से मिला देने को। इंगलैंड उंचासवीं रियासत बन जायगा, फिर टोरी तो बाल-बच्चे सहित अटलांटिक पार भाग जायंगे; केवल इंगलैंड के कमकर अपनी बेवकूफी का फल भोगने को रह जायंगे। कर्नल को अब चीन का भी कुछ होश आ गया है, इसलिए जनबल के बारे में कहता है—"सोवियत्संघ में प्रायः बीस करोड़ आदमी बसते हैं। मास्को के पुछल्लों के ९ करोड़ ७ लाख और चीन के ४५ करोड़ कुल मिलाकर प्रायः पौने ७५ करोड़ (७४७० लाख) आदमी। पश्चिमी राज्यों के निवासियों में अमेरिका, ब्रिटिश साम्राज्य और दक्षिणी अमेरिका की जनसंख्या प्रायः ६० करोड़ है।

रामी—हमारे भारत के ३४ करोड़ को क्यों गिन रहा है ?

महीप—क्योंकि नेहरू जी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के हाथ में हमारे ३४ करोड़ों को बेच आये हैं। कर्नल फिर आगे कहता है—"रूस के पुछल्लों का सैनिक के तौर पर बहुत कम मूल्य रहेगा; हां, वह कमकर शक्ति के तौर पर महत्व रखेंगे। लेकिन उद्योग-धंधों में बहुत अधिक विकसित जर्मनी, फ्रांस, बेलजियम और हालैंड के निवासी सोवियत् अर्थनीति के हरएक भाग में करोड़ों शिक्षित मिस्त्री, इंजीनियर बेतार-मिस्त्री और दूसरे विशेषज्ञ बनके काम करेंगे।"

युधिष्ठिर—पश्चिमी शक्तियों की जनबल की समस्या के बारे में कर्नल ने कहा है—"पिछले युद्ध में युक्तराष्ट्र ने ११० लाख आदमी सेना के लिए संचालित किये थे, किंतु उनमें से ७७ लाख ही को विमान, पोत तथा सेना में लिया जा सका। सारे युक्तराष्ट्र ने ९७ डिवीजन सैनिक संगठित किये और सारे ब्रिटिश साम्राज्य ने ६८ डिवीजन, अर्थात् सारी ऐंग्लो-अमेरिकन सेना १६५ डिवीजन थी।....यदि १६५

डिवीजनों को यूरोप, मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व के तीन युद्ध-क्षेत्रों मे बाँटने की आवश्यकता हुई, तो यूरोपीय महाद्वीप की रक्षा के काम के लिए केवल ५० या ६० डिवीजन रह जायंगे, जो कि इस काम के लिए बिलकुल अपर्याप्त होंगे, क्योंकि यूरोप की रक्षा के लिए कम-से-कम १२० से १५० डिवीजन तक चाहिएं। सोवियत्-संघ के ऊपर आक्रमण करने के लिए तो ३०० डिवीज़नों से कम की सेना बेकार होगी। जर्मनों ने २४० डिवीजन से यह काम करना चाहा, जिसका परिणाम स्तालिनग्राद में उनकी हार हुई।"[1]

भगवानदास — यह तो बुरा है। इससे पता लग जाता है, कि एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादी मुंह से चाहे जितना चिल्लाएं, लेकिन वह मैदान में नहीं उतरेंगे। लेकिन सुनते हैं, रूस की पंचवार्षिक योजनाएं भी जितनी प्रोपेगन्डा में मज़बूत मालूम होती हैं, उतनी उनमें वस्तुतः सफलता नहीं हो रही है।

युधिष्ठिर—इसके लिए 'न्यूज़ रिव्यू' ने बर्मिङ्घम विश्व विद्यालय के सोवियत्-अर्थशास्त्र-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर अलेक्सन्दर बाइकोफ की पुस्तिका ('सोवियत् संघ में औद्योगिक विकास') की आलोचना करते हुए लिखा है—"डाक्टर बाइकोफ ने चतुर्थ पंचवार्षिक योजना (१९४६–५०) के आंकड़ों के बारे में इस पुस्तिका में लिखा है, सोवियत् नेता आंकड़े के अंदाजे के बारे में सदा सच बोलते हैं, यद्यपि कभी-कभी उनके वक्तव्य में परस्पर विरोध भी होता है। पश्चिमी अर्थशास्त्रियों का विश्वास है, कि रूसी वक्तव्यों से वहां के आर्थिक विकास का काफी शुद्ध स्वरूप खींचा जा सकता है...डाक्टर बाइकोफ ने बतलाया है, कि (१९४० की आंकड़े को सौ लेने पर) सभी उद्योगों की उपज १९४६ में ७६·२, १९४७ में ९२·८ और १९४८ में ११८ हो गई।" उनकी गणना से पता लगता है, कि लड़ाई के अंत में उप-

---

1. 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (दिल्ली ३–७–४९)

भोग-वस्तुओं, ईंधन, लोहे और इस्पात का उत्पादन अत्यन्त कम हो गया था, जबकि इंजीनियरी-उद्योग युद्ध द्वारा बढ़े होने के कारण बहुत अच्छी हालत में था। डाक्टर ने आंकड़ों के बल पर यह निष्कर्ष निकाला है—"आम तौर से १९४६ में उद्योग-धंधों को युद्ध से शान्तिकाल के उत्पादन में परिणत कर दिया गया। शायद १९४८ की पहली तिमाही में युद्धपूर्व के समान उत्पादन होने लगा। उस साल के अंत में अभी भी उपभोग-सामग्री के उत्पादन का तल नीचा था। लेकिन पूँजीमाल विशेषकर इंजीनियरी उद्योग की उपज युद्धपूर्व से काफी ऊपर थी।" बाइकोफ ने १९४६-५० की योजना में पहले तीन वर्षों की औद्योगिक प्रगति को संतोषजनक बतलाया और कहा—यदि बाकी दो वर्षों तक योजना के उत्पादन की गति इसी तरह रही, तो १९५० तक मुख्य लक्ष्य पूरा हो जायगा।

रामी—तो रूसी योजना भी एंग्लो-अमेरिकन गुट्ट की इच्छा के अनुसार शिथिल और दोषपूर्ण नहीं है। युधिष्ठिर भाई! मुझे तो यह सम्भव मालूम नहीं होता, कि सारी दुनिया के संत्रस्त पूँजीशाह जिस तृतीय विश्वयुद्ध की बाट जोह रहे हैं, वह कभी आयगी भी।

युधिष्ठिर—तुमको मालूम है रामी बहन, क्यों अमेरिका ने परमाणु बम हिरोशीमा पर गिराया और क्यों बर्लिन पर नहीं गिराया?

रामी—मैं समझती हूं, बर्लिन पर परमाणु बम गिरता, तो हिटलर के उड़न्तू बम भयंकर रोग-कीटाणु और विषैली गैसों को लेकर इंगलैंड के शहरों पर गिरते, फिर इंगलैंड की हालत हिरोशिमा से भी बदतर होती।

युधिष्ठिर—सैनिक विशेषज्ञों का कहना है, कि तृतीय महायुद्ध छिड़ने पर दो महीने के भीतर सारे यूरोप पर लाल सेना का अधिकार हो जायगा। फ्रांस और बेलजियम के तटों से इंगलैंड पर सोवियत् सेना अपने परमाणु बम भी गिरायगी, गैसबम, कीटाणुबम भी गिरायगी। अभी तक पिछले दोनों हथियार प्रतिषिद्ध ठहराये गए हैं। युद्ध आरभ

करने से पहले तीसरे को भी प्रतिषिद्ध मान लिया जायगा। अभी इंगलैंड का चिराग बुझने नहीं पायगा। युद्ध तब बाकी बचे हथियारों से होगा, जिसमें एंग्लो-अमेरिकन-गुट्ट सोवियत्-गुट्ट का बिलकुल मुकाबला नहीं कर सकता। मुफ्त में यदि सारे यूरेसिया और उत्तरी नहीं सारे अफ्रीका को साम्यवाद को भेंट चढ़ाना हो, तो ही तीसरा महायुद्ध छिड़ेगा।

महीप—और यह स्पष्ट ही है, कि उत्पीड़ित देशों में भारी जन-संख्या की ओर से रूसी और चीनी सेना का विरोध नहीं होगा।

भगवानदास--विरोध कहते हैं? हमारे चीनी मिल के मजूर तो लाल झंडा लेकर पहले ही स्वागत करने चल देंगे।

युधिष्ठिर—हम अपनी सारी समस्याओं पर वाद नहीं कर पाये, वह संभव भी नहीं था, परन्तु जो कुछ हमारी गोष्ठी में विचार हुआ, उससे यह तो स्पष्ट है, कि तृतीय युद्ध की ९९% सम्भावना नहीं है। लेकिन हमारे देश के भीतर जो आर्थिक समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं, अन्न-वस्त्र का अभाव और बढ़ता ही जा रहा है, जनसंख्या ऊपर से और बढ़के नाव को बोझल कर रही है, पतवार अनाड़ियों के हाथ में है, यदि समय पर नहीं संभले तो लाल भवानी के आने में देर नहीं होगी; और उसके स्वागत में न जाने कितने लाख निरीह नर-नारी आपसी संघर्ष में बलि चढ़ेंगे। अंत में जो बच रहेंगे, वह बहुत सुन्दर और समृद्ध भारत का निर्माण करेंगे, इसमें संदेह नहीं; किन्तु लाखों के रक्त से भारतमही को पंकिल करके फिर वही करना क्या अच्छा है?

-- ✲o✲ --